(MAYO-101)

योग के आधारभूत तत्व

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

प्रथम खण्ड – योग का स्वरूप एवं शााखाओं का परिचय

इकाई.01– योग का अर्थ परिभाषा, महत्व एवं उद्देश्य, योग का इतिहास एवं विकास
आधुनिक युग में विभिन्न क्षेत्रों में योग की उपादेयता, योग के सम्बन्ध में मिथ्या धारणा

इकाई.02– राजयोग, हठयोग एवं भक्तियोग

इकाई.03– ज्ञानयोग, कर्मयोग एवं मंत्रयोग

द्वितीय खण्ड – प्राचीन काल में योग सम्बन्धी परम्परायें

इकाई .04 – बौद्ध दर्शन एवं जैन दर्शन में योग, वेद एवं उपनिषद में योग

इकाई .05 – महर्षि पतंजलि का परिचय एवं यौगिक योगदान
गोरखनाथ जी की परम्परा का परिचय और यौगिक योगदान
आदि शंकराचार्य जी का परिचय और यौगिक योगदान

इकाई .06 – स्वामी राम कृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, श्री अरविंद
महर्षि रमण जी, स्वामी कुवलयानन्द जी, श्री श्यमाचरण लाहड़ी

तृतीय खण्ड– आधुनिक काल में योग सम्बन्धी परम्परायें

इकाई.07 – श्री टी0 रामाकृष्णाचार्य, स्वामी शिवानन्द सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द जी,
आचार्य रजनीश ओशो

इकाई.08 – स्वामी राम (हिमालय), महर्षि महेश योगी, पं0 श्री रामशर्मा आचार्य, परमहंस योगानन्द

इकाई.09 – योगगुरु अयंगार, श्री श्री रविशंकर, स्वामी रामदेव, स्वामी निरंजनानंद सरस्वती

चतुर्थ खण्ड – योग ग्रंथों का सामान्य परिचय

इकाई. 10– घेरण्ड संहिता का सामान्य परिचय

इकाई. 11– हठयोग प्रदीपिका का सामान्य परिचय

इकाई. 12 – शिव संहिता का सामान्य परिचय

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

एम.ए.वाई.ओ.– 101 (MAYO-101)

संरक्षक एवं मार्गदर्शक

प्रो. सीमा सिंह –कुलपति, उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

विशेषज्ञ समिति –

डॉ. मीरा पाल, प्रभारी निदेशक	स्वास्थ्य विज्ञान विद्याशाखा UPRTOU
डॉ. अतुल मिश्रा, असि, प्रोफेसर (सं.)	दर्शन शास्त्र, UPRTOU
श्री अमित कुमार सिंह, असिस्टेंट प्रोफेसर (सं.)	योग, UPRTOU
श्री अनुराग सोनी, असि, प्रोफेसर	योग, आर.एम.एल.यू., अयोध्या
श्री अनुराग शुक्ला, असिस्टेंट प्रोफेसर (सं.)	योग, UPRTOU
श्री निकेत सिंह, असिस्टेंट प्रोफेसर (सं.)	योग, UPRTOU
सुश्री जूमी सिंह, असिस्टेंट प्रोफेसर (सं.)	योग, UPRTOU

लेखक –

श्री निकेत सिंह – सहायक आचार्य (योग) उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सम्पादक –

डॉ कामता प्रसाद साहू – देव संस्कृति विश्वविद्यालय, शांतिकुंज, हरिद्वार उत्तराखण्ड

परिमापक –

डॉ. मीरा पाल – प्रभारी निदेशक, स्वास्थ्य विज्ञान विद्याशाखा, उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

समन्वयक –

श्री अमित कुमार सिंह – सहायक आचार्य (योग) उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रथम खण्ड – योग का स्वरूप एवं शाखाओं का परिचय
परिचय

परास्नातक योग कार्यक्रम के अन्तर्गत योग के आधारभूत तत्व (MAYO – 101) पाठ्यक्रम का यह पहला खण्ड है, जिसका शीर्षक योग के आधारभूत तत्व में योग का स्वरूप एवं शाखाओं का परिचय है। इस खण्ड के अंतर्गत कुल तीन इकाइयाँ हैं–

इकाई–1 के अन्तर्गत योग का अर्थ परिभाषा महत्वपूर्वक इतिहास एवं विकास, आधुनिक युग में विभिन्न क्षेत्रों में योग की उपादेयता, योग के संबंध में मिथ्या धारणा बतलाई गई है।

इकाई–2 के अन्तर्गत राजयोग, हठयोग एवं भक्तियोग योग में इन मार्गो का परिचय और स्वरूप के विषय में बतलाया गया है।

इकाई–3 में अन्तर्गत ज्ञानयोग कर्म योग एवम् मंत्र योग के इन योग मार्गो का परिचय और स्वरूप के विषय में बतलाया गया है।

अतः इन समस्त इकाईयों के माध्यम से योग का परिचय उपादेयता के साथ योग के विभिन्न मार्गो जैसे राजयोग, हठयोग , भक्तियोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग आदि के विषय में जान सकेंगे।

प्रथम खण्ड

इकाई 1– योग का स्वरूप एवं शाखाओं का परिचय

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 योग का अर्थ

1.3 योग की परिभाषाएं

1.4 योग का महत्त्व

1.5 योग का उद्देश्य

1.6 योग का इतिहास एवं विकास

1.7 आधुनिक युग में विभिन्न क्षेत्रों में योग की उपादेयता

1.8 योग में मिथ्या धारणा

1.9 अभ्यास प्रश्न

1.10 सारांश

1.11 शब्दावली

1.12 संदर्भ ग्रंथ

1.13 निबंधात्मक प्रश्न

1.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- योग के अर्थ और योग की परिभाषाएं समझ पाएंगे।
- योग के महत्त्व और योग के उद्देश्य को विषय में जान पाएंगे।
- योग के इतिहास को पढ़ते हुए योग के उद्भव और विकास को जान पायेंगे।
- आधुनिक युग में व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, नैतिक, चिकित्सीय, और खेलकूद जैसे अनेक क्षेत्रों में योग किस प्रकार से उपयोगी है।
- योग में व्याप्त भ्रांतियां, रूढ़िवादिता को जानकर योग के सही स्वरूप को जान पायेंगे।

1.1 प्रस्तावना

योग भारतीय ऋषि मुनियों द्वारा प्रदत्त अमूल्य ज्ञान विज्ञान है। योग विज्ञान मनुष्य के सर्वांगीण विकास के लिए समग्र उत्थान के लिए अनेक विधियो के उपाय और प्रयोग से संनियोजित है। मनुष्य की प्रसुप्त चेतना को जागृत करने और उसकी अंतर्निहित उर्जा असीमित सम्भावनाओं के प्रति उन्मुख करते हुए उन्हें जागृत करने के साथ परम शिखर तक पहुंचाने की अपूर्व क्षमता योग के ज्ञान विज्ञान मे समाहित है। मनुष्य मात्र के कल्याण के साथ मनुष्य को परम लक्ष्य अर्थात मोक्ष तक पहुँचाने का साधन यह विद्या योग ही है। योग एक जीवन पद्धत्ति है। जीवन जीने की यह सर्वश्रेष्ठ कला है।

1.2 योग का अर्थ

सामान्य अर्थों में योग का अर्थ जोड़ना होता है। योग के समानार्थी भाव मे मिलन, संयोग, एकाकार तदाकार आदि–आदि शब्दों में होता है। लेकिन शास्त्रीय अर्थ में योग का तात्पर्य आत्मा व परमात्मा के मिलन ही योग है। योग शब्द के शाब्दिक अर्थानुसार योग 'युज' धातु से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ होता है मिलना था जोड़ना या संयोग ।

योग के विस्तृत स्वरूप को देखने से हम ज्ञात होता है की यह धातु युज योगेन, युज–संयमन, युज समाधि प्रयुक्त किया गया है जिसका अर्थ क्रमशः मिलन, सयंम और समाधि है। संयमन मन के रूप में प्रयुक्त युज धातु का अर्थ भी वशीकृतस्य मनशः से है। अर्थात मन को वश में करना ही मन का संयमन है। पतंजलि

योग सूत्र में समाधि में संयमन की विशेष रुप से व्याख्या की है– र्त्यमेकत्र संयमः। प्रत्याहार धारणा और ध्यान समाधि के इन तीनों अंतरंग स्वरूप को एक साथ संयम नाम दिया गया है। इसलिए योग शब्द के मूल में अवस्थित त्रिविध यूज धातु ही है।

1.3 योग की परिभाषा

योग विद्या भारतीय संस्कृति में विशिष्ट स्थान रखती है। योग विद्या के ज्ञाता, मर्मज्ञ और इसके अर्थ स्वरूप बताने वाले अनेक प्राचीन ग्रंथ इस संस्कृति में बहुत भारी मात्रा उपलब्ध हैं। अनेक आर्ष ग्रंथ जैसे वेद पुराण उपनिषद गीता आदि प्राचीन ग्रंथों में योग शब्द का वर्णन होता आया है। षड दर्शनों में योग दर्शन भी एक महत्वपूर्ण दर्शन है जिसमें योग के विस्तृत स्वरूप को बतलाया गया है और इसको अलग रूप को परिभाषित किया गया है जो कि निम्नलिखित हैं–

1.3.1 पतंजलि योग सूत्र के अनुसार–

योग सूत्र के प्रणेता महर्षि पतंजलि कृत पातंजल योग सूत्र योग का सबसे प्राचीन और प्रमाणिक ग्रंथ माना गया है जिसमें प्रथम अध्याय के समाधि पाद में योग को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। (पा. यो. सू.1/2)

अर्थात – चित्तवृत्तियों का निरोध होना ही योग है।

इस सूत्र में महर्षि पतंजलि ने योग को समाधि के आश्रम में प्रयुक्त किया है, चित्र शब्द मन बुद्धि अहंकार तीनों का रूप है। जन्म जन्मांतर ओके संस्कार चित्त में भरे पड़े। इन संस्कारों के कारण चित्त में वृत्तियां उठती रहती हैं। जैसे जल में हवा होती है वैसे ही चित्त को चलायमान कहा गया है।

1.3.2 सांख्य दर्शन के अनुसार–

"प्रकृति और पुरुष का भी योग ही योग है"

1.3.3 श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार–

श्रीमद्भगवद्गीता में विभिन्न सन्दर्भों में निम्नलिखित तीन परिभाषाओं द्वारा योग को परिभाषित किया गया है।

योगस्थ कुरु कर्माणि संग व्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्धसिद्धयोः समो भूत्वा सि समत्वं योग उच्यते।।

श्रीमदभगवद्गीता – 2/48

अर्थात् हे धनंजय। तू आसक्ति का त्याग करके सिद्ध असिद्धि में सम हो जाए और स्वयं में स्थित होकर कर्मों को कर, क्योंकि समता को ही योग कहा जाता है। इस प्रकार सुख–दुःख मान–अपमान, सिद्धि–असिद्धि आदि विरोधी भावों में समान रहने को ही भगवान ने योग कहा है। अत सुख में न अधिक प्रसन्न होना और दुख में न अधिक दुखी होना ही,
योग है।

बुद्धि युक्तो जहातीह उभे सुकृत दुष्कृते ।

तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ।।

श्रीमदभगवद्गीता–2/50

अर्थात– समबुद्धियुक्त पुरुष पुण्य और पाप दोनों को इसी लोक में त्याग देता है अर्थात उन्हें मुक्त हो जाता है। इससे तू समत्व रूप योग में लग जा, यह समत्व रूप योग ही कर्मों में खींच है अर्थात कर्मबंध से छूटने का उपाय है । शुद्धि समता युक्त मनुष्य वर्तमान में ही पुण्य और पाप दोनों से रहित हो जाता है। अतः तू कर्म में लग जा क्योंकि कर्म की कुशलता ही योग हैं। यहाँ श्री कृष्ण ने प्रथम परिभाषा की पुष्टि में कहा है कि कर्मों में कुशलता अर्थात् निष्काम भाव फल की आशा न करते हुए कर्म करना ही कर्म योग है।

तं विद्यात दुखसंयोगवियोगं योग संज्ञितम्।

स निश्चयेन योगतव्यो योगोऽनिर्विण्ण चेतसा ।।

श्रीमदभगवद्गीता– 6/23

अर्थात– बिना आसक्ति कर्म करना ही योग है, जिससे कर्म के फल अर्थात् भोग से संबंध छूट जाता है और अंततः मुक्त होने के कारण दुःख भी समाप्त हो जाता है। इसी कारण प्रभु ने 'योग' को दुःख के संयोग का वियोग भी माना है दुःख के साथ वियोग एवं आनन्द के साथ संयोग ही योग है। अर्थात् दुख रूप संसार के संयोग से रहित है। इस योग को धैर्य और उत्साह के साथ चित्त से निश्चियपूर्वक करना चाहिए।

1.3.4 कठोपनिषद् में योग के विषय में कहा गया है–

यदा पंचावतिष्छनते ज्ञानानि मनसा सह ।

बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम् ।।

तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम् ।

अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभावाप्ययौ ।।

कठो2/3/10–11

अर्थात् जब पाँचों ज्ञानेन्द्रियां मन के साथ स्थिर हो जाती है और मन निश्चल बुद्धि के साथ आ मिलता है, उस अवस्था को परमगति कहते है। इन्द्रियों की स्थिर धारणा ही योग है। जिसकी इन्द्रियाँ स्थिर हो जाती

है, अर्थात् प्रमाद हीन हो जाता है। उसमें शुभ संस्कारो की उत्पत्ति और अशुभ संस्कारों का नाश होने लगता है। यही अवस्था योग है।

1.3.5 मैत्रायण्युपनिषद् में कहा गया है

एकत्वं प्राणमनसोरिन्द्रियाणां तथैव च ।

सर्वभाव परित्यागो योग इत्यभिधीयते ।। 6/25

अर्थात प्राण, मन व इन्द्रियों का एक हो जाना, एकाग्रावस्था को प्राप्त कर लेना, बाह्य विषयों से विमुख होकर इन्द्रियों का मन में और मन आत्मा में लग जाना प्राण का निश्चल हो जाना योग है।

1.3.6 योगशिखोपनिषद् में कहा गया है–

योऽपानप्राणयोरैक्य स्वरजोरेतसोस्तथा

सूर्याचन्द्रमसोर्योगो जीवात्मपरमात्मनोः ।

एवंत, द्वन्द्व जालस्य संयोगो योग उच्यते।। 1/68–69

अर्थात् अपान और प्राण की एकता कर लेना. स्वरज रूपी महाशक्ति कुण्डलिनी को स्वरेत रूपी आत्मतत्त्व के साथ संयुक्त करना, सूर्य अर्थात् पिंगला और चन्द्र अर्थात् इडा स्वर का संयोग करना तथा परमात्मा से जीवात्मा का मिलन योग है।

1.3.7 रागेय राघवेंद्र के अनुसार–

शिव और शक्ति का मिलन योग है।

1.3.8 लिंग पुराण के अनुसार लिंग पुराण मे महर्षि व्यास ने योग का लक्षण किया है कि–

सर्वार्थ विषय प्राप्तिरात्मनो योग उच्यते।

अर्थात्– आत्मा को समस्त विषयों की प्राप्ति होना योग कहा जाता है। उक्त परिभाषा में भी पुराणकार का अभिप्राय योगसिद्धि का फल बताना ही है। समस्त विषयों को प्राप्त करने का सामर्थ्य योग की एक विभूति है। यह योग का लक्षण नहीं है। वृत्तिनिरोध के बिना यह सामर्थ्य प्राप्त नही हो सकता।

1.3.9 अग्नि पुराण के अनुसार अग्नि पुराण में कहा गया है कि

आत्ममानसप्रत्यक्षा विशिष्टा या मनोगतिः ।

तस्या ब्रह्मणि संयोग योग इत्यभि धीयते ।। अग्नि पुराण (379) 25

अर्थात्– योग मन की एक विशिष्ठ अवस्था है जब मन मे आत्मा को और स्वयं मन को प्रत्यक्ष करने की योग्यता आ जाती है, तब उसका ब्रह्म के साथ संयोग हो जाता है। संयोग का अर्थ है कि ब्रह्म की

समरूपता उसमे आ जाती है। यह कमरूपता की स्थिति की येग है। अग्निपुराण के इस योग लक्षण में पूवेक्ति याज्ञवल्क्य स्मृति के योग लक्षण से कोई भिन्ता नही है। मन का ब्रह्म के साथ संयोग वृत्तिनिरोध होने पर ही सम्भव है।

1.3.10 स्कन्द पुराण के अनुसार स्कन्द पुराण भी उसी बात की पुष्टि कर रहा है जिसे अग्निपुराण और याज्ञवल्क्य स्मृति कह रहे है। स्कन्द पुराण में कहा गया है कि–

यत्समत्वं द्वयोरत्र जीवात्म परमात्मनोः ।
सा नष्टसर्वसंकल्पः समाधिरमिधीयते ।।
परमात्मात्मनोयोडयम विभागः परन्तप ।
स एव तु परो योगः समासात्क थितस्तव ।।

यहाँ पर इसका अर्थ यह है कि समाधि ही योग है। वृत्तिनिरोध की अवस्था में ही जीवात्मा और परमात्मा की यह समता और दोनो का अविभाग हो सकता है। यह वात नष्टसर्वसंकल्पः पद के द्वारा कही गयी है ।

1.3.11 योग के विषय में हठयोग की मान्यता का विशेष हठयोग प्रदीपिका के अनुसार महत्व है, वहां कहा गया है कि–

सलिबे सैन्धवं यदवत साम्यं भजति योगतः ।
तयात्ममनसोरैक्यं समाधिरभी घीयते।।

(4/5) ह0 प्र0

अर्थात् जिस प्रकार नमक जल में मिलकर जल की समानता को प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार जब मन वृत्तिशून्य होकर आत्मा के साथ ऐक्य को प्राप्त कर लेता है तो मन की उस अवस्था का नाम समाधि है।

यदि हम विचार करे तो यहां भी पूर्वोक्त परिभाषा से कोई अन्तर दृष्टिगत नही होता। आत्मा और मन की एकता भी समाधि का फल है। उसका लक्षण नहीं है। इसी प्रकार मन और आत्मा की एकता योग नही अपितु योग का फल है।

1.3.12 सांख्य दर्शन के अनुसार–

"रागोपहितिर्ध्यानम्।" सांख्य सूत्र 3/30

अर्थात् ध्यान के द्वारा योग के अनुष्ठान करने चाहिए।

वृत्तिनिरोधात् तत्सिद्धि । सांख्य सूत्र 3/32

अर्थात् वृत्तियों के निरोध से ध्यान की सिद्धि होती है।

धारणासन स्वकर्मणा तत्सिद्धिः।

अर्थात धारणा आसन तथा अन्य योग के साधनो द्वारा वृत्ति निरोध (ध्यान) की स्थिति होती है। आसन को परिभाषित करते हुए कहा गया

स्थिरसुखमासनम् सांख्य सूत्र 3/34

अर्थात् जिसमें सुखपूर्वक स्थिरता पूर्वक बैठ सके वही आसन है, तथा यह आसन योग सिद्धि में आवश्यक है।

1.3.13 पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य के अनुसार–

"जीवन जीने की कला ही योग है"

"स्वयं को जानना ही योग है"

1.3.14 स्वामी विवेकानन्द जी के अनुसार–

स्वामी विवेकानन्द जी ने राज योग में योग की इस प्रकार व्याख्या की है कि प्रत्येक जीव अव्यक्त ब्रह्मा है। बाह्य एवं अंतः प्रकृति को वशीभूत करके अपने इस ब्रह्मभाव को व्यक्त करना ही जीवन का परम लक्ष्य है।

1.3.15 स्वामी शिवानंद जी के अनुसार–

"योग विचार, वाणी और कर्म के बीच समन्वय और सामंजस्य स्थापित करता है।"

1.4 योग का महत्त्व

आज आधुनिक जीवन में भौतिक और वैज्ञानिक दृष्टि से बहुत ही समृद्ध है। लेकिन मानसिक, वैचारिक, भावनामक, नैतिक विकास की दृष्टि से अधोगमी स्तर पर जा रहा है। इस एकांगी विकास के दृष्टि से जीवन में अनेक समस्याओं से ग्रसित है। स्वास्थ्य की दृष्टि से ही देखें तो शारीरिक स्वास्थ्य के अतिरिक्त मानसिक मनो का एक और भावनात्मक रूपी नित नई विकृतियां आक्रमण कर रही हैं। इन समस्याओं से ग्रसित मानव आज समग्र समाधान की खोज में भटक रहा है। योग विद्या सर्व सुलभ सर्वग्राही समाधान के रूप में आत्मसात की जा रही है।

भवतापेन तप्तानांद योगोहि परमौषधम् ।

गरुड़ पुराण

अर्थात् विभिन्न प्रकार के सांसारिक कष्ट पीड़ा तथा दुःखों से ग्रसित व्यक्तियों के लिए योग ही एक मात्र परम औषधि है ।

मानव जीवन में योग व्यक्तित्व विकास का सर्वश्रेष्ठ साधन है, योग ही एक ऐसी विद्या है जिसके द्वारा अंतर्निहित प्रसुप्त शक्तियों को जागृत किया जा सकता है। अपनी प्रसुप्त चेतना को जागृत कर उसे उच्च अवस्था की यात्रा तक पहुंचा सकता है। पशु तुल्य जीवन से उठकर मनुष्य में देवत्व का उदय करने में सक्षम हो सकता है, अपने स्वयं के जीवन के साथ परिवार, जैसे की पद्धतियों से अनेक प्रकार के रोगों का असर वसमाज, राष्ट्र और अन्य पहलुओं के लिए उपयोगी बना जा सकता है।

1.4.1 स्वास्थ्य की दृष्टि से महत्त्व–

असंयम जनित जीवन शैली से अनेक रोगों से ग्रस्त मनुष्य अनेक उपचार पद्धतियों से निराश होने के बाद व्यक्ति योग के द्वारा सहज सुलभ स्वास्थ्य रक्षण कर पाने में सक्षम हो पा रहा है। आज भारत ही नहीं अपितु देश विदेश में भी योग के क्षेत्र में हो रहे शोधों के स्कारात्मक परिणामों से आश्चर्यजनक सफलता मिल रही है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने भी इस बात को स्वीकारा है की योग विद्या को एक सुव्यवस्थित और वैज्ञानिक जीवन शैली है जिसे व्यक्ति अपना कर अनेक प्राणघातक रोगों से बच सकता है।

1.4.2 रोगों के उपचार के दृष्टि से महत्त्व–

निसंदेह आज विलासिता पूर्ण जीवन शैली और अनुचित आहार विहार के कारण अनेक गंभीर रोगों ने जड़ जमा रखा है। योग संपूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त करने का साधन है। सम्पूर्ण स्वास्थ्य के लिए व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, और सामाजिक दृष्टि से भी स्वस्थ होना नितांत आवस्यक है। इस लिए संपूर्ण स्वास्थ्य की परिकल्पना के लिए योग को आत्मसात करना ही एक मात्र साधन प्रतीत होगा। योग मात्र रोगोपचार ही नहीं करता वरन योग स्वास्थ्य प्रदायक भी है। गंभीर से गम्भीर रोगों से ग्रस्त लोग अनेक चिकित्सीय पद्धतियों के उपचार में उचित लाभ नहीं मिल पाने से योग की शरण में आ रहे है। वैकल्पिक चिकित्सा में योग चिकित्सा सभी चिकित्सा पद्धतियों में सवोत्तम चिकित्सा पद्धति है। इस चिकित्सा पद्धति की विशेषता यह भी है कि यह बिना किसी वितरित नकारात्मक प्रभाव के जो समस्याएं चिकित्सा पद्धति से संभव नहीं है वह योग पद्धति से संभव है। भारत जैसे विकास शील देश में निम्न व मध्यम आर्थिक स्थिति वाले व्यक्ति के लिए कम खर्चीली एवं सर्वसुलभ चिकित्सा पद्धति है।

अनेक चिकित्सा पद्धतियों की तरह योग चिकित्सा पद्धति की तरह असाध्य प्रकृति के समस्त शारीरिक व मानसिक रोगोपचार में आधुनिक चिकित्सा विज्ञान भी योग को मान्यता देने लगा है। साथ ही योग की चिकित्सात्मक मूल्य से भी प्रभावित है। जो इस प्रकार हैं– आसन प्राणायाम, शुद्धि क्रियाएँ, बन्ध, मुद्रा, योग नि यूद्रा प्रत्याहार आदि के चिकित्सकीय प्रभाव को दर्शाने वाले विभिन्न सन्दर्भ हठयोग के ग्रन्थ में है।

आज असंयम, अति भौतिक जीवन शैली से मधुमेह, हृदय रोग, सर्वाइकल, स्ट्रेस, अर्थराइटिस, मोटापा, कैंसर आदि अनेकों रोगों ने भयानक रूप ले रखा है। इस समस्त रोगों की आधुनिक चिकित्सा पद्धति के

अनुसार उपचार का प्रभाव नगण्य और उपचार का खर्च भी महंगा है। ठीक इसके विपरीत योग चिकित्सा पद्धति सर्व सुलभ प्रभावशाली है साथ ही यह समस्त विकृतियों के निदान में दोष रहित भी है। रोगों के उपचार के प्रभावों को देखते हुए अनेक शोध कार्य भी योग चिकित्सा की सार्थकता को दर्शाते है। वर्तमान समय में योग के अन्य महत्व की अपेक्षा योग का चिकित्सकीय महत्व पर सभी लोगों का आकर्षण अधिक देखने में आता है क्योंकि योग पद्धति वर्तमान की समस्या का निदान बताती है ।

1.5 योग का उद्देश्य

मानव जीवन में योग का महत्वपूर्ण स्थान है। योग साधना है और इसकी साधना व सिद्धान्तो में ज्ञान का महत्व दिया है। योग के बिना आध्यात्मिक और भौतिक विकास सम्भव नहीं है। योग विद्या अत्यंत प्राचीन विद्या है क्योंकि वेदो, पुराणो में भी योग की चर्चा की गयी है। योग विद्या के ज्ञान को प्राप्त करने के लिए योग के मर्मज्ञ गुरुओं के सानिध्य में जा कर योग का ज्ञान प्राप्त करते थे, आज के समय भी योग के जिज्ञासुओं का कर्तव्य है, वे इस मर्म को समझते हुए योग के ज्ञानी, महत्माओ गुरुओं के सानिध्य में अपने अपने चंद सुखो और भौतिक लाभ को त्याग कर कृतज्ञ भाव से योग के ज्ञान को पाने की चेष्ठा रखनी चाहिए। आज के जटिल मानव जीवन में कितनी उलझने, अशांति, तनाव और अवद्रुय हो चला है। अगर दिव्य दृष्टि होती तो वो देख पाता की मनुष्य की पीड़ा की कैसी अकुलाहट है और उसमे कितनी निराशा, भय, व्याकुलता है। इसीलिए यह आवश्यक है की हम अपने जीवन पथ के हर पग को चिंतामुक्त हो कर और दिव्य शंति एंव समरसता को किस भांति प्राप्त करे। इसी दिव्य रहस्य को जन जन को पहुंचना ही योग अध्ययन का मुख्य उद्देश्य है।

योग अध्ययन का मुख्य उद्देश्य ऐसे कि मनुष्य का निर्माण हो जिसका चरित्र चिंतन और भावनात्मक स्तर दिव्यता भरी आकांक्षा हो जिससे उसका क्रियाकलाप ऐसा हो जैसा कि ईश्वर भक्तों का योगियों का होता है। क्योंकि योग में स्थित व्यक्ति में क्षमता एवं विभूतियां भी उच्च स्तरीय होती है। वे सामान्य व्यक्ति की तुलना में उत्कृष्ठ और समर्थ होते है, ऐसे में सुनियोजित प्राण प्रवाह को अचेतन के विकास करने में नियोजित करते है।योग की अंतरंग मार्ग – प्रत्याहार, धारणा, ध्यान समाधि के मार्ग द्वारा चेतन मास्तिष्क को परम लक्ष्य की ओर ले जाने में समर्थ होते है।

योग विद्या के विभिन्न मार्गो पर चिंतन करते है तो पाते है कि हठयोग साधना का उद्देश्य स्थूल शरीर के विकारों से मन को प्रभावित करते है उन्हे हठ योग के द्वारा वश में करते है। यदि हम अष्टांग योग को देखते है तो पाते है कि यम नियम का उद्देश्य – राग द्वेष, काम, लोभ, मोहादि चिन्ता को विक्षिप्त करने वाले कारक तत्त्वों को दूर करना है।

आसन, प्राणायाम का मुख्य उद्देश्य – स्थूल शरीर से होने वाले विकर्षणों को दूर करना है, प्रत्याहार का उद्देश्य चित्त को विषयो से हटाकर आत्म–दर्शन की और उन्मुख करना है। धारणा का उद्देश्य चित्त को समस्त विषयों से विलग करके ध्यान की ओर उन्मुख करना है,ध्यान भी अपने लक्ष्य की ओर क्रमशः स्थित हो जाने पर धारणा कही जाती है, और ध्यान की परम अवस्था ही समाधि है। समाधि की परम अवस्था परमात्मा के स्वरूप का साक्षात्कार होता है, जो कि ऋषि द्वारा बताया गया है की मनुष्य मात्र का परम लक्ष्य, परम उद्देश्य है।

अनेक ग्रंथो ने योग अध्ययन के उद्देश्य को समझाते हुए मनीषियों ने कहा है, कि

द्विज सेतिल शारवस्य श्रुलि कल्पतरोः फलम् शमन भव तापस्य योगं भजत सत्तमाः । गोरखसंहिता

अर्थात् वेद रूपी कल्प वृक्ष के फल इस योग शास्त्र का सेवन करो, जिसकी शाख मुनिजनो से सेवित है, और यह संसार के तीन प्रकार के ताप को शमन करता है।

यस्मिन् ज्ञाते सर्वभिद ज्ञातं भवति निश्यितम् ।

तस्मिन् परिप्रमः कार्यः किमन्यच्छास प्रस्य माषितम् । ।

(शिव संहिता)

अर्थात जिसके जानने से सब संसार जाना जाता है ऐसे योग शास्त्र को जानने के लिए परिश्रम करना अवश्य उचित है, फिर जो अन्य शास्त्र है, उनका क्या प्रयोजन है? अर्थात् कुछ भी प्रयोजन नही है।

योगात्सम्प्राप्यते ज्ञाने योगाद्धर्मस्य लक्षणम् ।

योगः परं तपोज्ञेयसमाधुक्तः समभ्यसेत् ।।

योग साधना से ही वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति होती है, योग ही धर्म का लक्षण है, योग ही परमतप है। इसलिए योग का सदा अभ्यास करना चाहिए।

सार रूप में कहा जाए तो जीवात्मा रूपी चेतना को विराट चेतन से सम्पर्क जोड़कर दिव्य आदान प्रदान का मार्ग खोल देना ही योग अध्ययन का मुख्य उद्देश्य हैं।

1.6 योग का इतिहास एवं विकास

योग परंपरा अत्यंत प्राचीन विद्या है, लेकिन योग का वर्णन सर्वप्रथम वेदों में हुआ है। और वेद अत्यंत प्राचीन है। वेद हमारी भारतीय संस्कृति के आधार स्तंभ है वेदों में निहित ज्ञान ईश्वरीय ज्ञान है अतः वेदों के दिव्य ज्ञान ने ही मनुष्य के जीवन के हर पक्ष पर प्रभाव डाला है वेद के ज्ञान से ही जीवन को सुखमय बना कर जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त करने का मार्ग बतलाया है। **सर्वप्रथम ऋग्वेद में मुक्ति मार्ग के बारे में बतलाया गया है–**

यजते मन उत यृजते धियों विप्रा विप्रस्थ बृहतो विपश्चितः । ।

ऋग्वेद 16/267

अर्थात जीव (मनुष्य) को परमेश्वर की उपासना नित्य करनी उचित है वह मनुष्य अपने मन को सब विद्याओं से युक्त परमेश्वर में स्थित करें। यहाँ पर मन को परमेश्वर में स्थिर करने का साधन योगाभ्यास का निर्देश दिया गया है

यजुर्वेद में पुनः कहा गया—

योगे योगें तवस्तर वाजे वाजे हवामहे ।

सखाय इन्द्रमूतये ।।

अर्थात बार—बार योगाभ्यास करते और बार—बार शारीरिक एवं मानसिक बल बढाते समय हम सब परस्पर मित्रभाव से युक्त होकर अपनी रक्षा के लिए अनन्त बलवान, ऐश्वर्यशाली ईश्वर का ध्यान करते है तथा उसका आवाहन करते है।

योग के उदभव अथवा प्रथम वक्ता के याज्ञवल्वय स्मृति में कहा गया है—

हिरण्यगयों योगास्थ वक्ता नास्यः पुरातनः ।

अर्थात हिरण्यगर्भ ही योग के सबसे पुरातन अथवा आदि प्रवक्ता है। महाभारत में भी हिरण्यगर्भ को ही योग के आदि के रूप मे स्वीकार करते हुए कहा गया—

सांख्यस्य वक्ता कपिलः परमर्षिःस उच्यते ।

हिरण्यगयों योगस्य वक्ता नास्यः पुरातनः ।

अर्थात साख्य के वक्ता परम ऋषि कपिल है योग के आदि प्रवक्ता हिरण्यगर्भ है। हिरण्यगर्भ को वेदो में स्पष्ट किया गया है कि हिरण्यगर्भ परमात्मा का ही एक विश्लेषण है अर्थात परमात्मा को ही हिरण्यगर्म के नाम से पुकारा जाता है।

उपरोक्त कथन के अनुसार स्पष्ट है की योग के आदि वक्ता परमात्मा (हिरण्यगर्भ) है जहाँ से इस योग विद्या का ज्ञान आगे बढ़ा।

हठ प्रदीपिका के प्रारम्भ में आदिनाथ शिव को योग के प्रर्वतक के रूप में नमन करते हुये कहा गया है—

श्री आदिनाथ नमोस्तु तस्मै येनोपदिष्य

अर्थात उन भगवान आदिनाथ को नमस्कार है जिन्होने हठयोग विद्या की शिक्षा दी। कुछ विद्वान योग के उद्भव को सिन्धु घाटी सभ्यता के साथ भी जोड़ते है तथा इस सभ्यता के अवशेषो मे प्राप्त विभिन्न आसनों के चित्रों एवं ध्यान के चित्रों से यह अनुमान करते है कि. योग का उद्गम इसी सभ्यता के साथ हुआ है।

योग की प्राचीनता और इसके इतिहास की विषय में अनेक मान्यताएं प्रचलित हैं वास्तव में यह नहीं कहा जा सकता है कि युग का प्रारंभ कब से हुआ किसने किया। लेकिन जब से भी इसका प्रारंभ हुआ है तब से लेकर आज तक अनेक शाखाओं के रूप में योग प्रचलित हुआ है आज तक इसकी परंपरा विद्यमान है। आइए हम योग की प्राचीनता उत्पत्ति, इतिहास की विषय में हम योग के क्रमिक विकास के अनुसार जानने का प्रयास करते हैं।

योग का प्रारंभ या उत्पत्ति कब हुई या योग के उपदेशक, या आदिवक्ता कौन हैं ? इस पर अनेक विद्वानों के अनेक अनेक मत उपलब्ध हैं लेकिन प्राचीन मान्यता है की वेद भारतीय साहित्य में सबसे प्राचीन ग्रंथ माने जाते हैं। और योग का उल्लेख वेदों में मिलता है। लेकिन यह स्पष्ट नहीं कहा जा सकता की योग की शुरुआत वेदों से ही है क्योंकि वेद के मंत्र दृष्टा ऋषि महर्षि होने जानकीपुरम अवस्था में उन मंत्रों को देखा था। इस तथ्य से स्पष्ट है कि वेदों से पूर्व भी योग किसी ना किसी स्वरूप में विद्यमान था। वेदों के मंत्र दृष्टा ऋषि महर्षि किसी न किसी रूप से योग का अनुसरण और अभ्यास करते थे। अतः यह स्पष्ट है की योग विद्या की प्राचीनता वैदिक काल से भी अति प्राचीन है।

1.6.1 महर्षि पतंजलि कृत योग दर्शन का प्रमाण–

महर्षि पतंजलि के योग सूत्र को योग के क्षेत्र में सबसे प्राचीन और श्रेष्ठ ग्रंथ माना गया है। लेकिन योग्य की परंपरा का प्रारंभ इस मान्यता के आधार पर भी सही नहीं मानी जा सकती क्योंकि महर्षि पतंजलि ने अपने योग दर्शन के प्रथम सूत्र में ही बताया है कि

अथ योगानुशासनम् (1/1)

अर्थात अब हम योग का अध्ययन अनुशासन पूर्वक प्रारंभ करते हैं।

इस सूत्र के अनुसार देखा जाए तो इससे प्रतीत होता है की योग का प्रारंभिक स्वरूप अव्यवस्थित रूप में चला आ रहा था, जिसे अब एक अनुशासित स्वरूप अर्थात ब्रह्मदत्ता देने की और सर्वमान्य साधना परंपरा के रूप में प्रचलित करना है। अतः यह स्पष्ट है कि महर्षि पतंजलि के काल से पूर्व योग का अस्तित्व था।

1.6.2 हिरण्यगर्भ संबंधी ऐतिहासिक मान्यता–

योग इतिहास और आरंभ की जब भी बात आती है तो हिरण्यगर्भ का नाम निश्चित ही लिया जाता है। योग के आदि प्रवर्तक हिरण्यगर्भ ही बताए गए हैं ऐसा अनेक विभिन्न शास्त्रों में प्रमाण मिलता है।

हिरण्यगर्भो योगस्यवक्ता नान्यः पुरातनः। (याज्ञवल्क्य 12/5)

अर्थात योग के आदि आचार्य हिरण्यगर्भ है। व्रत में महर्षि व्यास ने इसी मत मैं अपने मत को मिलाते हुए विचार व्यक्त किया है।

सांख्यस्य वक्ता कपिलः परमर्षिःस उच्यते ।

हिरण्यगयों योगस्य वक्ता नास्यः पुरातनः ।।

(महाभारत 2 / 394 / 65)

जिसका अर्थ है सांख्य दर्शन के उपदेशक, आदि वक्ता में नहीं है और योग शास्त्र के अधिवक्ता आचार्य हिरण्यगर्भ हैं हिरण्यगर्भ से प्राचीन योग के वक्ता कोई भी वक्ता नहीं।

विभिन्न स्थानों में हिरण्यगर्भ शब्द की चर्चा की गई है, वास्तव में हिरण्यगर्भ क्या है कौन हैं इस विषय में अनेक मान्यताएं प्रचलित हैं हिरण्यगर्भ का अर्थ स्वर्ण बीज या स्वर्णमय आलोक का स्त्रोत तथा विश्वआत्मा, जिससे इस समस्त जगत की शक्तियों का प्रादुर्भाव हुआ है। हिरण्यगर्भ को बाद में ब्रह्मा या जगत का स्वच्छता माने जाने लगा।

हिरण्यगर्भ कौन थे? इस प्रश्न का मत अलग अलग है। कुछ मतों के बारे में वर्णन इस प्रकार है। एक हिरण्यगर्भ की व्याख्या सूर्य के रूप में जाना जाता है जिसका अर्थ है तद रूप है, तदरूप एतिहासिक व्यक्ति को कहते है। ऐतिहासिक व्यक्ति द्वारा किसी योग ग्रंथ की रचना हो सकती थी लेकिन वर्णित ऐतिहासिक व्यक्ति द्वारा किसी भी ग्रंथ की रचना का प्रमाण नहीं मिलता। दूसरा हिरण्यगर्भ को महत रूप में वर्णन है। महत जड़ रूप में वर्णन है। हिरण्यगर्भ के इस स्वरूप में किसी भी योग शास्त्र की रचना के होना सर्वथा असंभव है।

तीसरे रूप में हिरण्यगर्भ का प्रसंग अहितर्वन्ध्य संहिता में महान योगी के रूप में मिलता है । इस रूप में उनके द्वारा रचित ग्रंथो को रोग सम्मत माना जा सकता था लेकिन इसका कोई भी प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिलता।

चौथे रूप में हिरण्यगर्भ का उल्लेख योग शिखोपनिषद् में परम शिव का भक्त और शिष्य के रूप में मिलता उनके द्वारा किसी योग ग्रंथ की रचना का कोई प्रमाण नहीं मिलता।

पांचवे हिरण्यगर्भ को उत्तम नामक मन्वन्तर के ऊर्जा ऋषि के पिता के रूप में उल्लेख मिलता है, इनके द्वारा योग ग्रंथ की कोई भी रचना नही मिलती। इस लिए योग के आदिवक्ता के रूप में इन्हे भी नही माना जा सकता। वैदिक युग में छठे हिरण्यगर्भ का वर्णन मिलता है उन्हे हिरण्यगर्भ ऋषि परमेष्ठी प्रजापति के नवम पुत्र माने जाते थे। उनके द्वारा 10 मंत्रों में योग सम्मत पदों का उल्लेख नहीं मिलता । इस लिए उन्हें भी योग के आदिवक्ता नही माना जा सकता।

सातवें रूप में प्रजापित ब्रह्माजी के रूप में हिरण्यगर्भ का यह परिचय वास्तविक आदिवक्ता के रूप निकटस्थ है सृष्टि के आदिकाल में प्रादुर्भव के कारण आदि ऋषि बड़े हैं और चारो वेदों के ज्ञाता भी है। सृष्टि कर्ता ब्रह्मा जी ने सृष्टि के निर्माण के लिए परम तप एमएमकिया। सृष्टि निर्माण में किया गया तप योग का ही एक रूप तो था। प्रजापति ब्रह्मा जी द्वारा रचित एक योग सम्मत ग्रन्थ ब्रह्म संहिता का भी उल्लेख है। श्रृष्टि कर्ता ब्रह्मा सृष्टि के आदिकाल के प्रथम ऋषि होने के कारण कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी यदि उन्हें योग के आदि वक्ता मान लिया जाए।

1.6.3 मध्य युग के पुरातात्विक प्रमाण–

मध्ययुग की सभ्यताएं योग विद्या का प्रारंभ का युग था ऐसा सैंधव कालीन सभ्यता के ऊपर दृष्टिपात करने से पता चलता है। सिंधु सभ्यता मोहनजोदड़ो नगरीय सभ्यता की खोज के समय कुछ धार्मिक पुरातात्विक अवशेष प्राप्त हुए। जय मां भगवती एवं पुरुष देवता की प्रतिमा जो प्राचीनतम शिव के आदर्श रूप के स्वरूप में प्रतीत होती है। मोहन जोदड़ो एंड द एंड सिविलाइजेशन नामक पुस्तक में सर जान मार्शल ने मोहनजोदड़ो में उपलब्ध मूर्ति के विषय में बताया है की यह मूर्ति त्रिमुखी है और एक ऊंचे आसन पर जो योग मुद्रा में बैठी है उसके दोनों पैर मुड़े हुए और एड़ी से एड़ी मिली हुई है, यह योग में सिद्धासन के समान प्रतीत होती है। हाथ घुटने के ऊपर आगे की ओर फैले हैं।

उक्त विवरण के अनुसार यह योग में वर्णित ध्यान मुद्रा से मिलती–जुलती आकृति है इससे ताकि उस समय योग की प्रचलित योगिक परंपराओं का प्रचलन अवश्य होगा। पता हम कह सकते हैं कि योग परंपरा का मध्यकालीन सिंधु सभ्यता से भी पूर्व प्रचलित थी।

1.6.4 पुराणों की मान्यता के अनुसार–

पुराणों में वर्णित विभिन्न प्रसंगों में एक तत्व मिलता है इस सृष्टि के आदिकाल में सनाकादि विस्वान को भगवान हिरण्यगर्भ में परमात्मा के साक्षात्कार के रूप में सनातन योग का उपदेश दिया था। आगे चल कर यही सनातन योग एवं मनोज राजयोग कर्मयोग अनुदेशकों में प्रचलित हुआ। कालांतर में यही ब्रह्म योग सांख्य, योग ज्ञान, ज्ञान योग अध्यात्म योग नाम से प्रचलित हुआ।

हिरण्यगर्भ द्वारा योग की दूसरी शाखा कर्मियों की परंपरा में परिवर्तित हुई। इस शाखा के अनुयाई स्वकर्म के साथ–साथ आत्म कल्याण के भी जिज्ञासु थे।

शाखा की विशेषता यह थी कि जो इस परंपरा के अनुयाई हैं वह यदि धर्म को सर्वथा त्याग नहीं कर सकते तो वह कर्मों को ईश्वर के चरणों में अर्पित करते हुए कर्मों के फल सिरोही विरासत होकर समाहित चित्र के साथ परमात्मा का साक्षात अर्थात केवल्य की प्राप्ति कर सकते हैं।

1.6.5 श्रीमदभगवत गीता में उपलब्ध प्रमाण–

अनंतिम रूप से 4500 ईसा पूर्व ईस्वी सन के बीच की अवधि को योग के विकास के रूप में श्रेष्ठ अवधि के रूप में माना जाता है। इसी का में श्रीमद्भागवत गीता का योग विद्या का ऐतिहासिक और सबसे प्रमाणिक साक्ष्य श्रीमद्भागवत गीता में मिलता है। अर्जुन के संसद को दूर करते हुए योगेश्वर श्री कृष्ण भगवान एक प्रसंग में योग की प्राचीनता के विषय में समझाते हुए कहते हैं

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।

विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ।।

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ।

स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तपः ।।

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ।

भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ।।

अर्थात इस सनातन योग के उपदेश को मैने सूर्य (विवश्वान) के प्रति कहा, विवस्वान अपने पुत्र मनु से कहा और मनु ने अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकु को से कहा। हे परंतप अर्जुन इस प्रकार से योग परंपरा से प्राप्त इस युग को राजयोग द्वारा जाना गया। किंतु इसके बाद पृथ्वी से बहुत काल तक यह ज्ञान विलुप्त हो गया था। हे अर्जुन तुम मेरे प्रिय सखा और प्रिय भक्त हो इसलिए वही पुरातन योग आज मैं तुम्हें बताने जा रहा हूं क्योंकि यह बड़ा ही उत्तम रहस्य है यह गुप्त रखने योग्य विषय है।

गीता में वर्णित इस कथन से स्पष्ट है। योग का अस्तित्व सृष्टि के प्रारंभ से ही था जो कि कल अंतर में विलुप्त ही हुआ लेकिन पुनः अवतारी पुरुषों के द्वारा संरक्षित किया गया।

1.6.6 आधुनिक काल में योग का विकास–

आधुनिक काल को 1700–1900 ईसवी के बीच की अवधि को माना गया है। इस अवधि में योग के अनेक विद्वानों जैसे– रमन महर्षि, रामकृष्ण परमहंस, परमहंस योगानंद, विवेकानंद, महर्षि अरविंद, पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य आदि ने राज योग के विकास में योगदान दिया है। इन विद्वानों के योगदान से ही इस युग में योग के विभिन्न मार्ग जैसे वेदांत, भक्ति योग, नाथ योग या हठ योग पुष्पित और पल्लवित हुआ। इन्ही योग परंपराओं में शादंगा–गोरक्ष शतकम का योग, चतुरंग योग–हठयोग प्रदीपिका का योग, सप्तांग योग–संहिता का योग–हठ योग के मुख्य योग धाराएं है।

आज आधुनिक काल में स्वास्थ्य रक्षण, स्वास्थ्य के संवर्धन हेतु योग के प्रति हर व्यक्ति में आस्था बढ़ी है। स्वामी विवेकानंद, श्री टी कृष्णमचार्य, स्वामी कुवालयनंदा, श्री योगेंद्र, स्वामी राम, श्री अरविंदो, महर्षि महेश योगी, आचार्य रजनीश, पट्टाभिजोइस, बी के एस आयंगर, स्वामी सत्येंद्र सरस्वती, पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य, श्री श्री रवि शंकर आदि योग विद्या के मर्मज्ञो के उपदेशों से आज योग पूरी दुनिया में फैल गया है।

आज स्वामी रामदेव जी ने आधुनिक संसाधनों के प्रयोग करते हुए योग को बहुत ही व्यवहारिक बना दिया है। आज योग मात्र भारत ही नहीं संपूर्ण विश्व में भी ख्याति मिली। आज सम्पूर्ण विश्व योग के महत्त्व को समझते हुए शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, सामाजिक स्वास्थ्य के संरक्षण और विकास के लिए नित्यप्रति योग कर रहा है।

योग का मानव जीवन इतना अधिक महत्व रखने के कारण आज भारत के नेतृत्व में सन 2015 से अंतर्राष्ट्रीय योग के रूप में मनाया जाने लगा है। आधुनिक युग में योग गांव गांव तक पहुंच रहा है। योग विद्यालयों, कालेजों, विश्वविद्यालयों, सामुदायिक अस्पतालो में अनिवार्य रूप से प्रचलित हो गया है।

1.7 आधुनिक युग में विभिन्न क्षेत्रों में योग की उपादेयता

आधुनिक युग भौतिक संसाधनों और विज्ञान की तकनीकी का युग है। मनुष्य विकास के उस अवस्था में है जहां विकास के राह पर चलते चलते हम प्राचीन और महत्त्वपूर्ण ज्ञान को आधुनिकता की दौड़ में विस्मृत कर त्याग दिया गया था, आज उसी आधुनिकता की अंधी दौड़ में हुए के दुष्प्रभाव को देखते हुए उससे बचने के उपायों की ओर पुनः उपयोगी और प्राचीन ज्ञान की ओर उन्मुख हुए है। उसी ज्ञान की कड़ी में योग विद्या का स्थान शीर्ष पर है। आज योग ने आधुनिक जीवन शैली में अनेक रूप से विकसित हो रहा है। हर तरफ से हताशा निराशा के बाद व्यक्ति को शांति की आशा ने उसे योग विद्या की ओर ही उन्मुख कर रही है। वस्तुओ के क्षणिक आसक्ति भरे सुख को त्याग कर प्राचीन काल के ऋषियों और संतो के सुख का कारण का मूल समझ कर आज आधुनिक मानव योग विद्या के ज्ञान के महत्त्व को समझने लगा है। इस कार्य के लिए अनेक धार्मिक, सामाजिक संगठनों ने भी लोगो को योग के प्रति जागरूक करने का कार्य किया है। भारत सहित अनेक देशों में योग की अलख जगाने के लिए अयंगर और स्वामी रामदेव जी के प्रयास किसी से छिपे नही है योग के व्यावहारिक ज्ञान के द्वारा आधुनिक युग में एकांगी विकास के दुष्प्रभावों से उत्पन्न संकटो से योग विद्या के ज्ञान से समूल अंत करने में सफलता मिली है।

1.7.1 सामाजिक मूल्यों के क्षेत्र में–

आधुनिक युग में योग को योग के योगी महर्षि सांसारिक जीवन और आध्यात्मिक जीवन के मध्य सामंजस्य स्थापित करने का साधन मानते है। क्योंकि सांसारिक जीवन का विकास एकांगी और लक्ष्यविहीन है किंतु आध्यात्मिक जीवन व्यक्ति के भीतर त्याग, संतोष, आसक्ति, भावसंवेदना जैसे आध्यात्मिक गुणों को भर कर जीवन को श्रेष्ठता को और उन्मुख कर देता है। आज योग के क्षेत्र में स्वामी राम देव जी का योगदान सर्व विदित है योग को जन जन तक पहुंचाने और आधुनिक युग में व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के सभी पहलुओं जैसे शारीरिक मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य के विकास के लिए बृहद स्तर पर कार्य हो रहे है। शिक्षा के क्षेत्र में बच्चो में बढ़ते हुए मानसिक तनाव और भावनात्मक विकृतियों के लिए विद्यालयों में शारीरिक शिक्षा में योग के द्वारा के सर्वांगीण विकास के परिणामों में स्मृति विकास, एकाग्रता, समाजस्यता, कुशल तनाव प्रबंधन में योग की भूमिका देखी जा सकती है।

1.7.2 शिक्षा के क्षेत्र में उपादेयता–

शिक्षा के क्षेत्र में योग के बढ़ते प्रभाव को का कारण आज विद्यार्थियों नैतिक मूल्यों में सकारात्मक सुधार भी है। आज विद्यार्थियों में निरंतर गिरते नैतिक मूल्यों का पुनः स्थापित करने में योग की भूमिका कारगर सिद्ध हो रही है। योग में यम द्वारा विद्यार्थी अपने कर्तव्यों के निर्वहन करने के लिए प्रेरित हो रहे है। नियम से आत्मअनुशासन सीख कर नैतिक मूल्यों के स्तर पर विकसित हो रहे है। विश्व भर के विद्वानों ने इस बात को स्वीकार्य किया है को योग शारीरिक,मानसिक ही नही नैतिक, और सामाजिक विकास होता है। इस सत्य के आधार पर अब सभी की मान्यता है की योग को जन जन तक पहुंचाया जाना चाहिए।

1.7.3 चिकित्सा के क्षेत्र में उपादेयता–

योग संपूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त करने का साधन है। सम्पूर्ण स्वास्थ्य के लिए व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, और सामाजिक दृष्टि से भी स्वस्थ होना नितांत आवस्यक है। इस लिए संपूर्ण स्वास्थ्य की परिकल्पना के लिए योग को आत्मसात करना ही एक मात्र साधन प्रतीत होगा। योग मात्र रोगोपचार ही नहीं करता वरन योग स्वास्थ्य प्रदायक भी है। गंभीर से गम्भीर रोगों से ग्रस्त लोग अनेक चिकित्सीय पद्धतियों के उपचार में उचित लाभ नहीं मिल पाने से योग की शरण में आ रहे है। वैकल्पिक चिकित्सा में योग चिकित्सा सभी चिकित्सा पद्धतियों में सवोत्तम चिकित्सा पद्धति है। इस चिकित्सा पद्धति की विशेषता यह भी है कि यह बिना किसी वितरित नकारात्मक प्रभाव के जो समस्याएं चिकित्सा पद्धति से संभव नहीं है वह योग पद्धति से संभव है। भारत जैसे विकास शील देश में निम्न व मध्यम आर्थिक स्थिति वाले व्यक्ति के लिए कम खर्चीली एवं सर्वसुलभ चिकित्सा पद्धति है।

अनेक चिकित्सा पद्धतियों की तरह योग चिकित्सा पद्धति की तरह असाध्य प्रकृति के समस्त शारीरिक व मानसिक रोगोपचार में आधुनिक चिकित्सा विज्ञान भी योग को मान्यता देने लगा है। साथ ही योग की चिकित्सात्मक मूल्य से भी प्रभावित है। जो इस प्रकार हैं– आसन प्राणायाम, शुद्धि क्रियाएँ, बन्ध, मुद्रा, योग निद्रा प्रत्याहार आदि के चिकित्सकीय प्रभाव को दर्शाने वाले विभिन्न सन्दर्भ हठयोग के ग्रन्थ में है।

इसीलिए इस सार्वभौमिक सत्य को समझते हुए इसकी वैश्विक अपील को स्वीकार करते हुए, 11 दिसंबर 2014 को, संयुक्त राष्ट्र ने संकल्प 69/131 द्वारा 21 जून को अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस के रूप में घोषित किया।

योग के अंतर्राष्ट्रीय दिवस का उद्देश्य योग के अभ्यास के कई लाभों के बारे में दुनिया भर में जागरूकता बढ़ाना है। अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस की की घोषणा का प्रस्ताव भारत द्वारा प्रतावित किया गया था और 175 सदस्य राज्यों द्वारा इसका विश्व रिकॉर्ड बनाया गया था। यह प्रस्ताव सबसे पहले प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने महासभा के 69वें सत्र के उद्घाटन के दिन की थी।

1.8 योग में मिथ्या धारणा

योग विद्या मनुष्य में देवत्व जगाने की विद्या है और योग विद्या बहुत ही व्यापक है। योग संपूर्ण सृष्टि में विद्यमान है। योग जीवन जीने की कला है। आज इसी कला को भूल इस महानतम मानव जीवन को दुखों और कठिनाई से जी रहे है। योग मनुष्य के सर्वांगीण विकास की कुंजी है। सिर्फ अज्ञानता और पूर्वाग्रहों के कारण जनसामान्य में योग के लिए अनेक मिथ्या धारणाएं है जिन्हे त्याग कर योग के मार्ग पर चला जा सकता है।

- **योग मात्र ऋषि मुनियों के लिए है**

प्राचीन काल योग मात्र ऋषि मुनि ही किया करते थे और यही मान्यता लोगो में है की यह सिर्फ ऋषि मुनि और, संत, फकीर, संन्यासी महात्माओं के लिए है, एक गृहस्थ व्यक्ति योग नहीं कर सकता। क्योंकि संत महात्मा और संन्यासी तो सब कुछ छोड़ देता है। गृहस्थ में छोड़ना संभव नहीं है। जबकि सन्यास अर्थात छोड़ना, योग सिर्फ जोड़ने के लिए है और यही भूमिका होनी चाहिए। योग संन्यासी के लिए ही है यह एक मिथ्या धारणा ही है। योग मार्ग ज्ञानी –अज्ञानी, छोटे– बड़े, धनी – निर्धन आदि सभी के लिए है।

- **योग मात्र रोगियों के लिए है**

योग मात्र उन्ही के लिए है जो जीर्ण असाध्य रोगों से ग्रस्त है। जो शारीरिक, मानसिक आधि व्याधि से ग्रस्त है ऐसे लोगो को रोग मुक्त करने के लिए ही योग है। या मैं शरीर से स्वस्थ हूं, और अभी युवा हूं। मैं बीमार नही हूं तो योग क्यों करूं। ये सभी बाते मिथ्या धारणाएं है। योग अस्वस्थ व्यक्ति से अधिक जरूरी स्वस्थ व्यक्ति के लिए लिए आवास्यक है क्योंकि योग स्वास्थ्य रक्षण और विकास के लिए जरूरी है। योग युवा वृद्ध, अति वृद्ध, दुर्बल, व्याधिग्रस्त, स्त्री पुरुष, बालक आदि सभी के लिए है।

आधुनिक युग ने यांत्रिक प्रगति के साथ अनेक शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक रोग लाया है आज हर व्यक्ति इन सभी रोगो से ग्रस्त है। अतः सर्वांगीण स्वास्थ्य रक्षण और विकास के लिए सभी को मिथ्या धारणा त्याग कर योग करना चाहिए।

- **योग एक चमत्कार है**

कई बार देखने को मिलता है की कोई ढोंगी बाबा, साधु, फकीर का भेष में आग पर चलने, कांच पर चलने, कांच खाने, पारा पी जाना, एसिड पी जाना हाथ की सफाई से जादू दिखाने को योग विद्या द्वारा सिद्धि प्राप्त है ऐसा बता कर लोगो के मन में चमत्कार, सिद्धी आदि की मिथ्या धारणा योग के प्रति बनाते है। जबकि योग शास्त्र केवल बुद्धिगम्य शास्त्र ही नही बल्कि रसायन शास्त्र, भौतिक शास्त्र की तरह प्रयोग सिद्धि शास्त्र है। आज कल हठ योग को भी लोग बाबा, फकीरी, और जोगी आदि हाथ उठा कर होने, कांटो पर लेटे रहने,

अन्न त्याग कर देने के हठ को हठ योग के चमत्कार बताते है और लोगो में हठ योग के प्रति मिथ्या फैली है।

- **योग हिंदू धर्म का विषय है**

भारत सहित विदेशों में धारणा है की योग हिंदू धर्म का विषय, क्योंकि यह सनातन का अंग है। परंतु योग विद्या कोई धर्म नहीं है योग विद्या ,जाति लिंग ,भाषा प्रांत आदि सीमाओं से रहित है अतः योग को किसी धर्म से जोड़ने का कोई औचित्य नहीं है यह समस्त मानवता के कल्याण के लिए है योग किसी भी जाति किसी भी धर्म मजहब का व्यक्ति योग के मार्ग को अपनाकर आत्म कल्याण करते हुए परम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। अतः अन्य धर्म के लोग योग को हिंदू धर्म का मानकर उसे ना करने का मिथ्या धारणा मन में बनाए हुए हैं।

1.9 अभ्यास प्रश्न

1.9.1 सत्य/असत्य बताइये–

क. युजिर योगे शब्द का प्रयोग प्राणायाम के लिए प्रयोग किया गया है।

ख. योगः कर्मसु कौशलम् श्रीमद्भागवत गीता में अनुसार सूत्र है।

1.9.2 बहुविकल्पीय प्रश्न

क. योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः सूत्र है –

अ. हठप्रदीपिका

ब. शिव संहिता

स. पातंजल योगसूत्र

द. केशव संहिता

ख. जीवन जीने की कला ही योग है यह कथन

अ. पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य

ब. स्वामी विवेकानंद

ग. चित्त की वृत्तियों का निरोध होना योग है किस महर्षि के अनुसार है–

अ. गीता

ब. महर्षि पतंजलि के

स. महर्षि रामानन्द सागर

द. महर्षि कपिल के स. महर्षि याज्ञवल्क्य

घ. समत्वं योग उच्यते श्लोक किस ग्रंथ से है

अ. हठ योग प्रदीपिका

ब. सांख्य दर्शन

स. श्रीमद् भगवद्गीता

द. ऋग्वेद

1.10 सारांश

आपने इस इकाई में योग के परिचयात्मक स्वरूप को पढ़ा है। योग के के अर्थ और परिभाषा को पढ़ कर योग के विषय में अधिक से अधिक से अधिक जाना। योग हमारे संपूर्ण जीवन में कितना महत्व पूर्ण स्थान रखता है इस महत्व के साथ योग समग्र व्यक्तित्व के विकास के साथ भौतिक व आध्यात्मिक जीवन में कैसे उपयोगी है इस मर्म को भी विस्तार से समझा होगा। योग की प्राचीनता योग विद्या का प्रारंभ कहा से हुआ और योग का आधुनिक जीवन में क्या उपयोगिता है इस विषय को भली भांति समझ चुके होगे। आज योग विद्या में अज्ञानी और ढोंगी लोगो के कारण योग अनेक मिथ्या धारणा से भरा है वे धारणाएं क्या है और उन धारणाओ से बच कर योग के सही स्वरूप को जनकल्याणार्थ ज्ञान को प्रसारित किया जाए।

1.11 शब्दावली

उन्मुख	उत्सुक
आसक्ति	प्रेम ,अनुराग
उत्कृष्ठ	उत्तम
अंतर्निहित	समाहित
अधिष्ठाता	मुखिया
आत्मसात	अपने अधिकार में
परिकल्पना	अनुमान करना

ओचित्य	उचित का भाव
असाध्य	कठिन

1.12 संदर्भ ग्रंथ

पतंजलि योग सूत्र– गीता प्रेस
श्रीमदभागवदगीता गीता प्रेस
अग्निपुराण– गीता प्रेस
सांख्य दर्शन – गीता प्रेस
योग साधना और तपश्चर्या को पृष्ठ भूमि – तपोभूमि मथुरा
कर्म योग का अभ्यास – स्वामी शिवानंद
यजुर्वेद संहिता गीता प्रेस
ऋग्वेद संहिता गीता प्रेस

1.13 निबंधात्मक प्रश्न

क. योग का अर्थ बताते हुए, आधुनिक जीवन में विभिन्न क्षेत्रों में योग की उपादेयता बताइए?

ख. योग का महत्त्व और योग की मिथ्या धारणाएं क्या क्या है?

इकाई – 02 राजयोग, हठ योग, भक्ति योग

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 राज योग का अर्थ और परिभाषा

2.3 राजयोगियों की अवस्थाएँ

- 2.3.1 योग के अधिकारी

2.4 राजपथ

- 2.4.1 राजयोग के अंग
- 2.4.2 यम
- 2.4.3 नियम
- 2.4.4 आसन
- 2.4.5 प्राणायाम
- 2.4.6 प्रत्याहार
- 2.4.7 धारणा
- 2.4.8 ध्यान
- 2.4.9 समाधि

2.5 हठ योग

- 2.5.1 हठ योग का उद्देश्य
- 2.5.2 हठ योग के प्रमुख ग्रन्थ
  - 2.5.2.1 हठ प्रदीपिका
  - 2.5.2.2 घेरेंड संहिता
  - 2.5.2.3 शिव संहिता

2.6 भक्ति योग

- 2.6.1 भक्त के भेद
- 2.6.2 नवधा भक्ति
- 2.6.3 भक्ति के भेद

2.7 अभ्यास प्रश्न

2.8 सारांश

2.9 शब्दा वली

2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.11 निबंधात्मक प्रश्न

2.0उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद हमें ज्ञात होगा कि –

- राजयोग क्या है?
- राज योग मार्ग साधकों के लिए सरल सुलभ क्यों है?
- योग दर्शन में वर्णित राज योग के कितने प्रकार है?
- राज योग करने का अधिकार किसे है?
- राज योग में चार अवस्थाएं कौन कौन सी है?
- हठ योग को समझ पाएंगे।
- हठ योग के विभिन्न ग्रंथो का परिचय जान सकेंगे।
- हठ योग के ग्रंथों के विषय में जान पाएंगे।
- भक्ति योग मार्ग का अर्थ समझ पाएंगे।
- जान पायेगे की भक्ति योग के विभिन्न मार्ग कौन कौन है?
- भक्ति योग में नवधा भक्ति क्या है ये समझ सकेंगे।
- भक्ति से कैसे समाधि की सिद्धि होती है।

2.1 प्रस्तावना

योग के अनेक मार्गो में राज योग, हठ योग और भक्ति योग के विषय में बताया जा रहा है। इस संसार में मनुष्य ने अलग–अलग मत मान तोरो एवं संप्रदायों के द्वारा अनेक मार्ग बना लिए हैं ठीक वैसे ही योग के भी अनेक मार्ग हैं, योग के मार्ग भले अलग अलग हो लेकिन उनका उद्देश्य मनुष्य को स्वयं के भीतर सुषुप्त शक्ति का जागरण कर उसे परम सत्ता के दिव्य लक्ष्य की ओर ले जाना ही है। जिस प्रकार अनेक नदियां अंत में सागर में जाकर मिल जाती हैं उसी तरह से योग के अंग राज योग भक्ति योग हठयोग रूपी नदियां उस परम सत्ता रूपी समुद्र में कर एकाकार हो जाती है। महर्षि पतंजलि द्वारा रचित योग दर्शन ग्रंथ राजयोग का प्रमुख ग्रंथ माना गया है। राजयोग के द्वारा प्राप्त समाधि मोक्ष को प्रदान करती है। राज योग का प्रारंभ सूक्ष्म शरीर अर्थात मन के नियंत्रण से होता है। हठयोग का प्रारंभ स्थूल शरीर की शोधन के साथ सूक्ष्म शरीर की ओर बढ़ते हुए अपनी प्रस्तुत चेतना को जागृत करके परम लक्ष्य की ओर ले जाता है। हठयोग के प्रमुख ग्रंथ हठयोग प्रदीपिका एवं घेरंड संहिता है शिव संहिता में भी हठयोग का वर्णन है। भाव प्रधान व्यक्ति के

लिए भक्ति योग मार्ग श्रेष्ठ है। अपनी भक्ति योग में साधक भक्ति योग मार्ग को अपना कर अपने आराध्य के प्रति संपूर्ण समर्पण के साथ एकाकार हो जाता है।

2.2 राज योग का अर्थ और परिभाषा

राज योग का अर्थ योग के राजा के रूप में क्यों किया जाता है। अर्थात राजयोग समस्त योग मार्गो का राजा है। राजयोग शब्द का अनेक उपनिषदों में प्रयोग किया गया है। वैसे समस्त युवाओं का उद्देश्य लक्ष्य समाधि की अवस्था को प्राप्त करना है। जबकि राजयोग का साधक साधना का प्रारंभ समाधि अवस्था से ही करता है। इसलिए सभी मार्गो में श्रेष्ठ माना गया है इसीलिए इसे राजयोग कहा गया है।

इस मार्ग का अवलंबन कोई भी कर सकता है अर्थात छोटा बड़ा ऊंचा नीचा, निर्धन और धनी कोई भी इस मार्ग पर चल सकता है जिस प्रकार से राज्य में राज्य मार्ग पर सभी को चलने का अधिकार है वैसे ही राजयोग सभी के लिए समानता का भाव समाहित किए हुए हैं।

"यः राज दिप्तो" धातु से बने दीप्ति अर्थ में प्रयोग किया जाता है। जिसका तात्पर्य है की राज योग के मार्ग के साधक को राज योग के सिद्ध होने से साधक का चित्त मल रहित हो जाने से कांति युक्त हो जाता है। जिसके परिणामतः साधक अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाता है।

योग शिखोपनिषद में योग को परिभाषित करते हुए कहा गया है।

" रजसो रेतसो योगात् राजयोगऽति समृतः ।।"

अर्थात – रजरूपी कुंडलनी का रेत रूपी शिव के साथ मिलन के योग को ही राज योग है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राजयोग में जीवात्मा का ब्रह्म के साथ विलय हो जाना भी योग बतलाया गया है,जीवात्मा ब्रह्म से मिलकर उसी का अंश हो कर ऐसी अवस्था प्राप्त कर लेती है जिसमे द्वैतभाव शून्य हो जाता है। यही तो समस्त योग मार्गों का परम लक्ष्य है। इसी स्थिति में साधक के लिए समस्त दुखों से निवृति हो जाती है और साधक के लिए समस्त जगत का लोप हो जाता है जिससे साधक अपने शुद्ध आत्मस्वरूप में स्थिति हो जाता है। राजयोग में संयम के लिए विशेष रूप से जोर दिया गया है
संयम की के विषय में पतंजलि कहते हैं–

त्रयमेकत्रसंयमः(योग सूत्र 3/4)

अर्थात् धारणा ध्यान और समाधि के होने से संयम कहलाता है।

अतः संयम के तीन चरण धारणा, ध्यान समाधि का निरंतर अभ्यास करते रहना चाहिए जिससे साधक का चित्र निर्मल अर्थात चित्त की वृत्तियों का निरोध हो जाता है। संयम के तीनों साधनों के साथ–साथ यम नियम का पालन और प्राणायाम का नियमित अभ्यास साधक को राजयोग के लिए सहायक बनाया गया है। यम नियम में के अभ्यास से वाह्य एवं आंतरिक कषाय कल्मष से रहित हो जाता है।

महर्षि पतंजलि प्राणायाम का लाभ बताते हुये कहते हैं –

धारणासु च योग्यता मनसः (2/53)

अर्थात् प्राणायाम के अभ्यास से चित्त में धारणा की योग्यता उत्पन्न होती है।

प्राणायाम के अभ्यास से चित्त एक विषय पर स्थिर होने लगता है, प्राणायाम के निरंतर अभ्यास से ही क्रमशः ध्यान व समाधि अवस्था प्राप्त होती है। योग वाशिष्ठ के अनुसार–प्राणायाम के अभ्यास करने वाले साधक को राज्य से मोक्ष तक की संपदायें प्राप्त होती है। राज योग में प्राणायाम की महत्ता को इसी लिए बतलाया गया है। योग के सभी मार्गो पर चलने वाले सभी योग साधको ने राजयोग को महत्ता को स्वीकार करते है। योग की सभी मार्गों की तरह राज योग का का लक्ष्य समाधि ही है।

हठयोग साधना के हठयोगी को भी साधना राजमार्ग को प्राप्त करने की लिए करते हैं, इसीलिए स्वात्मा राम जी हठ विद्या पर उपदेश देते हुए कहते

केवलं राजयोगाय हठ विद्योपदिष्यते ।

अर्थात् – मैं इस हठ विद्या का उपदेश केवल राजयोग की प्राप्ति के लिये कर रहा हूँ।

2.3 राजयोगियों की अवस्थाए

शास्त्रों में चार प्रकार के राजयोगियों का वर्णन प्राप्त होता है–

1. प्रथम कल्पित
2. मधुभूमिक
3. मधुप्रतीक
4. अतिक्रांत भावनीय

1. जो सवितर्क के समाधि का अभ्यास करता है उसे प्रथम कल्पित योगी को प्रारंभिक योग साधना करने वाला कहलाता है।

2. निवितर्क के समाधि का अभ्यासी साधक मधुभूमिक योगी कहलाता है, यह सवितर्क से थोड़ा उच्च कोटि का होता है।
3. मधुप्रतीक योगी विचारानुगत समाधि का अभ्यास करने वाला तथा इस अवस्था का साधक आनन्दानुगत अवस्था में रहता है।
4. ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त साधक अतिक्रान्त भावनीय योगी कहलाते है। ऐसे साधक अस्मितानुगत समाधि सिद्ध होते हैं तथा उन्हें जिससे उन्हें असंप्रज्ञात समाधि की अवस्था को प्राप्त होते है। अतिक्रांत भावनीय अवस्था में आत्मा को अपने स्वरूप का भान होता है। इस अवस्था को प्राप्त साधक जब निरंतर अभ्यास में रहता है तो ऋतंभरा प्रज्ञा के लिए साधक के चित्त से वैराग्य उत्पन्न हो जाता है तो वह चित्र को कार्य पूर्ण हो जाने से प्रकृति में मेरे हो जाता है और बिना चित्त को प्रभावित किए आत्मा अकेली रह जाती है। योगिजन इसी को योग के परम लक्ष्य अर्थात कैवल्य, जिसे मोक्ष या मुक्ति भी कहते हैं।

2.3.1 योग के अधिकारी– राजयोग में तीन प्रकार के अधिकारी कहे जाते हैं–

1. उत्तम
2. मध्यम
3. अधम

1. उत्तम कोटि – उत्तम कोटि के साधक उन्हें कहते है जिन्हें केवल अभ्यास और वैराग्य के द्वारा समाधि सिद्ध हो जाती है। उत्तम कोटि को साधना के स्तर को ध्यान में रखकर किया निर्धारण किया गया है। महर्षि पतंजलि भी अष्टांग योग में चित्तवृत्ति निरोध के मुख्य उपायों का वर्णन करते हुए कहते हैं

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः 2 (1/12)

अर्थात् – चित्त की वृत्तियों का निरोध अभ्यास और वैराग्य द्वारा होता है या उत्तम कोटि के योग साधकों को मात्र ईश्वर प्राणिधान के द्वारा ही समाधि की अवस्था प्राप्त हो जाती है। महर्षि पतंजलि कहते हैं–

समाधि सिद्धिरीष्वरप्रणिधानात् (2/45)

अर्थात् उत्तम कोटि के साधकों के लिये कहा गया है की ईश्वर प्रणिधान से समाधि सिद्ध होती है। ऐसे साधकों को योग के अन्य अंगों का पालन किए बिना ही पूर्व जन्मों की उच्च कोटि की साधना के आधार पर सीधे समाधि की अवस्था में प्रवेश मिल जाता है।

2.मध्यम कोटि – इस कोटि के साधको में साधना से सिद्धि उत्तम कोटि के साधकों की तुलना में कठिनता से सिद्ध होता है । पूर्व जन्मों के योग साधना के संस्कार इतने उच्च नही होते जिनसे वे योग साधना के मार्ग पर सिद्धि प्राप्त करा सके।

महर्षि पतंजलि राजयोग में क्रिया योग का वर्णन करते हुये कहते हैं–

"तपः स्वाध्याय ईश्वरप्रणिधानाति क्रियायोग (2/1)

अर्थात् – तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्राणिधान क्रिया योग है। मध्यम कोटि के साधकों को शीत–उष्ण, मान–उपमान, सुख–दुख आदि को सहने करने की आदत अपने शरीर को डालनी होती है। मन में धैर्य और सभी अवस्थाओं में चित्त को समान बनाये रखने का अभ्यास करना होता है। साथ ही आध्यात्मिक ग्रंथों का अध्ययन और ईश्वर के प्रति समर्पण का भाव रखना होता है, तभी समाधि को प्राप्त कर पाते हैं।

3. अधम कोटि– अधम कोटि के साधकों की श्रेणी में ऐसे साधक आते है जिन्होंने अब तक योग साधना का प्रारंभ भी नहीं की है, ऐसे साधकों के लिए अष्टांग योग अति आवश्यक है। क्योंकि अष्टांगिक मार्ग के द्वारा उनके शरीर मन शुद्ध और सबल हो सकेगा। जिसके बाद ही वे समाधि का लाभ प्राप्त कर सकेंगे। राजयोग की साधना में साधक की कोटि की जिस स्तर पर होगी वैसी ही उसको योग सिद्धि प्राप्त होगी।

राजयोग के अनेक साधना मार्ग अनेक नाम से जाने जाते है। राज योग ध्यान योग कहीं समाधि योग, कहीं आर्ष योग के नाम से जाना जाता है। महर्षि पतंजलि ने इस योग पद्धति मार्ग को अष्टांग योग के नाम से बतलाया है। यही सभी योगों में श्रेष्ठ है। योग मार्ग के साधक को अपनी स्थिति के अनुसार योग में सिद्धि प्राप्त करने के पथ पर अग्रसर हो सकता है।

"हठ बिना राजयोगो, राजयोगं बिना हठः, न सिद्धयति । (ह.प्र. 276)

हठयोग के बिना राजयोग और राजयोग के बिना हठयोग में सिद्धि संभव नहीं है। ये दोनों ही योग पक्ष जीवन के दोनो पहलुओं प्रभावी होते जैसे राजयोग मानसिक पक्ष तथा हठयोग शारीरिक पक्ष है। मन द्वारा प्राण पर तथा प्राण द्वारा चित्त पर नियंत्रण ये राजयोग के द्वारा संभव होता है। राजयोग आन्तरिक शक्तियों का शोधन करता है राजयोग मोक्ष पाने का साधन है।

2.4 राजपथ

राज राजपथ का अर्थ राजमार्ग से राजमार्ग से है। राजमार्ग अर्थात आम सड़क आम रास्ता जिसे हर कोई चल सके। जिस पर चलने में कोई असुविधा ना हो चलने में श्रद्धा हो कोई कठिनाई ना आवे। ठीक इसी तरह से भी राजयोग कभी तत्पर्य स्पष्ट होता है क्योंकि साधना का वह मार्ग जिसे योग की साधना के लिए

कोई भी अपना सके और सरलता पूर्वक उस पर चलकर सफलता और प्रगति की ओर बढ़ सके यही राजयोग का राजपथ है। योग का परम लक्ष्य समाधि जिसे प्राप्त करने का सीधा रास्ता जिस पर चल कर सरलता के साथ आगे बढ़ कर प्राप्त किया जा सके उसी का नाम राजयोग है।

2.4.1 राजयोग के अंग:

योग सूत्र में महर्षि पतंजलि में राजयोग के आठ अंगों के बारे में बताया है, जिन्हे अष्टांग योग भी कहा जाता है।

पतंजलि योग सूत्र के राजयोग के 8 अंग है जो निम्नलिखित है

यमनियमासनप्राणायमप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोष्टावंगानि। (पतंजलि योग सूत्र 2/29)

अर्थात् – यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि राजयोग के 8 अंग है।

2.4.2 यम:

शब्द का अर्थ मृत्यु के देवता से नहीं है, यम बाह्य या सामाजिक अनुशासन का प्रतीक है। यहाँ पांच व्रत या अनुशासन की एक संज्ञा है जिसे नियमित करें उसका नाम यम रखा गया है। इसके बारे में कहा जाता है

यमयन्ति निर्वतर्यन्ति इति यमाः।

अर्थात् जो हमें अवांछनीय कार्यों से बचाता है या मुक्ति दिलाता है उसे यम कहते हैं।

महर्षि पतंजलि ने 5 यम बतलाए है–

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।

(पतंजलि योग सूत्र 2/30)

अर्थात् – अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह यम है।

•अहिंसा–

अहिंसा में अ का अर्थ है रहित। मन से वचन से और कर्म से जीव मात्र पर प्राणी को कष्ट न देना ही अहिंसा है दूसरे शब्दों में कहें तो शत्रु भाव का त्याग कर प्रेम भावना को प्रमुख स्थान देते हुए बुराई का मुकाबला करना अहिंसा है।

मनसा वाचा कर्मणा सर्वभूतेषु सर्वदा। (याज्ञवल्क्य संहिता)

अर्थात् – मन, वचन, कर्म से किसी को दुःख न देना सभी के सुख की कमाना करना अहिंसा है।

महर्षि पतंजलि ने कहा है–

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः । (2/35)

अर्थात –जब अहिंसा की पूर्णता और स्थिरता होने हिंसा बुद्धि दूर हो जाती है। यहां तक साधक के संपर्क में आने वाले प्राणियों की हिंसा को प्रवृति दूर हो जाती है। यही अहिंसा की प्रतिष्ठा है।

पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी के शब्दों में अहिंसक का अर्थ है प्रेम का पुजारी दुर्भावना से रहित। सद्भावना और विवेक बुद्धि से यदि किसी को कष्ट देना आवश्यक जान पड़े तो अहिंसा के मर्यादा के अंतर्गत उसको गुजाइश है। परमार्थ के लिए की गई हिंसा को किसी भी प्रकार अहिंसा से कम नहीं ठहराया जा सकता।

• सत्य

जैसा देखा गया हो और अनुमान कारक बुद्धि से निर्णय लिया गया हो और सुना गया हो उसे वैसा ही व्यक्त कर देना यही सत्य का स्वरूप है। मन, वचन और कर्म में एकरूपता अर्थात् अर्थानुकूल वाणी और मन का व्यवहार होना यही सत्य कहलाता है।

महर्षि पतंजलि ने कहा है.

"सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम। (2/36)

अर्थात् – सत्य की प्रतिष्ठा होने पर वाणी और विचारों में क्रियाफल देने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है अर्थात् ऐसा व्यक्ति जो कुछ भी बोलता है वह फलित होने लगता है अर्थात् वाकसिद्धि हो जाती है।

महाभारत में सत्य का वर्णन –

न तव वचन सत्यं, न तव वचनं मृशा ।

चभूतहित मत्यन्तम् तत्सत्थमिति कुष्यते ॥ (महाभारत)

अर्थात् जैसी बात हो वैसा ही कर देना सत्य नहीं है और न जैसी बात हो वैसी ही कह देना भी सत्य नहीं है। जिसमें प्राणियों का अधिक हित होता है वही सत्य है।

• अस्तेय

अस्तेय का अर्थ है – चोरी न करना। शरीर, मन और वाणी द्वारा दूसरों के द्रव्य की इच्छा न करना अस्तेय कहलाता है।

मनसा वाचा कर्मणा परद्रव्येशु निग्रहः। (याज्ञवल्क्य संहिता)

अर्थात् – मन, वचन, और कर्म से दूसरे के द्रव्य की इच्छा न करना ही अस्तेय है। ऐसातत्वदर्शी ऋषियों ने कहा है–

व्यास भाष्य में महर्षि व्यास लिखते है कि–

स्तेयमशास्त्र द्य पूर्वकद्रव्यारणांपरतस्वीकरणमतत्प्रअतिषेध पुनरस्पृशहारूपमस्तेयमिति ।

अर्थात शास्त्रीय ढंग से अर्थात् धर्म के विरूद्ध अन्याय पूर्वक किसी दूसरे व्यक्ति के द्रव्य इत्यादि को ग्रहण करना स्तेय है, पर वस्तु में राग का प्रतिषेध होना ही अस्तेश्य है।

योग सूत्र में अस्तेय सिद्धि के विषय में कहा है

अस्तेयप्रतिष्ठा यां सर्वरत्नो प्रस्थानम। 2/37

अर्थात अस्तेय की दृढ़ स्थिति होने पर सर्व रत्नों की प्राप्ति होती है।

ब्रहमचर्य मन को ब्रहम या ईश्वर परायण बनाये रखना ही ब्रहमचर्य है। वीर्य शक्ति – की अविचल रूप में रक्षा करना या धारण करना ब्रहमचर्य है।

महर्षि व्यास ने लिखा है –

ब्रहमचर्य गुप्तेन्द्रियस्योपस्थरस्य संयम ।

अर्थात गुप्त इन्द्रिय (उपस्थेन्द्रिय) के संयम का नाम ब्रहमचर्य है–

शाडिल्योपनिषद में इसकी और सूक्ष्म व्याख्या करते हुए कहते है

ब्रहमचर्य नाम सर्वावस्थासु मनोवाक काय कर्मभि सर्वत्तमेथुन त्यागः ।

अर्थात सभी अवस्था में सर्वत शरीर, मन और वाणी द्वारा मैथुन का त्यायग ब्रहमचर्य–

कहलाता है ब्रहमचर्य सिद्ध कर लेने वाले साधकों के संबंध में पातंजल योग सूत्र में कहा गया है–

ब्रहमचर्यप्रतिष्टा या वीर्यलाभ 2/38

अर्थात ब्रहमचर्य की प्रतिष्ठा होने पर साधक को वीर्य लाभ होता है। वीर्य लाभ होने से साधना के अनुकूल गुण समूह पैदा होते है। जिससे योगाभ्यासी को आत्मज्ञान प्राप्त होता है ।

• अपरिग्रह –

संचय वृत्ति का त्याग अपरिग्रह है। विषयों के अर्जन में रक्षण उनका क्षय उनके संग और उनमें हिंसादि दोष को विषयों को स्वीकार न करना ही अपरिग्रह है। इन्द्रियाणां पसंगेन दोषमृच्छत्य संशयम।

सन्नियम्यण तु तान्येछव ततरू सिद्धिं नियच्छित ।। मनुस्मृति 2/13

अर्थात इन्द्रियों के विषयों में आशक्त होने से व्यक्ति निःसंदेह दोषी होता है परंतु इन्द्रियों को वश में रखने से विषयों के भोग से पूर्ण विरक्त हो जाता है। ऐसे आचरण से अपरिग्रह की सिद्धि होती है।

पूर्ण अपरिग्रह को प्राप्त साधक में काल – ज्ञान संबंधी सिद्धि आ जाती है, पातंजल योग सूत्र का इस संबंध में कथन है–

अपरिग्रहस्थैर्य जन्मदृकथन्ता सम्बोध। 2/39

अर्थात अपरिग्रह के स्थिर होने से जन्म–जन्मान्तर का ज्ञान प्राप्त होता है। इसका अर्थ हुआ कि पूर्वजन्म में हम क्या थे, कैसे थे। इस जन्म की परिस्थितियाँ ऐसी क्यों हुई एवं हमारा भावी जन्म कब कहाँ, कैसा होगा। इस ज्ञान का उदय होना अपरिग्रह साधना द्वारा ही सम्भव होता है।

2.4.3 नियम–

नियम का तात्पर्य आन्तरिक अनुशासन से है। यम व्यक्ति के जीवन को सामाजिक एवं वाह्य क्रियाओं के सामंजस्य पूर्ण बनाते है और नियम उसके आन्तरिक जीवन को अनुशासित करते हैं। नियमों के अन्तर्गत शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणीधान आते हैं। अपने जीवन में इस अनुशासन को उत्पन्न और विकसित करना आवश्यक है। योग सूत्र में कहा है

शौचसन्तोषतपरूस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानि नियमा। 2/32

अर्थात– शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय व ईश्वर प्रणिधान ये 5 नियम है

क. शौच– शौच का अर्थ है परिशुद्धि, सफाई, पवित्रता न खाने लायक चीज को न खाना, निन्दितों के साथ संग न करना और अपने धर्म में रहना शौच है। शौच मुख्यतः दो हैं बाह्य और आभ्यान्तर ।

शौच या पवित्रता दो प्रकार की कहीं गई है।

1. बाह्य शौच
2. आभ्यान्तर शौच ।

1. बाह्य शौच– जल व मिट्टी आदि से शरीर की शुद्धि, स्वार्थ त्याग, सत्याचरण से मानव व्यवहार की शुद्धि, विद्या व तप से पंचभूतों की शुद्धि, ज्ञान से बुद्धि की शुद्धि ये सब बाझ शुद्धि कहलाती है।

2. आन्तरिक शौच अंहकार, राग, द्वेष, ईर्ष्या, काम, क्रोध आदि मलों को दूर करना – आन्तरिक पवित्रता कहलाती है।

योग सूत्र में इसके फल के विषय में कहा है कि

शौचात्स्वागजुप्सा परैरसंसर्गः । 2/40

अर्थात शौच की स्थिरता होने पर निजी अंग समूह के प्रति घृणा और परदेह संसर्ग को अनिच्छा होती है।

ख. सन्तोष –

सन्तोष नाम सन्तुष्टि का है। अन्तःकरण में सन्तुष्टि व भाव उदय हो जाना ही सन्तोष है।
अर्थात– अत्यधिक पाने की इच्छा का अभाव ही सन्तोष है। मनुस्मृति कहती हैं सन्तोष ही सुख का मूल है। इसके विपरित असंतोष या तृष्णा ही दुख का मूल है।
योग सूत्र में सन्तोष का फल बताते हैं

सन्तोषादनुत्तमसुखलाभ 2/42

अर्थात चित्तम में सन्तोष भाव दृढ़ प्रतिष्ठित हो जाने पर योगी को निश्चय सुख यानी आनन्दत प्राप्त होता है।

ग. तप–

अपने वर्ण, आश्रम, परिस्थिति और योग्यता के अनुसार स्वधर्म का पालन करना और उसके पालन में जो शारीरिक या मानसिक अधिक से अधिक कष्ट प्राप्त हो, उसे सहर्ष करने का नाम ही तप है। तपो द्वन्दसहनम् सब प्रकार के द्वन्दों को सहन करना तप है। तप के बिना साधना,सिद्धि नहीं होती है, अतः योग साधना के काल में सर्दी, गर्मी, भूख प्यास, आलस तथा जड़तादि द्वन्दों को सहन करते हुए अपनी साधना में उसका रहना तप कहा जाता है।

योग सूत्र में तप का फल बताते हुए कहा है –

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयान्तफपस 2/43

अर्थात तप के प्रभाव से जब अशुद्धि का नाश हो जाता है तब शरीर और इन्द्रियों की सिद्धि हो जाती है। तप के द्वारा क्लेशों तथा पापों का क्षय नाश हो जाने पर शरीर में तो अणिमा महिमादि सिद्धि आ जाती है,

और इन्द्रियों में सूक्ष्मता अर्थात दूर दर्शन, दूर श्रवण दिव्य गन्ध दिव्य रसादि सूक्ष्म विषयों को ग्रहण करने की शक्ति भी आ जाती है। अत योगी के लिए तप साधना नितांत आवश्यक है।

घ.स्वाध्याय –

स्वाध्याय का तात्पर्य है आचार्य विद्वान तथा गुरूजनों से वेद उपनिषद् दर्शन आदि मोक्ष शास्त्रों का अध्ययन करना । यह एक अर्थ है। स्वाध्याय का दूसरा अर्थ है स्वयं का अध्ययन करना यह भी स्वाध्याय ही है।

योग भाष्य 2/1 में महर्षि व्यास जी ने लिखा है।

स्वाध्यायय प्रणव श्रीरुद्रपुरूषसूक्तासदि

मन्त्राणां जपमोक्ष्यशास्त्रा ध्यआयभ्चक ।। योग भाष्य 2/1

अर्थात प्रणव अर्थात ओंकार मन्त्र का विधि पूर्वक जप करना रूद्र सूक्त और पुरूषसूक्त – आदि वैदिक मन्त्रों का अनुष्ठान पूर्व जप करना तथा दर्शनोपनिषद एवं पुराण आदि आध्यात्मिक मोक्ष शास्त्रों का गुरुमुख से श्रवण करना अर्थात अध्ययन करना स्वाध्याय है।

पं० श्री राम शर्मा के अनुसार अच्छी पुस्तके जीवन देव प्रतिमायें है, जिनकी आराधना से तत्काल प्रकाश और उल्लास मिलता है।

पातंजल योग सूत्र में स्वाध्याय के फलों का वर्णन किया है।

स्वाध्यादिष्टा देवतासम्प्रयोग 2/44

अर्थात स्वाध्याय से इष्टदेवता की भलीभांति प्राप्ति (साक्षात्कार) हो जाती है। – शास्त्राभ्यास, मंत्रजप और अपने जीवन का अध्ययन रूप स्वाध्याय के प्रभाव से योगी जिस ईष्ट देव का दर्शन करना चाहता है, उसी का दर्शन हो जाता है।

ड. ईश्वर प्रणिधान –

ईश्वर की उपासना या भक्ति विशेष को ईश्वर प्रणिधान कहते है।

परमेश्वर के निर्मित अर्पित कर देना ईश्वर प्रविधान है। अथर्ववेद कहता है है वरणीय परमेश्वर । हम जिस शुभ संकल्प इच्छा से आप की उपासना में लगे हुए है आप उसमें पूर्णत प्रदान करें सिद्धि दें और हमारे समस्त कर्म तथा कर्मफल आप के निमित अर्पित है, इसी का नाम ईश्वर प्रणिधान है।

योग सूत्र के 1/23 सूत्र में ईश्वरप्रणिधानाद्वा

समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात ।योग सूत्र के 1/23

अर्थात ईश्वर प्राणीधान से समाधि की सिद्धि हो जाती है। ईश्वर प्रणिधान से ईश्वर की अनुकम्पा होती है। उस अनुभव से योग के समस्त अनिष्ट दूर हो जाते है तब योग सिद्धि में नहीं होता, योगी शीघ्र ही योगसिद्धि को प्राप्त कर लेता है।

2.4.4 आसन–

आसन शब्द संस्कृत भाषा के अस धातु से बना है जिनका दो अर्थ है। पहला है सीट बैठने का स्थान दूसरा अर्थ शारीरिक अवस्था शरीर मन और आत्मा जब एक संग और स्थिर हो जाता है, उससे जो सुख की अनुभूति होती है वह स्थिति आसन कहलाती है। तेजबिन्दुपनिषद में आसन के विषय में कहा है

सुखेनैव भवेत् यस्मिन्न जस्रं ब्रहमचिन्तम

अर्थात जिस स्थिति में बैठकर सुखपूर्वक निरन्तर परमब्रहम का चिन्तन किया जा सके उसे ही आसन समझना चाहिए। गीता में भगवान श्री कृष्ण ने कहा है –

योग सूत्र के अनुसार

स्थिरसुखमासनम 2/46 यो०सू०

अर्थात स्थिर और सुख पूर्वक बैठना आसन कहलाता है। –

2.4.6 प्राणायामः

प्राणायाम दो शब्दों से मिलकर बना है। प्राण. आयाम ।

प्राण का अर्थ होता है, जीवनी शक्ति आयाम के दो अर्थ है। पहला– नियन्त्रण करना या रोकना तथा दूसरा लम्बा या विस्तार करना ।
प्राणवायु का निरोध करना प्राणायाम कहलाता है।

योग सूत्र में प्राणायाम को इस प्रकार प्रतिपादित किया है

तस्मिन्सति श्वासप्रश्वापसयोर्गतिविच्छेद प्राणायामः 2/49

अर्थात उसकी (आसनों की) स्थिरता होने पर श्वास–प्रश्वास की स्वाभाविक गति के –नियमन करना प्राणायाम है।

2.4.6 प्रत्याहार–

पतंजलि योग में प्राणायाम के पश्चात प्रत्याहार का कथन एवं विवेचन उसकी उपयोगिता की दृष्टि से किया गया है। प्रत्याहार का सामान्य अर्थ होता है, पीछे हटना उल्टा होना, विषयों से विमुख होना। इसमें इन्द्रिया अपने बहिर्मुख विषयों से अलग होकर अन्तर्मुख हो जाती है, इसलिए इसे प्रत्याहार कहा गया है। इन्द्रियों के संयम को भी प्राणायाम कहते है।

त्रिशिखिब्राहनणोपनिषद के अनुसार

चित्तिस्थ्योन्तुर्मुखी भाव प्रत्याहारस्तु सत्तयम

अर्थात चित्त का अन्तर्मुखी भाव होना ही प्रत्याहार है।

महर्षि पतंजलि ने प्रत्याहार का लक्षण निम्न प्रकार से प्रतिपादित किया है।

स्वथविषयासम्प्रयोगे चित्तम स्वतरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहार ।

अर्थात अपने विषयों के साथ इन्द्रियों का संबंध न होने पर चित्त के स्वरूप का अनुकरण करना अर्थात् चित्त के स्वरूप में तदाकार सा हो जाना प्रत्याहार कहलाता है।

प्रत्याहार का फल बतलाते हुए महर्षि पतंजलि लिखते है–

ततः परमा वश्यततेन्द्रियाणाम 2/55 यो० सू०

अर्थात उस प्रत्याहार से इन्द्रियों की सर्वोत्कृष्टा वश्यता होती है अर्थात प्रत्याहार से इन्द्रियां एकदम वशीभूत हो जाती है।

अन्तरंग साधन

महर्षि पतंजलि ने निम्न तीन अन्तरंग साधन बताये है ।

2.4.7 धारणा–

महर्षि पतन्जलि द्वारा प्रतिपादित अष्टांग योग के अन्तरंग यह योग का छठा – अंग है। मन (चित्त) को एक विशेष स्थान पर स्थिर करने का नाम धारणा है। यह वस्तुतः मन की स्थिरता का घोतक है।

हमारे सामान्य दैनिक जीवन में विभन्न प्रकार के विचार आते जाते रहते है। दीर्घकाल तक स्थिर रूप से वे नहीं टिक पाते और मन की सामान्य एकाग्रता केवल अल्प समय के लिए ही अपनी पूर्णता में रहती है। इसके विपरीत धारणा में सम्पूकर्णत चित्त की एकाग्रता की पूर्णता रहती है।

महर्षि पतंजलि द्वारा धारणा का निम्न लक्षण बतलाया गया है–

देशबन्धश्चतस्य धारणा । 3/1 यो० सू०

अर्थात (बाहर या शरीर के भीतर कही भी) किसी एक स्थान विशेष (देश) में चित्त को – बांधाना धारणा कहलाता है।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि जब किसी देश विशेष में चित्त की वृत्ति स्थिर हो जाती

है और तदाकार रूप होकर उसका अनुष्ठान होने लगता है तो वह धारणाश कहलाता है।

2.4.8 ध्यान–

धारणा की उच्च अवस्था ध्यान है ध्यान शब्द की उत्पत्ति ध्येचित्तायाम् धातु – से होती है जिसका अर्थ होता है, चिन्तन करना । किन्तु यहाँ पर ध्यान का अर्थ चिन्तन करना नहीं अपितु चिन्तन का एकाग्रीकरण अर्थात् चित्त को एक ही लक्ष्य पर स्थिर करना ।

सामान्यतः ईश्वर या परमात्मा में ही अपना मनोनियोग इस प्रकार करना कि केवल उसमें ही साधक निगमन हो और किसी अन्य विषय की ओर उसकी वृत्ति आकर्षित न हो ध्यान कहलाता है। योग शास्त्रो के अनुसार जिस ध्येय वस्तु में चित्त को लगाया जाये उसी में चित्त का एकाग्र से जाना अर्थात् केवल ध्येय मात्र में एक ही तरह की वृत्ति का प्रवाह चलना, उसके बीच में किसी दूसरी वृत्ति का नहीं उठना श्ध्यानश कहलाता है। महर्षि पतंजलि ने योग सूत्र में ध्यान को इस प्रकार प्रतिपादित किया है।

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम 3/2 यो० सू०

अर्थात् – इस देश में ध्येय विषयक ज्ञान या वृत्ति का लगातार एक जैसा बना रहना ध्यान है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि जिसमें धारणा की गई उसमें चित्त जिस वृत्ति मात्र से ध्येय में लगता है, वह वृत्ति जब इस प्रकार समान प्रवाह से लगातार उदित होता रहे कि कोई दूसरी वृत्ति बीच में न आये उसे ध्यान कहते है।

2.4.9 समाधि –

अष्टांग योग में समाधि का विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण स्थान है। साधना की यह चरम अवस्था है, जिसमें समाधि स्वयं योगी का बाह्य जगत् के साथ संबंध टूट जाता है। यह योग की एक ऐसी दशा है, जिसमें योगी चरमोत्कर्ष की प्राप्ति कर मोक्ष प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है। और यही योग साधना का लक्ष्य है। अतः मोक्ष्य प्राप्ति से पूर्व योगी को समाधि की अवस्था से गुजरना पड़ता है। योग शास्त्र में समाधि को मोक्ष प्राप्ति का मुख्य साधन बताया गया है, योग भाष्य में सम्भवत इसलिए योग को समाधि कहा गया है। यथा योगः समाधि पातंजलि योगसूत्र में चित्त की वृतियों के निरोध को योग कहा गया है। योगश्चितवृत्ति निरोध समाधि अवस्था में भी योगी की समस्त प्रकार की चित्त वृत्तियाँ निरुद्ध हो जाती है।

महर्षि पतंजलि ने समाधि का स्वरूप निम्न प्रकार से बताया है–

तदेवार्थमात्रनिर्भासंस्वरूपशून्यनमिव समाधि। 3/3 यो०सू०

अर्थात् जब (ध्यान में) केवल ध्येय मात्र की ही प्रतीती होती है और चित्त का निज स्वथप शून्य सा हो जाता है, तब वह (ध्यान ही) समाधि हो जाता है।

2.5 हठ योग

सामान्य रूप से हठयोग का अर्थ व्यक्ति जिदपूर्वक हठपूर्वक किए जाने वाले अभ्यास से लेता है अर्थात किसी अभ्यास को जबरदस्ती करने के अर्थ में हठयोग जिदपूर्वक जबरदस्ती की जाने वाली क्रिया है। हठयोग शब्द पर अगर विचार करें तो दो शब्द हमारे सामने आते है ह और ठ

ह का अर्थ है– हकार अर्थात सूर्य नाडी । (पिंगला)
ठ का अर्थ है– ठकार अर्थात चन्द्र नाडी । (इडा)

हठयोग के इसी हकार तथा ठकार शब्द को संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ ने भी स्वीकार किया है। भलई हठयोग के परिपेक्ष्य में यह अवश्य प्रतीत होता है कि हठपूर्वक (जिदपूर्वक) की जाने वाली क्रिया हठयोग है। परन्तु स्पष्ट है कि हठयोग की क्रिया एक उचित तथा श्रेष्ठ मार्गदर्शन में की जाये तो साधक सहजतापूर्वक इसे कर सकता है। इसके विपरीत अगर व्यक्ति मार्गदर्शन पुस्तकों में पढकर करता है तो इस साधना के के विपरित तथा नकारात्मक परिणाम होते है।

प्रिय विद्यार्थियों यह सच है कि हठयोग की कुछ क्रियाये कठिन अवश्य कही जा सकती है। इन्हें करने के लिए निरन्तरता और दृढता आवश्यक है प्रारम्भ में साधक हठयोग की क्रिया के अभ्यास को देखकर जल्दी करने के लिए अपने को तैयार नहीं करता इसलिए एक सहनशील, परिश्रमी, जिज्ञासु और तपस्वी व्यक्ति ही इस साधना को कर सकता है। अब हम हठयोग की विविध परिभाषाओं का अध्ययन करेंगे। विविध ग्रन्थों में हठयोग को इस प्रकार परिभाषित किया है।

सिद्ध–सिद्धान्त संग्रह के अनुसार–

हकार कीर्तित सूर्यष्ठकारश्चेन्द्रव उच्यते ।
सूर्याचन्द्रमसोर्योगात् हठयोगो निगद्यते ।।

अर्थात हकार (सूर्य) तथा ठकार (चन्द्र) नाडी के योग को हठयोग कहते है ।

योगशिखोपनिषद में भी हकार को सूर्य तथा ठकार को चन्द्र मानकर सूर्य और चन्द्र के संयोग को हठयोग कहा गया है।

हकारेण तु सूर्य स्याकत् सकारेणेन्दुदरूच्यकते।

योगशिखोपनिषद में योग की परिभाषा देते हुए कहा है कि अपान व प्राण, रज व रेतस सूर्य व चन्द्र तथा जीवात्मा व परमात्मा का मिलन योग है। यह परिभाषा भी हठयोग की सूर्य व चन्द्र के मिलन की स्थिति को प्रकट करती है

सूर्याचन्द्रमसोरिक्स क इव्यकनिधीयते ।।
योऽपानप्राणयोरैक्यं स्वरजो रेतसोस्तथा ।।
सूर्याचन्द्रमसोर्योगो जीवात्मपरमात्मनोः ।
एवं तु द्वन्द्वजालस्य संयोगो योग उच्यते ।।

ह (सूर्य) का अर्थ सूर्य स्वर, दायाँ स्वर पिंगला स्वर अथवा यमुना तथा ठ (चन्द्र) का अर्थ चन्द्र स्वर, बाँया स्वर, इडा स्वर अथवा गंगा लिया जाता है। दोनों के संयोग से अग्नि स्वर, मध्य स्वर, सुषुम्ना स्वर अथवा

सरस्वती स्वर चलता है, जिसके कारण ब्रह्मनाड़ी में प्राण का संचरण होने लगता है। इसी ब्रह्मनाड़ी के निचले सिरे के पास कुण्डलिनी शक्ति सुप्तावस्था में स्थित है। जब साधक प्राणायाम करता है तो प्राण के आघात से सुप्त कुण्डलिनी जाग्रत होती है तथा ब्रह्मनाड़ी में गमन कर जाती है जिससे साधक में अनेकानेक विशिष्टताएँ आ जाती हैं। यह प्रक्रिया इस योग पद्धति में मुख्य है। इसलिए इसे हठयोग कहा गया है। यही पद्धति आज आसन, प्राणायाम, षट्कर्म, मुद्रा आदि के अभ्यास के कारण सर्वाधिक लोकप्रिय हो रही है। महर्षि पतंजलि के मनोनिग्रह के साधन रूप में इस पद्धति का प्रयोग अनिवार्यतः उपयोगी बताया गया है। हठ प्रदीपिका में स्वामी स्वात्माराम ने हठयोग को परिभाषित करते हुए कहा है कि हठपूर्वक मोक्ष का भेद हठयोग से किया जा सकता है।

उद्घाटयेत् कपाटं तु तथा कुचिकया हठात ।
कुण्डलिन्या तथा योगी मोक्षद्वारं विभेदयेत

ह०प्र० 3/101

अर्थात् जिस प्रकार चाभी से हठात किवाड़ को खोलते है उसी प्रकार योगी कुण्डलिनी के द्वार (हठात) मोक्ष द्वार का भेदन करते है। विविध परिभाषाओं के अवलोकन के बाद अब एक प्रश्न आपका अवश्य होगा कि हठयोग के क्या उद्देश्यक है। स्वात्माराम योगी द्वारा यह घोषणा कर दी गई है कि केवल राजयोगाय हठविद्योपदिश्यते अर्थात् केवल राजयोग की साधना के लिए ही हठविद्या का उपदेश करता हूँ। हठप्रदीपिका में अन्यत्र भी कहा है कि आसन, प्राणायाम, मुद्राएँ आदि राजयोग की साधना तक पहुँचाने के लिए हैं–

पीठानि कुम्भकाश्चित्रा दिव्यानि करणानि च ।
सर्वाण्यपि हठाभ्यासे राजयोग फलावधिः ।।

ह०प्र० 1/67

यह हठयोग भवताप से तप्त लोगों के लिए आश्रय स्थल के रूप में है तथा सभी योगाभ्यासियों के लिए आधार है–

अशेषतापतप्तानां समाश्रयमठो हठ
अशेषयोगयुक्तानामाधारकमठो हठः ।। ह०प्र० 1/10

इसका अभ्यास करने के पश्चात अन्य योगप्रविधियों में सहज रूप से सफलता प्राप्त की जा सकती है। कहा गया है कि यह हठविद्या गोपनीय है और प्रकट करने पर इसकी शक्ति क्षीण हो जाती है–

हठविद्यां परं गोप्या योगिनां सिद्धिमिच्छताम ।
भवेद् वीर्यवती गुप्ता निर्वीर्या तु प्रकाशिता । ह०प्र० 1/11

इसलिए इस विद्या का अभ्यास एकान्त में करना चाहिए जिससे अधिकारी– जिज्ञासु तथा साधकों के अतिरिक्त सामान्य जन इसकी क्रियाविधि को देखकर स्वयं अभ्यास करके हानिग्रस्त न हों। साथ ही अनधिकारी जन इसका उपहास न कर सकें। प्रिय पाठको स्मारण रहे कि जिस काल में हठप्रदीपिका की रचना हुई थी, वह काल योग के प्रचार–प्रसार का नहीं था। तब साधक ही योगाभ्यास करते थे। सामान्यजन योगाभ्यास को केवल ईश्वरप्राप्ति के उद्देश्य से की जाने वाली साधना के रूप में जानते थे । आज स्थिति बदल गई है। योगाभ्यास जन–जन तक पहुँच गया है तथा प्रचार–प्रसार दिनों–दिन प्रगति पर है। लोग इसकी महत्ता को समझ गए हैं तथा जीवन में ढालने के लिए प्रयत्नशील हो रहे हैं।

2.5.1 हठयोग का उददेश्य

हठयोग के उद्देश्य के दृष्टिकोण से विचार करने पर हम देखते हैं कि राजयोग साधना की तैयारी के लिए तो हठयोग उपयोगी है ही इस मुख्य उद्देश्य के साथ अन्य अवान्तर उद्देश्य भी कहे जा सकते हैं जैसे– स्वास्थ्य का संरक्षण, रोग से मुक्ति, सुप्त चेतना की जागृति, व्यक्तित्व विकास, जीविकोपार्जन तथा आध्यात्मिक उन्नति। इनकी विस्तृत विवेचना इस प्रकार है।

1.स्वास्थ्य का संरक्षण–

शरीर स्वस्थ रहे। रोगग्रस्त न हो इसके लिए भी हम हठयौगिक अभ्यासों का आश्रय ले सकते हैं। आसनेन भवेद् दृढम् षट्कर्मणा शोधनम आदि कहकर आसनों के द्वारा मजबूत शरीर तथा षट्कर्मों के द्वारा शुद्धि करने पर दोषों के सम हो जाने से व्यक्ति सदा स्वस्थ बना रहता है। विभिन्न आसनों के अभ्यास से शरीर की मांसपेशियों को मजबूत बनाया जा सकता है तथा प्राणिक ऊर्जा के संरक्षण से जीवनी शक्ति को बढ़ाया जा सकता है। शरीर में गति देने से सभी अंग–प्रत्यंग चुस्त बने रहते हैं तथा शारीरिक कार्यक्षमता में वृद्धि होती है जिससे शरीर स्वस्थ रहता है। अतः हम कह सकते है कि स्वास्थ्य संरक्षण में हठयोग का महत्वपूर्ण स्थान है।

2. रोग से मुक्ति–

अब इन हठयोग के अभ्यासों को रोग निवारण के लिए भी प्रयुक्त किया जा रहा है। कहा भी है–

कुर्यात् तदासनं स्थैर्यमारोग्यं चाङ्गलाघवम।।

ह०प्र० 1/17

विभिन्न आसनों का शरीर के विभिन्न अंगों पर जो प्रभाव पड़ता है, उससे तत्सम्बन्धी रोग दूर होते हैं। जैसे मत्स्येन्द्रासन का प्रभाव पेट पर अत्यधिक पड़ता है तो उदरविकारों में लाभदायक है। जठराग्नि प्रदीप्त होने के कारण कब्ज, अपच, मन्दाग्नि आदि रोग दूर होते हैं।

इसी प्रकार षट्कर्मों का प्रयोग करके रोगनिवारण किया जा सकता है। जैसे धौति के द्वारा कास, श्वास, प्लीहा सम्बन्धी रोग, कुष्ठ रोग कफदोष आदि नष्ट होते हैं। नेति के द्वारा दृष्टि तेज होती है, दिव्य दृष्टि प्रदान करती है और स्कन्ध प्रदेश से ऊपर होने वाले रोगसमूहों को शीघ्र नष्ट करती है।

कपालशोधिनी चौव दिव्यदृष्टिप्रदायिनी ।
जनूर्ध्वजातरोगोधं नेतिराशु निहन्ति च ।।
ह०प्र० 2/31

आधुनिक वैज्ञानिक युग में यद्यपि आयुर्विज्ञान की नई वैज्ञानिक खोज हो रही है। फिर भी अनेक रोग जैसे मानसिक तनाव, मधुमेह, प्रमेह, उच्च रक्तचाप, निम्न रक्तचाप, साइटिका, कमरदर्द, सर्वाइकल स्पोंडोलाइटिस, आमवात, मोटापा, अर्श आदि अनेक रोगों को योगाभ्यास द्वारा दूर किया जा रहा है।

3. सुप्त चेतना की जागृति –

हठयोग के अभ्यास शरीर को वश में करने का उत्तम उपाय हैं। जब शरीर स्थिर और मजबूत हो जाता है तो प्राणायाम द्वारा श्वास को नियंत्रित किया जा सकता है। प्राण नियंत्रित होने पर मूलाधार में स्थित शक्ति को ऊर्ध्वगामी कर सकते हैं। प्राण के नियंत्रण से मन भी नियंत्रित हो जाता है। अतः मनोनिग्रह तथा प्राणापान संयोग से शक्ति जाग्रत होकर ब्रह्मनाड़ी में गति कर जाती है जिससे साधक को अनेक योग्यताएँ स्वतः प्राप्त हो जाती हैं। अतः हम कह सकते है कि हठयोग के अभ्यागस से सुप्ता चेतना की जागृति होती है।

4. व्यक्तित्व विकास साधक–

इन अभ्यासों को अपनाकर निज व्यक्तित्व का विकास करने में समर्थ होता है उसमें मानवीय गुण स्वतः आ जाते हैं। शरीर गठीला निरोग, चुस्त, कांतियुक्त तथा गुणों से पूर्ण होकर व्यक्तित्व का निर्माण करता है। ऐसे गुणों को धारण करके उसकी वाणी में मृदुता, आचरण में पवित्रता, व्यवहार में सादगी, स्नेह, आदि का समावेश हो जाता है।

5. जीविकोपार्जन–

देश ही नहीं, विदेश में भी आज योगाभ्यास जीविकोपार्जन का एक – सशक्त माध्यम बन गया है। देश में ही अनेक योग प्रशिक्षण केन्द्र, चिकित्सालय, विद्यालय, महाविद्यालय विश्वविद्यालय योग के प्रचार–प्रसार में

लगे हैं। रोगोपचार के लिए व्यक्तिगत रूप से लोग योग प्रशिक्षक को बुलाकर चिकित्सा ले रहे हैं तथा स्वास्थ्य संरक्षण हेतु प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं। विदेश में तो भारत से भी अधिक जागरूकता है। अतः जीविकोपार्जन के लिए भी इसे अपनाया जा रहा है।

6. आध्यात्मिक उन्नति–

कुछ लोग वास्तव में जिज्ञासु हैं जो योग द्वारा साधना में सफल होकर साक्षात्कार करना चाहते हैं उनके लिए तो योग है ही साधक साधना के लिए आसन–प्राणायामादि का अभ्यास करके दृढ़ता तथा स्थिरता प्राप्त करके ध्यान के लिए तैयार हो जाता है। ध्यान के अभ्यास से समाधि तथा साक्षात्कार की अवस्था तक पहुँचा जा सकता है। अतः आध्यात्मिक उन्नति हेतु भी हठयोग एक साधन है।

अर्थात् पूर्व में बताई गई विधि से यदि बोधिप्राप्त न हो तो हठयोग का आश्रय लेना चाहिए।
राजयोग साधना का आधार होने के कारण इसे भी राजयोग के समकक्ष स्थान प्राप्त है।
अंतरू हम कह सकते है कि आध्यात्मिक उन्नति का राजयोग महत्वपूर्ण सौपान है।

2.5.2 हठयोग के प्रमुख ग्रन्थों का सामान्य परिचय

हठयोग के ग्रन्थों के अध्ययन से पूर्व यह आवश्यक है कि हठयोग की परम्परा कहाँ से शुरू हुई इस प्रश्न के उत्तर आपको कहानी को पढ़कर स्वतः ही आ जायेगा। एक बार भगवान शिव, माँ पार्वती को लेकर भ्रमण पर निकले थे। भ्रमण के दौरान दोनों एक सरोवर के किनारे बैठ जाते है माँ पार्वती की इच्छा पर भगवान शिव उन्हें हठयोग की शिक्षा देते है। भगवान शिव द्वारा दी गई यह शिक्षा सरोवर में एक मछली सुन लेती है जब भगवान शिव को इस बात का आभास होता है तो वह उस मछली को मत्स्येन्द्र नाथ बना देते है। स्वयं प्रदीपिका के प्रणेता स्वात्मा राम जी हठप्रदीपिका की शुरूवात करते कहते है

"श्रीआदिनाथाय नमोऽस्तुतस्मैयेनोपदिष्टार हठयोगविद्या"

हठ० प्रदी० 1/1

अर्थात् उन सर्वशक्तिमान आदिनाथ को नमस्कार है जिन्होंने हठयोगविद्या की शिक्षा दी थी।
अब यह स्पष्ट हो चुका है कि भगवान शिव ही हठयोग के आदि प्रणेता है।
पुनः स्वात्माराम कहते है–

हठविद्या हि मत्येवान्द्रागोरक्षाद्या विजानते

स्वादत्मावरामोऽथवा योगी जानीते तत्प्रसादतः

ह०प्र० 1/4

अर्थात मत्येन्द्रनाथ, गोरक्ष आदि योगी हठविद्या के मर्मज्ञ थे और उन्हीं की कृपा से योगी स्वात्माराम ने इसे जाना अब हम आपके अवलोकनार्थ हठयोग के प्रमुख ग्रन्थों का सामान्य परिचय देते है।

2.5.2.1 हठप्रदीपिका–

स्वामी स्वात्माराम द्वारा प्रतिपादित हठयोग का एक ग्रन्थ है। अगर आपने इतिहास का अध्ययन किया है तो 10वीं तथा 15वीं शताब्दी में अपने मुट्ठी भर स्वार्थ के लिए कई लोग हठयोग व राजयोग के समबन्ध में भ्रान्तियाँ फैलाते रहे। कई लोगों का मत था कि हठयोग व राजयोग दो अलग–अलग मार्ग है इन दोनों रास्तों का आपस में कोई सम्बन्ध नहीं है। इन भ्रामक तत्वों ने वेश–भूषा, इत्यादि आडम्बरों पर जोर देकर भ्रान्तियाँ फैलाई थी परन्तु इस शस्य श्यामला धरती पर जब भी विकृतियाँ पैदा हुई और अपने चरमोत्कर्ष तक पहुँची तब कोई न कोई महापुरूष का अवतरण हुआ है। स्वात्माराम नाम के इस महापुरूष ने ऐसे समय में हठप्रदीपिका नामक प्रमाणिक वैज्ञानिक पुस्तक लिखकर हठयोग के वास्तविक स्वरूप को हमारे सामने रखा। स्वात्माराम जी ने कहा

केवलं राजयोगाथहतविद्योपदिश्यसते ह०प्र० 1/2

अर्थात केवल राजयोग की प्राप्ति के लिए हठयोग का उपदेश दिया जा रहा है।

2.5.2.2 घेरण्ड संहिता –

घेरण्ड संहिता की रचना स्वात्माराम जी ने की थी कहा जाता है कि एक राजा चण्डिकापालि महर्षि घेरण्ड की कुटी में गये और प्रणाम कर एक प्रश्न किया घटस्थ योग योगेश तत्वाज्ञानस्य कारणम ।

इदानीं श्रोतुमिच्छामि योगेश्वर वद प्रभो घे०सं० 1/2

अर्थात हे योगेश्वर, तत्व ज्ञान का कारण जो घटस्थ योग है, उसे मैं जानने का इच्छुक
हे प्रभु कृपा करके उसे मेरे प्रति कहिए।
महर्षि घेरण्डक कहते है–

साधु–साधु महाबाहो यन्मां त्वं परिपृच्छसि।
कथयामि च ते वत्स सावधानोवधारय।। घे० सं० 1/3

अर्थात हे महाबाहों, तुम्हारे प्रश्न के लिए मैं तुम्हारी प्रशंसा करता हूँ। हे वत्स, तुमने जिस विषय की जिज्ञासा की है उसे मैं तुम्हारे प्रति कहता हूँ।

इस प्रकार राजा चण्किापालि प्रश्न पूछते है और महर्षि घेरण्ड उत्तर देते है। इस प्रश्न उत्तर की शैली में पूरी घेरण्ड संहिता लिखी गई है। महर्षि घेरण्ड कौन थे इस बात का किसी को पता नहीं है सर्वप्रथम प्रति 1804 की है। मालुम पड़ता है कि महर्षि घेरण्ड एक वैष्णव संत रहे होंगे उन्होंने कई श्लोकों में विष्णु की चर्चा

की है। शायद ऐसा हो कि वैष्णव सन्त होने के साथ–साथ इन्होंने हठयोग को अपनाया हो। घेरण्ड संहिता को लोग सप्तांग योग के नाम से भी जानते है।

2.5.2.3 शिव संहिता –

शिव संहिता योग की एक मुख्य ग्रन्थ है, कहा जाता है कि स्वयं आदिनाथ शिव ने इसकी रचना की थी। शिव संहिता पर अनेकानेक विद्वानों ने भाषानुवाद किया है। शिव संहिता को पंच प्रकरण भी कहा जाता है। शिव संहिता में योग की विविध विषयवस्तु मिलता है इनमें साधक की दिनचर्या तथा साधना पद्धति का ज्ञान व विज्ञान निहित है। नाडी ज्ञान, चक्र तथा कुण्डलिनी का इसमें वृहद वर्णन मिलता है।

2.6 भक्तियोग

जिज्ञासु पाठको भक्ति शब्द से आप निश्चित परिचित होंगे आपने–अपने घर के मन्दिर में, उपासना गृहों में तीर्थों में लोगों को पूजा पाठ करते देखा होगा। भारतीय चिन्तन में ज्ञान तथा कर्म के साथ भक्ति को कैवल्य प्राप्ति का साधन माना है। आपको कुछ प्रश्न अवश्य उत्तर जानने के लिए प्रेरित कर रहे होंगे जैसे–

- भक्ति क्या है।
- भक्ति के भेद क्या है।
- भक्त के क्या कोई प्रकार होते हैं।
- भक्ति से कैसे समाधि की सिद्धि होती है।

मुझे विश्वास है कि आगामी पृष्ठों का अध्ययन कर लेने के बाद आपको उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर मिल जायेंगे। भक्तियोग प्रेम की उच्च पराकाष्ठा है। ईश्वर के प्रति अत्याधिक प्रेम ही भक्ति है जब व्यक्ति संसार के भौतिक पदार्थो से मोह त्याग कर अनन्य भाव से ईश्वर की उपासना करता है तो वह भक्ति कहलाती है।

प्रश्न उठता है कि भक्ति शब्द संस्कृत व्याकरण के किस धातु से बना है। भज सेवायाम धातु से क्तिन प्रत्यय लगाकर भक्ति शब्द बनता है जिसका अर्थ सेवा पूजा उपासना और संगतिकरण करना आदि होता है। भक्ति भाव से ओतप्रोत साधक पूर्ण रूप से ब्रह्म, ईश्वर के भाव में भावित होकर सर्वतोभावेन तदरूपता की अनुभूति को अनुभव करता है। इसलिए कहा गया है–

भक्ति नाम प्रेम विशेषः

अर्थात् ईश्वर के प्रति उत्कट प्रेम विशेष का नाम ही भक्ति है।

भक्ति योग का मार्ग भाव–प्रधान साधकों के लिए अधिक उपयुक्त माना गया है। भक्ति मार्ग में भक्ति योग के साधक का मन एकाग्र हो जाता है। यह मार्ग अति सरल होने के कारण जनसाधारण में काफी लोकप्रिय व प्रचलित है।

भक्ति योग की परिभाषा देते हुए नारद भक्ति सा तस्मिन् परम प्रेमरूपा 1/2 सूत्र में कहा गया है–

अर्थात् प्रभु के प्रति परम प्रेम को भक्ति कहते हैं। शाण्डिल्य भक्ति सूत्र में भक्ति को परिभाषित करते हुए कहा गया है–

सा भक्तिः परानुरक्तिरीश्वरे 1/2

अर्थात् ईश्वर में परम अनुरक्ति भक्ति है। इस प्रकार प्रभु के प्रति अनन्य प्रेम में डूब भक्ति कहलाता है। जैसा की स्पष्ट हो चुका है कि अपने आराध्य से अन्नय प्रेम का नाम भक्ति है। यह तो निश्चित है कि साधक ईश्वर की भक्ति किसी प्रयोजन से करता है।

2.6.1 भक्त के भेद–

गीता में भक्ति के प्रयोजन को भक्त के भेद के परिपेक्ष्य में आप समझ सकते है।

चतुर्विधा भजन्ते मां जतारू सुकृतिनोडर्जुन ।
आतजिज्ञासुर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ।।

गीता (7/16)

अर्थात हे भरतवंशी अर्जुन चार प्रकार के पुण्यशाली मनुष्य मेरा भजन करते हैं यानि उपासना करते है। वे है आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी तथा ज्ञानी ।

क. आर्त भक्त–

पाठको अपने मानस पटल पर द्रोपदी के चीर हरण की कहानी को लाइये जब द्रोपदी ने देखा कि दुःसासन द्वारा चीर हरण किया जा रहा है, तो उसने आर्त भाव से भगवान कृष्ण को पुकारा है और भगवान कृ ष्ण स्वयं उसकी रक्षा के लिए आये। कहने का तात्पर्य है कि आर्त भक्त वो कहलाते हैं जब वे गम्भीर संकट में फंस जाते है तो वे अपने आराध्य को आर्त भाव से पुकारते है और उसकी शरण में जाते है।

ख. जिज्ञासु भक्त–

जिज्ञासु जैसा नाम से स्पष्ट है कि जिज्ञासा रखने वाले अर्थात किसी वस्तु को जानने की इच्छा रखने वाले अब प्रश्न उठता है कि वह वस्तु क्या है – वह है आत्मा को जानने की इच्छा, ब्रहम को जानने की इच्छा ऐसे भक्त जिज्ञासु भक्त कहलाते है।

उदाहरण के रूप में आप जाने कि एक बार राजा चण्डिकापालि, घेरण्ड 135/267 में जाकर कहने लगें कि तत्व ज्ञान का कारण जो घटस्थ योग है उसक बतायें। महर्षि घेरण्ड ने राजा चण्डिकापालि के प्रश्न की प्रशंसा करते हुए उसे आत्म कल्याण के लिए घटस्थ योग की शिक्षा दी। हम कह सकते है कि राजा चण्डिकापालि जिज्ञासु भक्त थे।

नोटः– स्मरण रहे कि हठयोग की महत्वपूर्ण पुस्तक घेरण्ड संहिता की रचना राजा चण्डिकापालि व घेरण्ड ऋषि के संवाद का प्रतिफल है।

ग. अर्थाथी भक्त–

समस्त संसार के व्यक्ति इस श्रेणी में आते है ऐसे भक्त किसी सांसारिक वस्तु मकान, जमीन, धन, स्त्री वैभव मान–सम्मान, परीक्षाओं में सफलता विवाह के लिए अपने आराध्य को भजते है। ऐसे भक्त अर्थाथी भक्त कहलाते है ।

घ. ज्ञानी भक्त –

ज्ञानी भक्त ऐसे भक्त है जो आत्म–कल्याण, ब्रहम की प्राप्ति के लिए अपने आराध्य को भजते है। उपरोक्त चार प्रकार के भक्तो में ज्ञानी भक्त श्रेष्ठ है।

2.6.2 नवधा भक्ति–

नवधा भक्ति, भक्ति योग का बड़ा महत्वपूर्ण पक्ष है। नौ प्रकार से भगवान की भक्ति की जाती है। भगवत पुराण में कहा है। श्रवण, कीर्तन, विष्णो स्मरणं पादसेवनम् ।

अर्चन वन्दनं दास्य साख्यमात्मैनिवेदनम् ।।

अर्थात श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चन दास्य, साख्य और आत्मानिवेदन ये भक्ति के नौ भेद है।

1. श्रवण भक्ति –

परमपिता परमेश्वर, अपने आराध्य ईष्ट के दिव्य गुणों व लीला आदि के विषय में सुनना श्रवण भक्ति कहलाती है।

2. कीर्तन भक्ति–

कीर्तन से आप भली भाँति परीचित होंगे। भगवान के दिव्य गुणों, लीला – का गायन इत्यादि कीर्तन भक्ति कहलाती है।

3. स्मरण भक्ति–

सर्वत्र भगवान का स्मरण करना। अपने आराध्य की लीला, गुणों का निरन्तर अनन्य भाव से स्मरण करना स्मरण भक्ति कहलाती है।

4. पादसेवन भक्ति–

भगवान के चरणों की सेवा करना पाद सेवन भक्ति कहलाती है। यह भक्ति एक तो भगवान के चरणों का चिन्तन करते हुए तथा दूसरी उनकी प्रतिमा में चरणो को धोकर श्रद्धाभाव से साधना करते हुए की जाती है।

5. अर्चन भक्ति–

अर्चन भक्ति का अर्थ है पूजन करना यह पूजन मानसिक रूप से या स्थूल रूप से अपने आराध्य की हो सकती है।

6. वन्दन भक्ति–

भाव भरे मन से भगवान की वन्दना करना वन्दन भक्ति का उदाहरण है।

वैदिक ऋचाओं, भक्तों के द्वारा भगवान की स्तुति करना वन्दन भक्ति का उदाहरण है।

7. दास्य भक्ति–

अपने आप को भगवान का दास समझना, अपने आप को भगवान का – सेवक समझना दास्य भक्ति का उदाहरण है। जैसे हनुमान जी श्री रामचन्द्र जी के प्रति रखते थे।

8. साख्य भक्ति–

साख्य का अर्थ है मित्र अपने आराध्य को अपना मित्र समझना जैसे सुदामा–कृष्ण अर्जुन–कृष्ण इस भक्ति के उदाहरण है।

9. आत्म निवेदन भक्ति–

आत्मनिवेदन भक्त के द्वारा अपने जीवन में आनेवाली समस्याएँ, बाधाएँ, मुश्किलें और अपने दोषों का ईश्वर के सामने वर्णन करके उसे दूर करने के लिए प्रार्थना करने का एक प्रकार हैं। आत्म निवेदन भक्ति अपने दुखों को ईश्वर को अर्पण कर देना कहलाती है। आत्मनिवेदन भक्ति अपने को भगवान के स्वरूप में अर्पण करना ही है।

2.6.3 भक्ति के भेद–

भक्ति मुख्यतरू दो स्वरूपों में वर्णित है जो। निम्नलिखित है –

ब. रागात्मिका भक्ति–

जब नवधा भक्ति अपनी चरम अवस्था में होती है तब रागात्मिका भक्ति की शुरूवात होती है जब नवधा भक्ति अपनी चरम अवस्था को पार कर जाती है और अन्तःकरण में एक अलौकिक भगवत प्रेम भाव उत्पन्न होने लगे तो रागात्मिका भक्ति एक आनुभूतिक अवस्था है। ऐसी अवस्था में साधक अपने आराध्या की झलक का अनुभव कर सकता है। उसे अपने आराध्य दिखाई देने लगते है वह भी सजीव उनकी झलक वह कभी आसमान में, । कभी पेड़ों में, कभी जलाशय में तो कभी अपने मन्दिर में उसको उनकी प्रतिमा सजीव दिखाई देने लगती है।

स. पराभक्ति–

पराभक्ति रागात्मिका भक्ति की चरम अवस्था है। यह साधक की उत्कृष्ट ओर अन्तिम पराकाष्ठा है। पराभक्ति में द्वैत नहीं रहता है इस अवस्था में उपासक और आराध्य एक हो जाते है और साधक को एक मात्र ब्रहम का साक्षात्कार होता है।

भक्ति योग का स्वरूप कुछ इसी प्रकार से ही है जो योग के परम लक्ष्य को प्राप्त कराने वाली योग साधना मार्ग है। अनेक भक्तों जैसे मीरा, राधा, शबरी, कबीर, नानक, केवट आदि भक्ति मार्ग के आदर्श साधक के रूप में विख्यात है।

2.7 अभ्यास प्रश्न

1. सत्य/असत्य बताये

(क) यम का वर्णन अन्तरंग साधन में मिलता है।

(ख) नियमों की संख्या छः बताई है।

(ग) धारणा की उच्च अवस्था का नाम ध्यान है।

(घ) अस्तेय की प्रतिष्ठा होने पर सारे रत्नों की प्राप्ति हो जाती है।

2. बहुविकल्पीजय प्रश्न

(क) ठकार का सम्बन्ध है।

(अ) सूर्य नाडी। (ब) चन्द्र नाडी

(स) अ व ब दोनों। (द) इनमें से कोई नहीं

(ख) हठयोग के आदि वक्ता माने जाते हैं।

(अ) ब्रहमा (ब) विष्णु

(स) शिव (द) इन्द्र

(ग) निम्न पुस्तकों में से बेमेल छॉटिए–

(अ) शिव संहिता (ब) गीता

(स) हठप्रदीपिका। (द) घेरण्ड संहिता

(घ) स्वात्मा राम द्वारा रचित पुस्तक कौन है?

(क) घेरेंड संहिता (ख) हठप्रदीपिका

(ग) वशिष्ठ संहिता (घ) सांख्य दर्शन

2.8 सारांश

इस प्रकार, उपरोक्त चर्चा से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि योग के विभिन्न मार्ग योग साधकों के लिए सर्वश्रेष्ठ मार्ग है ये मार्ग न केवल योग के तीन रूपों– राज योग, हठ योग और भक्ति योग योग के ऐसे मार्ग है जो सरल , सुगम्य और वैज्ञानिक भी है। ये मार्ग एक विज्ञान के रूप में दृष्टिगत होते है। राजयोग, हठ योग और भक्ति योग के तीन मार्गों का अनुसरण किया जा सकता है। योग साधक अपनी क्षमताओं और रुचि के अनुसार किसी भी मार्ग को चुन सके और अंततः मुक्ति प्राप्त कर सके। वर्तमान दृष्टि से यह अत्यंत लाभकारी सिद्ध होगा क्योंकि यह सद्भाव, प्रेम और निष्काम भाव का दर्शन सिखाता है। ये तीनों रास्ते एक दूसरे से अलग लग सकते हैं लेकिन वास्तविकता में ये अलग नही हैं नहीं. योग के ये तीनो मार्ग के रूप में एक दूसरे के पूरक हैं और अनंत के साथ सीमित की प्रक्रिया के माध्यम से मुक्ति के उद्देश्य को पूरा करते हैं। जिस प्रकार प्रकाश की विभिन्न किरणों का स्रोत एक ही होता है, उसी प्रकार योग के विभिन्न रूप मुक्ति के समान उद्देश्य को पूरा करते हैं जो वास्तव में एक हैं लेकिन अलग–अलग लगते हैं।

2.9 शब्दावली

सत्य– इन्द्रिय जनित ज्ञान

स्वाध्याय – अपना अध्ययन, अच्छी पुस्तकों का अध्ययन

शौच – शुद्धता

प्रत्याहार– इन्द्रिय संयम

हकार – सूर्य नाडी, पिंगला

ठकार – चन्द्र नाडी, इडा

कुण्डलिनी – मूलाधार चक्र के पास 3 फेरे लगाये हुई एक शक्ति

क्षीण – खत्म, कम

त्रिदोष वात, पित्त, कफ

आराध्य **-** ईष्ट, ईश्ववर, परमात्मा जिनकी आप पूजा करते है।

अर्थार्थी धन, वैभव की इच्छा वाला।

जिज्ञासु – जानने की इच्छा रखने वाला

2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सरस्वती स्वामी विज्ञानानन्द योग विज्ञान (2007) योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेति ऋषिकेश।
2. महर्षि पतंजलि योग दर्शन (2001) गीताप्रेस गोरखपुर।
3. पातंजल योग दर्शन स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती (1999) योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेति ऋषिकेष
4. योग विज्ञान – स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती (2007) योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेति ऋषिकेष।
5. राघवेन्द्र शर्मा राघव (2006) शिव संहिता चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली।
6. स्वात्मारामसुरी (2001) हठप्रदीपिका कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग, मन्दिर समिति लोनावाला।
7. महर्षि घेरण्ड (2003) घेरण्ड संहिता कैवल्यधाम लोनावाला।
8. भारद्वाज प्रो० ईश्वर जोशी डा0 भानु (2011) योग का स्वरूप निदेशालय अध्ययन एवं प्रकाशन उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी।

2.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. राजयोग क्या है?
2. पांतजलि के अनुसार राजयोग के यम और नियम समझाइए?

3. राजयोग के साधकों की कितनी अवस्था बताई गई है?
4. हठ योग का अर्थ और महत्व बतलाइए?
5. घेरंड संहिता और शिव संहिता में योग के स्वरूप को समझाइए?
6. हठप्रदीपिका में हठ योग के स्वरूप का वर्णन करें?
7. भक्ति के कितने प्रकार है? भक्ति के प्रकारों पर प्रकाश डालिए?
8. नवधा भक्ति को सविस्तार समझाइए?

खण्ड– द्वितीय - प्राचीन काल में योग सम्बन्धी परम्परायें

परिचय

परास्नातक योग कार्यक्रम के अन्तर्गत योग के आधारभूत तत्व (MAYO– 101) पाठ्यक्रम का यह द्वितीय खण्ड है, जिसका शीर्षक योग के आधारभूत तत्व में प्राचीन काल में योग सम्बन्धी परम्परायें है। इस खण्ड के अंतर्गत कुल तीन इकाइयाँ हैं–

इकाई–4 के अन्तर्गत बौद्ध दर्शन एवं जैन दर्शन में योग वेद एवं उपनिषद में योग का क्या स्वरूप है। इस बारे में बतलाया गया है।

इकाई–5 के अन्तर्गत प्राचीन काल में योग की परमप्राय में महर्षि पतंजलि का जीवन परिचय एवं यौगिक योगदान के साथ गोरखनाथ जी की परम्परा का परिचय और यौगिक योगदान पर चर्चा की गई है।

इकाई –6 में स्वामी राम कृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, श्री अरविंद महर्षि रमण जी, स्वामी कुवलयानन्द जी, श्री श्यमाचरण लाहडी जी का जीवन परिचय और उनके यौगिक योगदान बतलाया गया है।

अतः इन समस्त इकाईयों के माध्यम से प्राचीन काल में योग सम्बन्धी परम्पराओ और उनके द्वारा योग की परंपरा को आगे बढ़ाने में उन महान योगियों का योगदान आदि के विषय में जान सकेंगे।

इकाई –03 ज्ञान योग, कर्म योग एवम् मंत्र योग

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 ज्ञान योग

3.3 ज्ञान योगी के लक्षण

3.4 ज्ञान योग साधना के धरण

- 3.4.1 बहिरंग साधन
- 3.4.2 अंतरंग साधन

3.5 कर्म योग

3.6 कर्म एवं कर्म को अवधारणा

3.7 कर्म के प्रकार

- 3.7.1 विहित कर्म
- 3.7.2 निषिद्ध कर्म

3.8 कर्म योग की परिभाषा

3.9 कर्म योग साधना

3.10 कर्म योग की फलश्रुतियाँ

3.11 मंत्र योग

3.12 मन्त्र योग का अर्थ

3.13 मत्र योग परिभाषा

3.14 मत्र के घटक

3.15 मंत्र जप क्यों करें

3.16 मत्र जप के प्रकार

3.17 मन्त्र जप के अंग

- 3.17.1 जप के स्थूल प्रकार

3.18 मंत्र भेद

3.19 मंत्र जप करने की विधियाँ

3.20 मंत्र शुद्धी के उपाय

3.21 मंत्र योगका महत्व

3.22 अभ्यास प्रश्न

3.23 सारांश

3.24 शब्दा वली

3.25 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.26 निबंधात्मक प्रश्न

3.0 उद्देश्य

इस अध्याय में हम अध्ययन करेंगे–

- ज्ञान योग की सामान्य विचारधारा का अध्ययन
- ज्ञान योग साधना के विभिन्न चरणों के विषय में
- ज्ञान योग के लक्षणों पर प्रकार
- कर्मयोग की परिभाषा क्या है ?
- कर्मयोग साधना का स्वरुप क्या है?
- कर्म क्या है? कर्म के भेद क्या है?
- कर्मयोग की फलश्रुतियाँ क्या है ?
- कर्मयोग का व्यवहारिक जीवन में महत्व क्या है?
- मंत्र के घटक क्या क्या है ये समझेंगे
- मंत्र जप क्यों करें और मंत्रजप के प्रकार
- मन्त्रों का अर्थ एवं स्वरूप
- मंत्र जप करने के नियम क्या है जानेंगे

3.1 प्रस्तावना

शास्त्रों में अनेक प्रकार के योग मार्गो के बारे में बताया गया है। इन समस्त मार्गो को मुख्य उद्देश्य मनुष्य को उसके परम लक्ष्य तक पहुंचाना ही है। जिस तरह अनेकों नदिया अंत में अपने अलग अलग मार्गो से बहती हुई अंत में सागर में मिल जाती है वैसे ही योग की विभिन्न धाराओं का मूल लक्ष्य कैवल्य की प्राप्ति ही है। प्रस्तुत इकाई में हम ज्ञान योग,कर्म योग और मंत्र योग के विषय में जानेंगे।

दिव्य चेतना के विकास की चरम अवस्था मानव जीवन का चरम उद्देश्य है। साधारण शब्दों में इसे आत्मज्ञान, आत्मबोध, मोक्ष या अपवर्ग भी कहा जाता है। मोक्ष प्राप्त करने के मार्गो में सर्वाधिक साहस की माँग करने वाली धारा 'ज्ञानयोग' है।

कर्म को कुशलता पूर्वक करते हुए निष्काम कर्म करना कर्म योग की साधना है। मंत्र द्वारा अपने मन को निग्रह करके उसे परम चेतना से एकाकार करना मंत्र योग का परम ध्येय है। ज्ञान योग, कर्म योग और कर्म योग के योग की धाराओं द्वारा का परिचय हैं इस इकाई में जानेंगे।

3.2 ज्ञानयोग– अर्थ एवं स्वरूप

ज्ञान, यथार्थतः वह है जिसके द्वारा व्यष्टि व समष्टि के वास्ततिक स्वरूप का बोध होता है। ज्ञान शब्द संस्कृत व्याकरण के 'ज्ञ' धातु से बना है जिसका अभिप्राय हैरू– साक्षात अनुभव, जानना, बोध, अथवा प्रकाश। प्रकारान्तर से यह किसी तत्व की गहराई में पहुँचकर जानने का प्रयास करना एवं साक्षात्कार करना है। साधारण बोलचाल की भाषा में कहा जाए तो किसी वस्तु अथवा विषय के स्वरूप का वैसा ही अनुभव करना ही पूर्ण ज्ञान है। उदाहरणार्थ कि यदि हमें दूर से पानी दिखाई दे रहा है और निकट जाने पर भी हमें पानी ही मिलता है तो कहा जाएगा उस जगह पानी होने का वास्तविक ज्ञान हुआ।

"ज्ञानाग्नि सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा," अर्थात् जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि इंधन को भस्म कर देती है, वैसे ही ज्ञान रूपी अग्नि सम्पूर्ण कर्मों को भस्म कर देती है।

ज्ञान पर आधारित योगसाधना पद्धति को ज्ञानयोग की संज्ञा दी जाती है, यह योग का बौद्धिक और दार्शनिक पक्ष है।

ज्ञानयोग के सिंद्धात के अनुसार आत्मा आनंदस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, सत्य, कूटस्थ, नित्य, शुद्ध है। अपने वास्वतिक रूप में वह ब्रह्म ही है। ब्रम्ह के अतिरिक्त इस संसार में अन्य किसी की सत्ता नहीं है। यह समस्त जगत उसी अद्वितीय तत्व में स्थित होकर प्रकाशित हो रहा है।

ब्रम्ह स्वयं प्रकाशवान, अनन्त, अखंड, अनादि, चेतन स्वरूप तथा आनन्दमय है, जिस प्रकार एक ही अग्नि विभिन्न रूपों में प्रकट होती है, उसी प्रकार समस्त जीवों की अन्तरात्मा एक ही ब्रह्म की नाना रूपों में अभिव्यक्ति है। ज्ञानयोग का उद्देश्य वही है जो भक्तियोग और राजयोग का है किन्तु प्रकिया भिन्न है। यह योग के दृढ साधकों के लिए है उनके लिए जो न तो रहस्यवादी है, न भक्तिमान, अपितु बौद्धिक है।

ज्ञानयोग विशुद्ध बुद्धि के द्वारा ईश्वर साक्षात्कार अथवा आत्म साक्षात्कार का अपना मार्ग प्रशक्त स्वामी विवेकानन्द जी के अनुसार उसे सभी पुरानी मूर्तियों को सभी पुराने विश्वासों और करता है।

अन्धविश्वासों को, और दैहिक या पारलौकिक सभी कामनाओं को निकाल फेंकनें हेतु तत्पर रहना चाहिए और केवल मोक्ष लाभ के लिए कृतनिश्चय होना चाहिए क्योंकि ज्ञान के बिना मोक्ष लाभ नहीं हो सकता । स्वामी जी के अनुसार जो ज्ञानी बनना चाहे उसे सर्वप्रथम भय से मुक्त होना चाहिए, जब तक – किसी बात को जान न लो उस पर विश्वास न करे, ज्ञानी का ध्यान दो प्रकार का होता है एक, हर ऐसी वस्तु से विचार हटाना, और उसको अस्वीकार करना जो हम नही है, दूसरा केवल उसी पर दृढ़ रहना जो कि वास्तव में हम है।

जब तुम अयथार्थ छोड़ दोगे तो यथार्थ आत्म तत्व ही शेष रह जायेगा, और वह है आत्मा एक सच्चिदानंद परमात्मा। अभी अज्ञान की परत पर चढ़ी परत ही उसे हमारी दृष्टि से ओझल किये हुये है, वह सदैव वही रहता है। एक सच्चे विवेकी को, विवेक की सुदूरतम सीमाओं तक निर्भयता पूर्वक इसका अनुसरण करना चाहिए।

जीवन की किसी भी समस्या का सामना करने से ज्ञानयोगी भयभीत नही होता, वह जीवन के सभी दुःखात्मक एवं सुखात्मक पक्षों के लिए तैयार रहता है। यह तो मृत्यु को जीवन का अभिन्न अंग मानकर जन्म एवं मृत्यु से पार जाने के लिए संकल्पित रहता है।

ज्ञानयोगी कहता है– जो मिथ्या है उसे अस्वीकार करो और अपने सक्षम विवेक से सत्य की तलाश करो जो भी इस कठिन पथ का अनुसरण करने का प्रयास करता है। उसके पास अतिमानवीय मानसिक बल होना चाहिए, जिस प्रकार एक लचीली डाली हवा के स्पर्श से झुक जाती है ठीक उसी प्रकार उसका शरीर उसके उच्च विचारों के निर्देश के सामने झुक जाता है।

सामान्य आदमी तो अपनी मानवीय दुर्बलताओं के फलस्वरूप ही अपने कार्यों को, अपने, आदर्शों और चेष्टाओं से भिन्न पाता है। शरीर ज्ञान को अलग करना बड़ा कठिन होता है, कोई हजारों बार दुहरा सकता है कि वह शरीर नही आत्मा है परन्तु सिर्फ थोड़ा सिरदर्द ही पर्याप्त है जो सारे विचारों को शरीर पर केन्द्रित कर देता है।

3.3 ज्ञानयोगी के लक्षण

1. एक सच्चे ज्ञानयोगी के लक्षण मुख्यतः इस प्रकार हैरू वह ज्ञान के अतिरिक्त और कुछ कामना नहीं करता है। उसकी सभी इंद्रियाँ पूर्ण नियंत्रण में रहती है। वह चुपचाप सभी कष्ट सहन कर सकता है।
2. उन्मुक्त आकाश के नीचे नग्न वंसुधरा पर उसकी शय्या हो या वह राजमहल में निवास करे, वह समान रूप से संतुष्ट रहता है।
3. उसका दृढ विश्वास होता है कि ब्रहम के अतिरिक्त सब मिथ्या है...
4. उसे मुक्ति की प्रबल इच्छा होती है। प्रबल इच्छा शक्ति द्वारा वह अपने मन को उच्चतर वस्तुओं पर दृढ़ रखता है।

3.4 ज्ञानयोग साधना के चरण

ज्ञानयोगी के अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त करने हुते प्रथमतः शरीर एवं मन की विशेष पात्रता की आवश्यकता होती हैं। इसीलिए ज्ञानयोग को प्रमुख दो चरणो में विभाजित किया गया है।

- बहिरंग साधन
- अन्तरंग साधन

बहिरंग साधनों के अन्तर्गत उन सोपानों का समावेश है जो कि ज्ञानयोग की उच्चश्रेणी की साधना (अंतरंग) हेतु पात्रता सम्बन्धी शर्तों को पूरा करती है। यह प्रारंभिक तैयारी है, ज्ञानयोग के उच्च सोपानों की साधना के लिए।

3.4.1 बहिरंग साधनों–

बहिरंग साधनों के अर्न्तगत निम्न चार प्रमुख चरणये गये है।

- विवेक
- वैराग्य
- षट्सम्पत्ति–
- मुमुक्षुत्व
- विवेक

पहला साधन है विवेक, मानवीय जीवन धारा को आमूल परिवर्तित कर देने वाली चमत्कारिक शक्ति है यह, जिसने भी विवेक का सहारा लिया उसका कभी पतन नही हो सकता, वह कुशल–सुखमय जीवन व्यतीत कर सकता है। विवेक का तात्पर्य है– नित्यानित्य वस्तु का ज्ञान,

'नित्यवस्त्वेकं ब्रह्म तद्व्यतिरिक्तं सर्वमनित्यम् अयमेव नित्यानित्यवस्तु विवेक तत्वाोध ।।

अर्थात् नित्य वस्तु (शाश्वत) एकमात्र ब्रह्म ही है, ब्रह्म के अतिरिक्त समस्त जगत अनित्य,नाशवान है यह विवेचन दृष्टि विवेक कहलाती है।

- **वैराग्य**

वैराग्य का अभिप्राय है इहलौकिक भोग–ऐश्वर्यों से लेकर पारलौकिक दिव्य स्वर्गीय सुख भोगों को क्षणभंगुर मानकर उनके प्रति भोगेच्छा का पूर्णतया परित्याग कर देना।

यथा (इह स्वर्गभोगेषु इच्छाराहित्यम।)

- **षट्सम्पत्ति** – षट्सम्पत्ति का तात्पर्य निम्न 6 प्रकार के साधनों से है।

1. शम 2. दम 3. उपरति 4. तितिक्षा 5. श्रद्धा 6. समाधान

1. शम

शम का तात्पर्य है– भीतरी इन्द्रिय (मन) का निग्रह कर लेना, यथा–शमो नाम आन्तरिन्द्रियनिग्रहः, मन के निग्रह से ही शरीरेन्द्रिय का निग्रह संभव होता है।

2. दम

चक्षुरादि इन्द्रियों को बाह्य विषयों से हटा लेना अथवा निग्रह कर लेना श्दमश है।

3. उपरति

उपरति का तात्पर्य यहां विरत हो जाना है। अर्थात् जगत की किसी भी वस्तु में आसक्ति का न होना उपरति है। व्यक्त विषयों में पुनः आसक्ति न होना भी उपरति है।

4. तितिक्षा

समस्त द्वन्दों को सहन करते हुये भी अपने ध्येय या लक्ष्य वस्तु की प्राप्ति के लिए प्रयासरत
रहना तितिक्षा है।

'शीतोष्ण दुःखादि सहिष्णुत्वम'

अर्थात् शीत, उष्ण, सुख–दुख, मानें– अपमान आदि इन्दों को धैर्यपूर्वक सहन कर लेना ही तितिक्षा है।

5. श्रद्धा

गुरूवेदान्तवाक्यादिषु विश्वासः श्रद्धा

अर्थात् – वेद, वेदान्त, शास्त्र, गुरूवाक्यों में दृढ़ निष्टा एवं अटल आस्था विश्वास का नाम श्रद्धा है।

6. समाधान

चित्त की एकाग्रता का नाम समाधान है। अनेक प्रकार के मल, विक्षेप, आवरणों के कारण चित्त चंचल बना रहता है। इनके निवारण हेतु इनका समाधान आवश्यक है।

चित्त की एकाग्रता का नाम समाधान है। अनेक प्रकार के मल, विक्षेप, आवरणों के कारण चित्त चंचल बना रहता है। इनके निवारण हेतु इनका समाधान आवश्यक है।

- **मुमुक्षत्व**

आध्यात्मिक, आधिभौतिक, अधिदैविक, त्रितापों से समस्त इस संसार से तट कर मोक्ष रूप अमृतपद को प्राप्त करने की प्रबलतम इच्छा मुमुक्षत्व है। संसार की अनित्यता का ज्ञान होने पर उत्पन्न वैराग्य के कारण अक्षयपद प्राप्ति की उत्कट इच्छा की मुकुक्षत्व है।

3.4.2 अन्तरंग साधनः–

अन्तरंग साधन के अर्न्तगत निम्न तीन का सम्मिलित किया गया है।

1. श्रवण 2. मनन 3. निदिध्यासन

1. श्रवण

गुरू मुख से तत्वज्ञान के संबन्ध में निश्चयात्मक ज्ञान का श्रवण करना इसका अभिप्राय है। इस प्रकार संशय निवृत्ति हेतु गुरूमुख से ब्रहमात्मा के विषय में श्रवण करना होता है।

2. मनन

ब्रह्मविद् गुरू के मुख से ब्रह्म के विषय में श्रवण किये हुये विषय को अन्तःकरण में ठीक–ठीक रूप में धारण कर लेना, निश्चय कर लेना मनन कहलाता है। मनन से अस्पष्ट विषय भी स्पष्ट हो जाता है।

3. निदिध्यासन

निदिध्यासन का अर्थ है साक्षात्कार या अनुभूति, शरीर से लेकर बुद्धि पर्यन्त जितने भी जड़ पदार्थ है उनमें भिन्नत्व की भावना को तिरोहित कर एकमात्र बहाभव की अनुभूति निदिध्यासन की चरम परिणति है। यही ज्ञानयोग साधना की भी चरम उपलब्धि अथवा परम लक्ष्य की प्राप्ति है। इस अवस्था में साधक परमतत्व के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेता है।

3.5 कर्मयोग

योग की विभिन्न शाखाओं में से कर्मयोग विशिष्ट एवं व्यवहारिक है। कर्मयोग हमें कर्म करने की विधि और हमारे प्रत्येक कर्म को कर्मयोग बनाने का उपाय सिखाता है। कर्म से हम बंधे हुए है। हमारे विगत कम का ही परिणाम है, हमारा यह जन्म कर्मों का चक्रवत् अनुबंधन ही वह कारण है। जिससे हमें बार–बार जन्म लेना पड़ता है। जब तक हम कर्म की गति व विधान को समझकर कर्मयोग साधना नहीं करते तब यह क्रम अनवरत चलता रहता है, और इससे अज्ञान मुक्ति नहीं मिलती। मनुष्य जीवन का उच्चतम लक्ष्य है– कर्मबंधन से मुक्ति, जो केवल कर्मयोग द्वारा ही संभव है।

यह एक अकार्य विधान है कि प्रत्येक कर्म का कोई न कोई फल अवश्य होता है। शुभ या अच्छे कर्म का पुण्य या अच्छे फल और अशुभ या बुरे कर्म का पाप या बुरे फल होता है। व्यक्ति जैसा कर्मबीज बोता है वैसा ही कर्मफल काटता है। जीवन भर किये जाने वाले इन्हीं कर्मों से प्रारब्ध बनते है और उसी अनुरुप आगामी जन्म मिलता है। कर्म के इस अदभुत विधान को जानना और उससे पार पाने का उपयुक्त साधन ही कर्मयोग है। प्रस्तुत इकाई में कर्मयोग के अन्तर्गत हम, कर्म का अर्थ व महत्व, कर्म के प्रकार, कर्मयोग की परिभाषा, कर्मयोग साधना, कर्मयोग की फलश्रुतियाँ और कर्मयोग का व्यवहारिक महत्व का सुव्यवस्थित अध्ययन करेगें।

3.6 कर्म– एवं अवधारणा

कर्म शब्द कृ धातु से विनिर्मित है जिसका अर्थ है– करना। सामान्य अर्थ में कर्म का तात्पर्य है – क्रिया, कृत्य, कार्य करना, आदि । किन्तु योग साहित्य में प्रयुक्त कर्म का अर्थ थोड़ा गहन है। सभी कार्य या क्रिया कर्म नहीं है। कोई भी क्रिया, कृत्य व कार्य तत्र कर्म कहलाता है जब उसके पीछे कर्त्ता का संकल्प भाव –विचार जुड़ जाता है। क्योंकि ऐसे अज्ञान क्रिया के बीज कर्ता के चित में अंकित नहीं होते है। और उनका कोई फल नहीं होता। जैसा कि निद्रा के समय खटमल दबकर मर जाना, पेट में पाचन क्रिया का होना यह कर्म नहीं है क्रिया है। अतः कोई भी क्रिया, कार्य व कृत्य तब कर्म कहलाता है जब उसके होने में संकल्प भाव, विचार जुड़ जाता है।

कर्म मनुष्य जीवन से अविछिन्न जुड़ा रहता है। यदि जीवन है तो अनिवार्य रूप से कर्म भी है। अगर व्यक्ति न चाहे तो भी यह प्रकृति बलात् उससे कर्म कराती ही है। क्योंकि सभी मनुष्य प्रकृति व सृष्टि के विधान से बंधे हुए हैं। कहा गया है बिना हरकत या कर्म के मनुष्य एक क्षण भी नहीं रह सकता। गीता (३/१५) कहती है न हि कच्चितक्षणमपि जात तिस्तत्यकर्मकृत अर्थात् निःसन्देह कोई भी मनुष्य किसी भी कालमें क्षणमात्र भी बिना कर्म नहीं रहता।

कर्म का एक अर्थ होता है वह क्रिया जिसका कुछ न कुछ परिणाम निकले। परिणामा फल के बिना कोई भी क्रिया कर्म नहीं कहलाती प्रत्येक कर्म के पीछे उसका कारण यानी प्रेरणा और उसका फल यानी परिणाम अवश्य होता है। कर्म की इसी गहन गति को समझने का और उससे पाने का उपाय कर्मयोग है। कहा जाता है कि बड़े विद्वान व ज्ञानी जन भी इस कर्म बंधन के चक्र में फँस जाते है और जन्म जन्मान्तर तक उससे मुक्त नही हो पाते । प्रत्येक चेतन मनुष्य का कर्तव्य है कि कर्म की गति को समझे और उससे पार पाने का सतत् पुरूषार्थ करे।

3.7 कर्म के प्रकार

भारतीय अर्थ साहित्य में कर्म और कर्म के प्रकार एवं स्वरूप पर विभिन्न धारणाएँ उपलब्ध है। यहाँ पर विशेष रूप से कर्म के प्रमुख भेद पर चर्चा की जा रही है–

वैदिक साहित्य में कर्म के प्रकार वैदिक ग्रन्थों में कर्म के दो प्रकार बताए गए हैं

(1)विहित कर्म

(2)निषिद्ध कर्म

3.7.1 विहित कर्म–

मनुष्य के द्वारा किए जाने योग्य कर्म को विहित कर्म कहते है। मनुष्य क्या करें कौन सा कार्य करें, इसका निर्धारण हमारे शास्त्र, स्मृति, आप्तपुरुष एवं ऋषि गणों के द्वारा किया गया है। यह सभी कर्म विहित कर्म कहलाते है। सभी विहित कर्म में अच्छाइयाँ निहित होती है। इसके चार भेद बताए गए है– (क) नित्य कर्म (ख) नैमित्तिक कर्म (ग) काम्य कर्म (घ) प्रायश्चित कर्म

(क) नित्य कर्म – जो मनुष्योचित दैनिक कर्म होते है नित्य कर्म कहलाते है। जैसे दिनचर्या के शौचादि, भोजनादि, आजीविका श्रम, अध्ययन–अध्यापन कार्य।

(ख) नैमित्तिक कर्म– ऐसे कर्म जो धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र के निर्देश अनुरूप किए जाते हैं अर्थात जो किसी निमित्त को लेकर किए जाते हैं, उसे नैमित्तिक कर्म कहते है। जैसे कि शिशु जन्म लेने के बाद नामकरण कर्म, शिक्षारंभ से पूर्व विद्यारंभ संस्कार, विवाह संस्कार, शवदाह कर्म आदि कर्म नैमिनिक कर्म हैं।

(ग) काम्य कर्म– कोई भी कार्य कामनापूर्ति इच्छापूर्ति तथा वासनापूर्ति के लिए यानी कोई न कोई उद्देश्य प्राप्ति के साथ किया जाता है वह काम्य कर्म कहलाता हैं।

(घ) प्रायश्चित कर्म– स्वयं के द्वारा की गई गलती, दोष, त्रुटि तथा पाप के पश्चाताप से मुक्त होने के लिए जो कर्म किए जाते है जिससे उन पापों का क्षय होता है वैसे कर्म प्रायश्चित कर्म कहलाते है।

उदाहरणार्थ तप साधना, उपवास, मौन, तितिक्षा आदि प्रायश्चित कर्म है।

3.7.2 निषिद्ध कर्म –

उपनिषद् एवं मीमांसा दर्शन के अनुसार

(क) संचित कर्म (ख) क्रियामाण कर्म (ग) प्रारब्ध कर्म

(क) संचित कर्म – वह कर्म जो हमने विगत समय में किया और जिसका बीज हमारे चित्त में अंकित है वह संचित कर्म है। हमारा चित्त विगत के कई जन्मों के अनेकविध संचित कर्मों का भण्डागर है। चित्त कर्म भूतकाल अर्थात पूर्व जन्मों के अनेक शरीरों के द्वारा किये गये होते हैं जिनके कर्मों का फल फलारम्भ सहित कर्म संस्कार संहित हो जाते हैं।

(ख) क्रियामाण कर्म– इसको आगामी कर्म भी कहा जाता है। जो कर्म आगामी समय में किये जाने वाले हैं तथा जिन कर्मों का आरंभ अभी नहीं किया है वही आगामी कर्म है। ऐसे कर्म करने के बाद भविष्य में फल प्रदान करने वाले होते हैं। क्रियामाण कर्म को भविष्यत् काल कर्म की संज्ञा दी जाती है।

इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि संचित संस्कार कर्मफल बनकर जब आगामी दिन में अभिव्यक्त होते हैं क्रियामाण कर्म के रूपमें जाने जाते हैं।

(ग) प्रारब्ध कर्म – संचित कर्म परिपक्व होने पर जब अभिव्यक्क होता है वह प्रारब्ध कर्म कहलाता है। प्रारब्ध कर्म के बीज हमारे अन्दर संस्कार व वासना के रूप में संचित रहते हैं। ऐसे कर्म एक समय परिपाक होकर, प्रबल बनकर, सामने आते है। सुख–दुःख, भाग्य, सफलता आदि के पीछे ये प्रारब्ध कर्म ही कारण रूपमें रहते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार–

समूचे गीता शास्त्र के अध्ययन के बाद गीता में तीन प्रकार के कर्म का ज्ञात होता है– सकाम कर्म, निष्काम कर्म और यज्ञ कर्म । किन्तु कर्म के भेद को प्रकाशित करते हुए एक स्थान पर कर्म के निम्र तीन प्रकार बताए गए है

'कर्मणो हयपि बौद्धव्यं च विकर्मणा अकर्मणद्य बोद्धव्यं गहना कर्मणों गतिः ।

कर्म का स्वरूप भी जाननी चाहिए और अकर्म का स्वरूप भी जानना चाहिए तथा विकर्म का स्वरूप भी जानना चाहिए, क्योंकि कर्म की गति गहन है।

(१) कर्म – वेद, शास्त्र तथा महापुरूष के निर्देश अनुरूप किए जाने वाले मन व्योचित कर्म ही कर्म कहलाते हैं। अर्थात जो मनुष्य द्वारा करने लायक है वही कर्म है। इसी कर्म को योग साधना द्वारा कर्म योग मे बदला जाता है।

(२) अकर्म– जो कर्म अनासक्त भाव से किया जाता है और जिस को करने से अन्तःकरण में किसी प्रकाश का संस्कार नहीं बनता वह अकर्म है। इस में हर तरह के कर्म आते हैं, शास्त्र विहित भी एवं शास्त्र विरूद्ध भी ।

(३) विकर्म – शास्त्र तथा मनुष्य धर्म के विपरीत कर्म विकर्म है। यह कर्म शास्त्र अविहित स्वार्थ सिद्धि तथा वासनापूर्ति के लिए किये जाते है। पाप कर्म ही विकर्म है।

- **पातंजल योग सूत्र के अनुसार–**

योग दर्शन का प्रतिपादक ग्रन्थ महर्षि पतंजलिकृत योग सूत्र में कर्म के चार प्रकार बताए गए हैं जिसकी चर्चा चतुर्थ पाद के सातवें सूत्र पर की गयी है।

(१) शुक्ल कर्म, (२) कृष्ण कर्म, (३) शुक्ल कृष्ण कर्म (४) अशुक्ल अकृष्ण कर्म

(१) शुक्ल कर्म अच्छे कर्म तथा पुण्य कर्म शुक्ल कर्म है ऐसे कर्म शास्त्रानुकूल होते हैं।
(२) कृष्ण कर्म– बुरे कर्म तथा पाप कर्म कृष्ण कर्म हैं। ऐसे कर्म शास्त्र के विपरीत होते हैं।
(३) शुक्लकृष्ण कर्म– दोनों प्रकार के कर्म अच्छे और बुरे जब एक साथ किए जाते हैं शुक्लकृष्ण कर्म कहलाते हैं ऐसे कर्म सामान्य सासारिक लोग करते है कभी पुण्य कर्म कभी पाप कर्म ।
(४) अशुक्ल अकृष्ण कर्म– न पुण्य यानी अच्छे कर्म और न पाप यानी बुरे कर्म दोनों से भिन्न कर्म अथवा दोनो मिश्रित पाप–पुण्य कर्म हो, उसे अशुक्ल अकृष्ण कर्म कहा जाता है। ऐसे कर्म के मात्र योगी पुरुष के होते हैं।

3.8 कर्मयोग की परिभाषा –विभिन्न योग ग्रन्थ तथा महापुरूषों के मत में कर्मयोग की परिभाषा है।
श्रीमद्भगवद् गीता के अनुसार

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।
तस्माद्योगाय युज्यस्य योगः कर्मसु कौशलम्।।

गीता २/५०

समबुद्धियुक्त पुरूष पुण्य और पाप दोनों को इसी लोक में त्याग देता है, अर्थात् उनसे मुक्त हो जाता है। इससे तू समत्वरूप योग में लग जा यह समत्वरूप योग ही कर्मों में कुशलता है

अर्थात कर्म त्रिशिश्विब्राह्मणोपषिद् के अनुसार– बन्धन से छूटने का उपाय है।

कर्म कर्तव्यमित्येव विहिते कर्मसु।
बन्धनं मनसो नित्यं कर्मयोगः स उच्यते ।।

विहित कर्मों में इस बुद्धि का होना कि यह कर्तव्य कर्म है, मन का ऐसा नित्य बन्धन कर्मयोग है।

- **स्वामी विवेकानंद के अनुसार–**

कर्मयोग का अर्थ है– मौत के मुँह में बिना तर्क–वितर्क किए सबकी सहायता करना, भले ही तुम लाख बार ठगे जाओ पर मुँह से एक बात न निकालो और तुम जो कुछ भला कार्य कर रहे हो उसके संबंध में सोचो

तक नहीं। पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जी के अनुसार, कर्मयोग इसी कुशलता का नाम है जो इस प्रकार कलापूर्ण कार्य करना जानता है कि किए हुए कार्य का उलटा फल न निकले वह कर्मयोगी है।

कर्मयोग की उपर्युक्त परिभाषा के विश्लेषण से हमें निम्न सार संक्षेप हस्तगत होते हैं।
१— कर्म के पीछे फल की इच्छा न रखना और निरंतर स्वकर्म का पालन करना कर्मयोग है।
२. आत्मकल्याण और लोककल्याण के लिए बिना स्वार्थ सिद्धि कर्तव्य करते रहना कर्मयोग है।
३— मृत्यू पराजय हानि और जय, सिद्धि व लाभ किसी भी कारणों से अप्रभावित रहकर नित्य कर्म में रत रहना कर्मयोग है।
४— कर्मयोगी का कर्म सदा ही विहित निष्काम एवं अहंकार रहित होते हैं।

3.9 कर्मयोग साधना

हम जो भी कर्म करते है उन प्रत्येक कर्मों को योग का साधन बनाने की विधि को कर्म योग साधना कहा जाता है। सभी मनुष्य कर्म करते है। किन्तु ऐसे कर्म योग प्रदायक तथा योग लाभ देने वाले नहीं होते। साधक अपने स्वधर्म, स्वकर्म का पालन करते हुए अपने चित्त को शुद्ध कर योग को प्राप्त कर सकता है। कर्मयोग साधना कर्म से विमुख होना और कर्म से पलायन होकर एकान्तवासी बनने का देश नहीं है हमारे हर कर्म कैसे दिव्या श्रेष्ठ, निष्काम बने जो हमें योग की प्राप्ति कराने में समर्थ हो ऐसी कुर्म की कुशलता ही कर्मयोग साधना है श्रीमद्भगवद्गीता को कर्मयोग का शीर्ष ग्रन्थ माना गया है. गीता में निरूपित कर्मयोग साधना की चर्चा किया जा सकता है।

निष्काम कर्म व आसक्ति रहित कर्म जब कर्त्ता पूर्णतः निष्काम भाव से कर्म व कर्म फल में अनासक्त होकर कर्म करता है वह कर्म उसे योग की और अग्रसर करता है। जहाँ कर्म के पीछे मोह, कामना, वासना इच्छा आदि जुड़े रहते हैं उसका परिणाम घोर बन्धनकारी होते हैं। यही कर्म बंधन है। निष्काम भाव से जो कर्म किए जाते है उसका बीज व परिणाम कर्त्ता के चित्त में संचित नहीं होते। फलस्वरूप साधक का चित्त निर्मल होता जाता है और अन्ततः उसे योग की स्थिति प्राप्त होती है। इस पर गीता का उदघोष है—

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्य ध्याचरन्कर्म परमाप्नोति पुरुषः।।
गीता ३/१

इसलिए हे अर्जुन तू निरंतर आसक्ति से रहित होकर सदा कर्तव्य कर्म को भली भाँति करता रह क्योंकि आसक्ति से रहित होकर कर्म करता हुआ मनुष्य परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। गीता में अन्य स्थान पर भी आसक्ति रहित कर्म के माध्यम से योग के लक्ष्य की प्राप्ति पर व्याख्या मिलती हैं।

(क) कर्त्तापन का त्याग –

कोई भी व्यक्ति जब मैं कर रहा हूँ या मैं ही कर्त्ता हूँ ऐसा मानकर कर्म करता है वह अवश्यमेव कर्मबंधन से बंध जाता है। न उसे कभी योग की प्राप्ति होती है। अभिमान, कर्त्तापन का भाव तथा अहंकार–ये कर्मयोग के बाधक हैं। साधक जब कर्त्तापन या अभिमान का त्याग करके अपने को एक निमित्त साधन मानकर कर्म करने लगता है उसके लिए योग रूपी ग्रन्थ कठिन नहीं रहता। ऐसा मानो कि मैं नहीं कर रहा हूँ जो कुछ हो रहा है यह प्रकृति करा रही है– यही कर्त्ता का त्याग है।

वास्तव में सम्पूर्ण कर्म सब प्रकार से प्रकृति के गुणों द्वारा किये जाते हैं, तो भी जिसका अन्तः करण अहंकार से भरा हुआ हो, ऐसा अज्ञानी में कर्ता हूँ ऐसा मानता है। परन्तु हे महा बाहो ! गुणविभाग और कर्मविभाग के तत्व को जानने वाला ज्ञानयोगी सम्पूर्ण गुण ही गुणों में बरत रहे हैं ऐसा समझकर अन्त में आसक्त नहीं होता।

(ख) कर्मफल का त्याग

वैसे कर्म जो फल व परिणाम त्याग कर किये जाते हैं योग प्रदायक माने जाते हैं। अन्यथा कर्मयोनि में ही बंधन वाले होते हैं। कर्मयोग साधना में साधक निरन्तर यह प्रयत्न करता है कि विहित व कर्तव्य कर्म करते रहें किन्तु उनके फल के प्रति उदासीन हो। गीता इस सुन्दर तथ्य को इस प्रकार उजागर करती है–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन,
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।
गीता २/४७

तेरा कर्म करने में ही अधिकार है, उसके फलों में कभी नहीं। इसलिये तू कर्मों के फल का हेतु मत हो तथा तेरी कर्म न करने में भी आसक्ति न हो। कर्मयोग साधना में साधक किस प्रकार कर्मफल का त्याग करें। गीता में अन्यय एक जगह निर्देश हैः

'जो पुरूष समस्त कर्मों में और उनके फल में आसक्ति का सर्वथा त्याग करके संसार के आश्रय से रहित हो गया है और परमात्मा में नित्य तृप्त है, वह कर्मों में भलीभाँति बरतता हुआ भी वास्तव में कुछ भी नहीं करता।

(ग) कर्म तथा कर्मफल का ईश्वरार्पण–

कर्मयोग साधना में तिरत कर्मयोगी के लिए गीता में श्रीकृष्ण का निर्देश है कि साधक अपने समस्त कर्म और उसके फल को मुझमें अर्पित करे। यह एक विशिष्ट साधना विधान है। मनुष्य जब कर्म करने वाला कर्ता भी स्वयं को मानता है और कर्मफल का अधिकारी भी स्वयं को समझता है तब वह कर्म के घोर चक्र में फंस जाता है। किन्तु कर्म साधना करने वाले को अपने प्रत्येक कर्म ईश्वर के चरण में अर्पित कर देना चाहिए।

जैसा गीता का मत है–

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसेकर्मबन्धनैः।
सन्न्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि।।
गीता ६/ २८

इस प्रकार जिसमें समस्त कर्म मुझ भगवान को अर्पण होते हैं– सन्यास योग से युक्त चित्तवाला तू शुभाशुभ फलरूप कर्म बन्धन से मुक्त हो जायेगा और उनसे मुक्त होकर मुझको प्राप्त होगा। साधक किस प्रकार अपने कर्म को ईश्वर में अर्पित करे इस पर गीता के १/२७, ३/३० पर भी इसका निरूपण देखा जा सकता है।

(घ) यज्ञ कर्म–

कर्मयोग साधना में यज्ञ कर्म का भी समावेश किया गया है। निरन्तर रूप से स्वधर्म तथा कर्तव्य का पालन परमार्थ भाव से करते रहना भी यज्ञ है। गीता में विभिन्न प्रकार के यज्ञ की चर्चा की गयी है। जो साधक यज्ञ कर्म का सम्पादन हुए कर्म साधना में निमग्न रहता है, उसका अन्तःकरण निर्मल होता है और उसे परमात्मा की प्राप्ति होती है। इस यथार्थ को प्रकाशित करती हुई गीता कहती है–

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंङ समाचर ।।

यज्ञ के निमित्त किये जाने वाले कर्मों से अतिरिक्त दूसरे कर्मों में लगा हुआ ही यह मनुष्य समुदाय कर्मों से बँधता है। इसलिये हे अर्जुन तू आसक्ति से रहित होकर उस यज्ञ के निमित्त ही भलीभाँति कर्तव्य कर्म कर स्वधर्म पालन, कर्त्तव्य सम्पादन, विहित कर्म अपने गुण, कर्म और स्वभाव के अनुरूप शास्त्र विहित कर्तव्य कर्म तथा स्वधर्म का अनवरत पालन भी कर्मयोग साधना है। ऐसे कर्मों का परिणाम भी अन्ततः साधक को योगमार्ग में प्रेरित करते हैं किस व्यक्ति का क्या कर्तव्य तथा स्वधर्म है इसका निर्धारण गीता तथा अन्य शास्त्रों में वर्ण व्यवस्था के रूपमें उपलब्ध हैं। कर्त्तव्य कर्म किस प्रकार किया जाए गीता का उद्घोष है–

"तू शास्त्रविहित कर्तव्य कर्म कर, क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है तथा कर्म न करने से तेरे शरीर निर्वाह भी नहीं सिद्ध होगा।" गीता में स्वधर्म के पालन को योग साधना का एक अंग बताती है, कहती है–

श्रेयास्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।।

अच्छी प्रकार आचरण में लाये हुए दूसरे के धर्म से ग्रहणरहित भी अपना धर्म अति उत्तम है। अपने धर्म में तो मरना भी कल्याण कारक है और दूसरे का धर्म भय को देने वाला है।

3.10 कर्मयोग की फलश्रुतियाँ

जिस प्रकार कर्म का कोई न कोई फल होता है उसी प्रकार कर्मयोग साधना का भी सुनिश्चित परिणाम होता है जो साधक अपने प्रत्येक कर्म को परिष्कृत कर दिव्य,अनासक्त, निष्काम बनता है उसका परिणाम चित्त शुद्धि के रूप में उसे हस्तगत होता है। इससे उसका कर्म बंधन छूट जाता है। अन्ततः कर्मयोग की निरंतर साधना उसे परमात्मा प्राप्ति तक पहुँचाती है। कर्मयोग की इन फलश्रुतियों की चर्चा निम्नानुसार की जा सकती है–

क. कर्म बन्धन से मुक्ति–

कर्मयोग की साधना जब परिपक्व हो जाती है फलीभूत होने लगती हैं। तो, उसके परिणाम स्वरूप साधक कर्म बन्धन से मुक्त हो जाता है। कर्मयोगी को किसी प्रकार के कर्म नही बाँधते। वह सभी प्रकार के कर्म बंधन से छूट जाता है। वह सब कुछ करते हुए भी कुछ नहीं करता। कर्मयोग के इस परिणाम पर गीता कहती है–

योगसन्न्यस्तकर्माणं ज्ञानसछिन्नसंशयम्।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय।।
गीता ४/४१

हे धनज्जय। जिसने कर्मयोग की विधि से समस्त कर्मों का परमात्मा में अर्पण कर दिया है और जिसमे विवेक द्वारा समस्त संशयों का नाश कर दिया है, ऐसे वश में किये हुए अन्तः करण वाले पुरूष को कर्म नहीं बाँधते।

ख. परमात्मा की प्राप्ति –

कर्मयोग साधना का दूसरा परिणाम है परमात्मा की प्राप्ति कर्मयोग साधना का दूसरा परिणाम है परमात्मा की प्राप्ति कर्मयोग साधना से साधक का चित्त निर्मल होने लगता है। चित्त निर्मल होने पर वह अन्तः परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। गीता का संदेश है कि निरंतर निरासक्त होकर कर्म करने से मनुष्य परमात्मा को प्राप्त कर लेता है।

ग.सच्चिदानन्द की प्राप्ति–

सच्चिदानन्द की प्राप्ति कर्मयोग करने वाले के लिए एक सुनिश्चित परिणाम है। सच्चिदानन्द अर्थात् सबसे उत्तम आनन्द दिव्य परम आनन्द की स्थिति। इस स्थिति में साधक सभी विषयों से निवृत्त होकर केवल परमात्म रस सच्चिदानन्द में लीन हो जाता है।

सर्वकर्माणि मनसा सन्यस्यास्ते सुखंवशी नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥

गीता ५/१३

अन्तःकरण को वश में करने वाला ऐसा पुरूष न करता हुआ और न करवाता हुआ ही नव द्वारों वाले शरीर रूप घर में सब कर्मों को मन से त्यागकर आनन्द पूर्वक सच्चिदानन्द परमात्मा के स्वरूप में स्थित रहता है।

घ. जन्मरूप भवबन्धन से मुक्ति –

कर्मयोगी साधक अन्ततः बार बार जन्म मरण रूप चक्र से भी उन्मुक्त हो जाता है। उसे अपने कर्मों के परिणाम स्वरूप फिर जन्म लेना और मरना नहीं पड़ता। वह परम पद को प्राप्त करके सदा आनन्द में लीन रहता है। जैसा कि गीता में कहा है–

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ता पदं गच्छन्त्यनामयम् ।।

समबुद्धि से युक्त ज्ञानीजन कर्मों से उत्पन्न होने वाले फल को त्यागकर जन्मरूप से युक्त हो निर्विकार परमपद को प्राप्त हो जाते है।

3.11 मंत्र योग

मंत्र विद्या अति गहन एवं गूढ रहस्यों से भरपूर है, मन्त्र एक ऐसा सूक्ष्म एवं महत्वपूर्ण तत्व है जिससे स्थूल पर नियन्त्रण किया जाता है। मन्त्र में ही पिण्ड और ब्रह्माण्ड को देखने की अद्वितीय शक्ति है। प्रकृति को वश में करने की भी अपूर्वशक्ति मन्त्र में विराजती है। संसार के दुःखों से मुक्ति पाने के लिए मन्त्र ही सुलभ, सुगम और सर्वोत्तम साधन है। योग को प्रकार, भेद, सूचक लगाकर अमूक योग कहा जाता है, जैसे कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, योग, ध्यानयोग, लययोग मन्त्रयोग आदि अर्थात जिस–जिस उपाय से चित्त के स्वरूप के साथ योग होता है, उसको योग कहते है। मंत्र योग अपने आप में ही व्यापक है मंत्रों के द्वारा यज्ञ किया जाता है, ऋषिमुनि मंत्रों के द्वारा ही देवताओं का आवाहन करते थे, प्राचीन काल से ही मानव मंत्रों के द्वारा साधना करता आया है।

3.12 मंत्र का अर्थ

मन्त्र का सामान्य अर्थ ध्वनि कम्पन से है

मननात् जायते इति मंत्र।

योग उपनिषदों में मंत्र योग का पांचवा स्थान है। मन को विखराब से रोकना ही किसी भी योग विधि का उद्देश्य होता है। मंत्रों के उपयोग की प्रक्रिया को जपयोग कहा जाता है। मंत्र एक ध्वनि तरंग है जिसमें अद्भुत शक्ति है, जो सूक्ष्म में एक तरंग पैदा करता है। मंत्र ध्वनि कंपन है जिसे 50 ध्वनियों में विभक्त किया गया है। मन एक से दूसरी वस्तु की ओर भागता है, मनोरंजन चाहता है स्वार्थपूर्ण इच्छाओं आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए प्रयास करता है। मन को इन प्राकृतिक गुणों इच्छाओं तथा अंहकार से मुक्त करना ही मन्त्र का उद्देश्य है।

मन्त्रों का अर्थ एवं स्वरूप–

मंत्र शब्द श्मनश धातु से बना है, जिसका अर्थ है सोचना. अर्थात विचार में निर्माण की क्षमता निहित है। विचार मन की क्रिया है और मन की भाँति एक शक्ति है सारी सृष्टि में मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जिसमें विचार शक्ति है, मनन शक्ति है।

मंत्र दो शब्दों से मिलकर बना है मन एवं त्र अर्थात् जो मन का त्राण करे वही मंत्र है। महर्षि पतंजलि मंत्रयोग के बारे में कहते है कि उस परमात्मा का ध्यान प्रणव (ॐ) नाम से करों पातंजलयोग सूत्र के अनुसार–

निरन्तर अभ्यास के सांसारिक समस्त विषयों से चित्त वृत्तियों को परावृतन्त प्रणव– व्यसाहति पूर्वक गुरूपदिष्ट मंत्र का अनन्य एवं एकाग्र चित्त में जप करते हुए मंत्र के देवता अर्थात् ध्येय का सतत् ध्यान करना तथा अन्त में ध्येय (परमात्मा) रूप हो जाना मन्त्रयोग का प्रमुख उद्देश्य है।

3.13 परिभाषा

मंत्रों का वर्णन वेदों, उपनिषदों, स्मृतियों में भी हुआ है। मंत्रयोग के बारे में बहुत सारे ऋषियों विद्वानों ने बहुत सारी परिभाषाएँ लिखी है।

1) पंतजलि के अनुसार– "तस्य वाचक प्रणवः" अर्थात उस ईश्वर का वाचक (नाम) 'प्रणव' ओमकार है अर्थात प्रणव (ॐ) ही सब मंत्रों का श्रेष्ठ शिरोमणि मंत्र है, इसी मंत्र का हमें बार–बार मनन करना यह एक विराट शक्ति है। ॐ शिव संहिता के अनुसार–

मंत्रयोगाश्चौव लभयोगस्तृतीयकः।
चतुर्थो राजयोग स्थान दिद्याभाववणितः।।
(हियमहिला 5/11)

मंत्रयोग, ज्ञानयोग लययोग और राजयोग योग शास्त्र में इन चार प्रकार के योग का उल्लेख इसमें सबसे पहले मंत्रयोग का वर्ण है। मंत्रयोग सबसे सरल साधना है, राजयोग, हठयोग, लययोग आदि का स्थान बाद में है।

महर्षि व्यास के अनुसार–

इस वाच्य रूप में ईश्वर का वाचक रूप प्रणव के साथ नित्य सम्बन्ध में है ईश्वर का संकेत तो पहले से नित्य है यह प्रणव शब्द उस वाच्य, वाचक सम्बन्ध रूप अर्थ को ही प्रकाशित करता है (व्यास स्वामी विवेकानन्द जी मंत्र में ऊँ जाप से साधक के अन्दर जो आध्यात्मिक संस्कार है –
उन्हें विशेष रूप से उद्विप्त करने में यह प्रधान सहायक है

गवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि–

'यज्ञानां जपयसोऽस्मि'

यज्ञों में मै जप यज्ञ हूँ अतः मंत्र जप भी एक प्रकार से यज्ञ ही है द्य (10/25).

आचार्य श्रीराम शर्मा के अनुसार–

ऊँकार के जप और इसके चिन्तन को योग में सर्वप्रमुख और सर्वश्रेष्ठ साधना कहा गया है। इसके जप और चिन्तन से चित्त की चंचलता दूर हो जाती है चित्त को चारों और से हटाकर परमात्मा में लगा देने को भावना कहते है और यही मंत्र की स्थिति है।

योग विज्ञान के अनुसार–

"मन्त्र जपोन्मनायलों मन्त्रयोगः"

अर्थात मंत्रयोग साधना के द्वारा जो मन का इस देव में लय हो जाना है वहीं मंत्रयोग है।

श्मननात् त्रायेते यस्तु स मंत्र परिकीर्तितः।

अर्थात इष्टदेव के मन्त्र का जप करते हुए मन से उसका स्मरण चिन्तन तथा ध्यान किया जाता है। और वह दर्शन देकर हमें भवसागर से पार कर दें तो वहीं मंत्र योग है। ऋषियों मुनियों ने मंत्र के बारे में कहा है कि मंत्र में जितने अक्षर होते है उतने ही लाख मंत्र का अनुष्ठान करना होता है, ऐसा करने पर ही मंत्र सिद्धि होती है, और फिर मंत्र जप का फल मिलता है।

3.14 मंत्र के घटक

प्रत्येक मंत्र के विभिन्न घटक होते हैं जो हमारे शरीर पर एक निश्चित प्रभाव डालते हैं। इनमें निम्नांकित तीन घटक प्रमुख हैं जिनकी संलग्नता प्रत्येक मंत्र के साथ होती है 1. उच्चारण के लिये और 3. ताल इन तीन घटकों के माध्यम से मंत्र ध्वनि स्पंदनों के एक विशिष्ट स्वरूप का सृजन करता है, जिससे चेतना के स्वभाव में परिवर्तन संभव हो पाता है। मंत्रोच्चारण के समय उपयोग किए गए विभिन्न स्वर एवं स्वराघात शरीर के विभिन्न क्षेत्रों की ऊर्जा को गतिमान करने की क्षमता रखते हैं यद्यपि ध्वनि की उत्पत्ति कण्ठ से होती है तथापि विभिन्न स्वरों की उत्पत्ति में शरीर का क्षेत्र जैस उदर प्रदेश, हृदय क्षेत्र आदि की संलग्नता होती है। मंत्रोच्चारण द्वारा मन को शांत निश्चल बनाया जाता है। यह निश्चलता एवं स्थिरता शारीरिक एवं भावनात्मक ऊर्जा में आए बदलाव के कारण आती है। मंत्रोच्चारण के लय एवं ताल का हमारी भावना, शरीर एवं मन पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। मंत्रों की ताल और ।उप– आवृत्ति हमारे श्वसन एवं हृदय की गति को प्रभावित करती है। यही कारण है कि अलग–अलग मंत्रा के उच्चारण का हमारे शरीर पर एक विशिष्ट प्रभाव

पड़ता है। हमारी मनोदशा भावना एवं विचार में एक स्पष्ट परिवर्तन का अनुभव होता है। यह परिवर्तन वस्तुतः हमारी ऊर्जा क्षेत्र में हुए परिवर्तन का अनुभव होता है। शरीर के आंतरिक वातावरण में हुए परिवर्तन से ऊर्जा एवं चेतना उच्चगामी बनती हैं और व्यक्ति चेतना के उच्चतर आयामों के सम्पर्क में आता है।

मंत्र जाप का अभ्यास प्रत्याहार की प्रक्रिया को सहज बनाने का एक महवपूर्ण साधन है, जिसके माध्यम से मन को इन्द्रियादि जगत के अनुभवों से निवृत्त कर चेतना के उच्च आयामों के अनुभव के लिए उन्मुख किया जाता है, इस अवस्था में मन को आत्मन की सनातनता को बोध होता है और मन इसके आध्यात्मिक स्पंदनों के साथ स्पंदित होता है।

3.15 मंत्र जप क्यों करें

मंत्रजप करने से ध्वनि तरमें पैदा होती है, जिनका प्रभाव हमारे शरीर के अंगों पर पड़ता है। अब यह कहा जाता है कि ध्वनि तो दूसरे शब्दों की भी होती है फिर मंत्र ही क्यों जपें ? मंत्रो को अपीपेय कहा गया है क्योंकि इनकी उत्पत्ति किसी पुरूष ने नहीं की है मंत्रों का वर्णन वेदो में है वेद ऋषियों द्वारा लिखे गए है। ऋषियों ने समाधि की उच्च अवस्था में पहुंचकर जो कुछ अनुभव किया उसे वेदों में लिखा है और वही मंत्र हुए। मंत्रो में बड़ी शक्ति है। जागृत मंत्र में इतनी शक्ति होती है कि जप मात्र से शीघ्र ही अभीष्ट सिद्धि मिलने लग जाती है देवर्षि नारद, रुव, प्रहलाद रत्नाकर, हरीशचन्द्र, राजा सुरथ, मार्कण्डेय आदि महान साधकों ने देव–दर्शन तथा ईश–दर्शन इसी रूप में किये है।

केवल प्राचीन काल के ऋषिमुनियों को ही परमेश्वर के प्रत्यक्ष दर्शन हुए हो ऐसा नहीं है, तीन काल के कितने ही साधकों को अपने–अपने इष्ट के मदन सरस्वती यास तुलसीदास आदि ने मंत्रा के द्वारा महर्षि पद तक प्राप्त किया था जो आदि कवि वाल्मीकि के नाम से प्रसिद्ध हुए, अतः यह मंत्रजप या मंत्रयोग साधना का ही चमत्कार है ।

3.16 मंत्रजप के प्रकार–

मंत्रजप के अनेक प्रकार है उन सब को समझ ले तो उपयोग में ही सब साधन आ जाते है। परमात्मार्थ साधन में कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग और राजयोग आते है। मुख्य रूप मंत्र जप 4 प्रकार के होते

1.वाचिक जप (सार्वभौमिक अप) –

2. मानसिक जप

3 अंश जप

4.अजपा जप

क. वाचिक जप–

इस जप का उच्चारण जोर से होता है जो दूसरों को भी सुनाई पड़ता है और दूर–दूर तक लोग आसानी से सुन सकते है ऐसा जप (सार्वभौमिक) वाचिक जप कहलाता है। बहुत से लोगो के मन में यह विचार है कि यह जप निम्न कोटि का है जिससे कि कुछ लाभ नहीं होता किन्तु विचार और अनुभव से वह कहा जा सकता है, कि यह जप बहुत फायदे मंद है। विधि यज्ञ की अपेक्षा वाचिक जप . दूसगुना श्रेष्ठ है श्मनुश महाराज ने इस जप के बारे में कहा है कि योगी के लिए पहले यही जप श्सुगमश होता है

ख. मानसिक जप –

मानसिक जप को जप का प्राण कहा गया है. इससे साधक का मन आनन्दमय हो जाता है। इसमे मंत्र का उच्चारण नहीं होता, साधक के मन में ही यह जप चलता रहता है। मनु महाराज ने कहा है यह जप सार्वभौमिक जप से हजार गुणा श्रेष्ठ है। नादानुसंधान के साथ करने से वह जप बहुत श्रेष्ठ होता है।

ग. उपांशु जप–

वाचिक जप के बाद उपांशु जप मुख्य होता है इस जूप में होटू हिलाते है और मुंह में ही उच्चारण होता है इस जप को स्वयं ही सुना जाता है इसमें पास बैठे व्यक्ति को यह मंत्र नहीं सुनाई पड़ता है इस जप से एकाग्रता बढ़ती है। वृत्तियाँ अन्तर्मुखी होने लगती है। इस मंत्र का प्रत्येक उच्चारण मस्तिष्क पर कुछ असर सा करता मालूम पड़ता है। इसके अभ्यास से स्थिरता आ जाती है। ष्मनष् कहते है कि यह जप सार्वभौमिकता से सौ गुना श्रेष्ठ है।.

घ. अजपा जप–

जब हम स्थिर मन से किसी मंत्र का जप करते है तो एकाग्रता की स्थिति प्राप्त होती है, मन बुद्धि, चित्त और अहंकार को रोककर स्थिरता प्रदान करता है. इस जप के लिए माला का कोई काम नहीं. यह बिना जप किए अपने आप ही जप होता रहे, तो वही अजपा जप है अर्थात् उठते–बैठते, खाते–पीते, सोते–जागते, चलते–फिरते चौबिसों घंटो श्वास–प्रश्वास के साथ जप करना। जब यह अभ्यास परिवर्तन बन जाता है तो यह एक प्रकार की सहज अवस्था बन जाती है और बिना प्रयास के। स्वतः प्रश्वास के साथ–साथ जप भी होने लगता है। इस तरह से नित्य प्रति अजपा जप मंत्र का दीर्घकाल तक जप करने से एक दिन अवश्य ब्रह्मभाव का उदय हो जाता है और साधक कैवल्य मोक्ष को प्राप्त करता है।

3.17 मंत्र जप के अंग

मंत्रजप के 16 अंग बताये है

1. भक्ति, 2– शुद्धि, 3–आसन, 4– पंचागसेवन, 5– दीक्षा, 6– भाचार, 7– धारणा, 8– दिव्य संस्थिति, 9– प्राणायाम, 10– न्यास, 11– मुद्रा, 12– पूजन, 13– हवन, 14– तर्पण, 15– बलि, 16– जप, सृष्टि से परे अतीत और बुद्धि से परे वह परमात्मा है जो भक्ति से प्राप्त किया जाता है।

1. भक्तिः साधक मन्त्रजपयोगी की परमाध्य के प्रति नवविधा सगुण साधन भक्ति अथवा पराप्रेम भक्ति रूप परानुक्ति भक्ति कहलाती है। भक्ति दो प्रकार की होती है

1. गौणी भक्ति– अपरा (1) वैधि, (2) रागात्मिक भक्ति
2. भक्ति

2. शद्धि – मन्त्रजपयोगी साधक को साधना की निर्विघ्नता के लिए दिशा, स्थान, शरीर व मन की शुद्धि नितान्त अपेक्षित होती है।

1. दिक्शुद्धि में पूर्व व उत्तर दिशा तथा रात्री में उत्तर मुख्य बैठकर साधना करने से दिक शुद्धि होती है या किसी निरचित दिशा में बैठकर साधना करनी है। 2. स्थान शुद्धि– किसी प्रकार के स्थान में बैठकर साधना करनी, जैसे मन्दिर, पवित्र स्थानों, नदी सरोवर आदी।

ये स्नान भौम, वामण, आग्नेय, वापव्य दिव्य, मानस व यान्त्र ऐसे सात प्रकार के होते है, इनमें वामण (जल) स्नान विशेष प्रचलित है, खान कब और किस प्रकार से करना है।

मन शुद्धि – प्राणायाम आदि द्वारा

आसन शुद्धि–

3. आसन – किस साधना में किस प्रकार के आसन का उपयोग करना है। • मन्त्रयोगी साधक के देह की स्थिरता के लिए स्वस्तिकासन एवं पद्यमासन निहित है।

4. पंचाग सेवन अपने–अपने इष्टदेव और सम्प्रदाय के अनुसार गीता सहस्रनाम, कवच, हृदय का पाठ प्रतिदिन करने से योगी पापरहित होकर योगसिद्धि को प्राप्त होता है।

5. दीक्षा– सद्गुरू से यथाविधि मन्त्रोपदेश के ग्रहण को कहते है। साधक शिष्य की सद्गुरू पर श्रद्धा नितान्त आवश्यक होती है दीक्षा का तात्पर्य यह है कि मन्त्रो पदेश के माध्यम से सद्गुरू शिष्य को ज्ञान के रहस्यों से अवगत करता है, तथा उसके समस्त पापों को क्षीण करता है।

6. आचार – सात्विक साधक के लिए दिव्याचार, राजसिक साधक के लिए दक्षिणाचार व तामसिक साधक के लिए वामाचार निहित है।

7. धारणा– मन को किसी विशेष बिन्दु पर लगाने एवं लीन करने को धारणा कहते है। धारणा दो प्रकार की होती है।

(1) अन्तर्मुखी (2) बर्हिमुखी

अन्तर्मुखी आत्मचिन्तन प्रवण मन की एकाग्रता अर्तमुखी धारणा कहलाती है।

बहिर्मुखी – सगुण विग्रहप्रणव मन की एकाग्रता बहिर्मुखी होती है। 8. दिव्य संस्थिति जय सिद्धि के लिए मन्दिर आदि सात्विक पवित्र तथा देवता सानिध्य दिव्यदेश के रूप में नितान्त अपेक्षित होता है अतः मन्त्रयोग साधक अपनी साधना के लिए मन्दिर तीर्थस्थान आदि दिव्य देश में निवास करता है, शरीर में (16) सोलह दिव्य देश है जो कि मूर्धास्थान, हृदय, कंठ नाभि, आदि है इन स्थान पर प्राणों को संचारित कर साधना की जाती है।

9. प्राणायाम – चित्तवृति संयम, आरोग्य मन की एकाग्रता और ध्यान की सहायता के लिए प्राणायाम विधान है यह पूरक, कुम्भक रेचक तीन अंगों का होता है, इससे पिगंला का संयमन होता है जो साधक के लिए अत्यन्त अपेक्षित होता है।

10. न्यास करांगुलिन्यास, अंगन्यास आदि से शरीर एवं मन की शुद्धि होकर साधक के अंग–प्रत्यंगों में तत्सम्बद्ध देवताओं का वास होता है।

11. मुद्रा– साधक की हस्त मुद्राएँ आराध्य व सम्प्रदाय के भेद से भिन्न भिन्न होती है। मुद्राओं के प्रदर्शन से आराध्य देवता प्रसन्न होते है।

12. **पूजन–** साधक को प्रतिदिन मन्त्र जपानुष्ठान से पूर्व इष्ट आराध्य का मानसिक पूजन करके साधना प्रारम्भ करनी चाहिए।

13. हवन– हवन से इष्ट देवता की तृप्ति होकर सिद्धियों का लाभ होने के कारण साधक को इष्ट देवता के मूल मन्त्र से सोलह धृताहुतियों को प्रज्वलित अग्नि में देना नितान्त आवश्यक होता है।

14. तर्पण– अपने–अपने इष्टदेव का तर्पण करके अन्य देवी देवताओं ऋषि और पितृगणों का तर्पण करना चाहिए, तृप्ति होकर उनकी कृपा से जप साधना में सफलता प्राप्त होती है।

15. बलि– बलि तीन प्रकार की होती है–

(1) आत्मबल (2) इच्छित बदित (2) काम बलि इससे समस्त विधों की शान्ति व इष्टदेव की प्रसन्नता साधक को प्राप्ति होती है।

16. **जप–** चिन्तन, मनन करना ही जप है। जप तीन प्रकार के होते है (1) बाचिक (2) उपांशु जप (3) मानस जप बाचिक दूसरों को सुनाई देती है अतः कनिष्ठ श्रेणी का माना जाता है उपांशु केवल श्रुतिगोचर होने के कारण मध्यम कोटिका होता है।

मानस जप स्वतः को भी न सुनाई देने वाला श्रेष्ठ माना जाता है मानसिक जप से ही आराध्यध्येय के प्रति एकतान धारणा सम्भव होती है और फलतः ध्यान समाधि के लिए अनुकूल स्थिति व भूमिका का निर्माण का होता है साधक की सुविधा व अनुष्ठान के विधान के अनुसार पर्वमाला अंगुलिमाला, अक्ष, चन्दन, तुलसीमाला, आदि प्रयुक्त होती है।

3.17.1 जप के स्थूल प्रकार–

1. नित्य प्रतिदिन
2. विशेष कारक से करते है
3. काम्य किसी कामना के लिए
4. निषिद्ध केवल माला पकड़ने से
5. प्रायश्चित्त गलती सुधारने के लिए
6. अजपा जिसे जपा न जायें
7. प्रदक्षिणा परिक्रमा करना किसी मन्दिर या वृक्ष की परिक्रमा करके ।

3.18 मन्त्र भेद

पल्लव– जिस मंत्र के आदि में नाम बोलना पड़ता है उसे पल्लव मन्त्र कहते है। यह मन्त्र मारण संहारक कार्य, भूत प्रेत निवारण विशेष आदि कार्यों में प्रयुक्त होता है। कार्यों व समस्त प्रकार की पीड़ा दूर करने में प्रयोग किया जाता है। पर नाम के प्रत्येक अक्षर के साथ मंत्र सम्बन्धित हो, उसे पर कहा जाता है। इस प्रकार के मंन्त्रों का प्रयोग शान्ति कार्यों में होता है।

योजन– जिस मन्त्र के अन्त में नाम उच्चारण कर मन्त्र सम्पन्न किया जाता है उसे योजन मंत्र कहते है। यह शान्ति, पुष्टि, वंशीकरण, प्रायश्चित सम्मोहन, दीपन आदि कार्यों में प्रयुक्त होता है। स्तंभन विद्वेषन आदि कार्यो में भी इसका प्रयोग किया जाता है। रोध नाम के पहले या मध्य में या अन्त में मंत्र हो तो उसे रोध संज्ञा से पुकारा जाता है। यह सम्मोहन सम्पुट नाम से पूर्व अनुलोम तथा नाम के अन्त में विलोम मंत्र होने पर उसे सम्पुट कहते है। इस प्रकार के मंत्रों का प्रयोग कीलन स्तम्भन उच्चारन आदि में किया जाता है। विदर्भ–मंत्र के दो अक्षर, फिर नाम के दो अक्षर, फिर पुनः मन्त्र के दो अक्षर इस क्रम में युक्त मन्त्र को विदर्भ कहते है। आकर्षण, वशीकरण आदि में इसका प्रयोग होता है ।

मंत्र के अन्य भेद निम्न है

मन्त्र, स्त्रीमंत्र, नपुंसक मंत्र

सिद्ध, साध्य, सुसिद्ध, अश्मिंत्र

37 पिण्ड, कर्तरी, बीज, माला मंत्र

सात्विक, राजसिक तामसिक 5. साबर, डाबर

3.19 मंत्र जप करने की विधियाँ

श्वास–प्रश्वास की गति पर एकाग्र होकर मंत्र जप करना चाहिए, जिससे हमारा पूरा ध्यान श्वास–प्रश्वास पर लग जाता है।

प्रतीक पर एकाग्रता –

मंत्र जप करते समय किसी एक प्रतीक जैसे दीपक की लौ पर, सविता देवता का ध्यान आदि पर अपने मन को एकाग्न किया जाता है। इष्टदेव के प्रति साधक की एकाग्रता– अपने इष्ट पर अपने मन को एकाग्र करके भी जप किया जा सकता है। (योग–दर्शन) जप की दिशा जप के समय उत्तर तथा पूर्व दिशा की ओर मुँह करके बैठे। जप का उद्देश्य अवचेतन मन की गहराइयों में छिपे भय तथा इच्छाओं को विचारों को मानसिक प्रतिभूतियों के रूप में ऊपर लाना है।

3.20 मंत्र शुद्धि के उपाय

जीव (चेतना) हीन देह जैसे कोई कर्म करने में समर्थ नहीं होता है वैसे ही पुरश्चरण के बिना मंत्र भी फलप्रद या सिद्धिदायक नहीं होता है, अतः मन्त्रों का जप पुरश्चरण पूर्वक करना ही श्रेयकर है इसलिय शास्त्रों में मंत्र शुद्धि, सिद्धि के लिए उपाय भी बताए है।

भ्रामण शोधनं वश्यं पडिनं शोष पोषणे ।
हनासनं कृयात् कुत्थानं ततः सिंद्ध भवनेमनु।।

अर्थात् भ्रामण, शोधन, वशीकरण, पीड़न, शोषण, पोषण और दाहने में सात मंत्र शुद्धि के उपाय है इन उपायों के द्वारा जाग्रत किया हुआ मंत्र अवश्य ही सिद्धि देने वाला होता है। मंत्र सिद्धि के लिए यह सात नियम आदि शंकर ने दिए है और कहा कि इसका अवलम्बन करो।

3.21 मंत्रयोग का महत्त्व

मंत्रयोग का बहुत बड़ा महत्व है। मंत्रयोग की साधना कोई भी निर्भयता पूर्वक कर सकता है और शीघ्र सिद्धि भी प्राप्त कर सकता है। संसार के साधकों में से 90 प्रतिशित साधक इसी मंत्रयोग के अनुगामी है क्योंकि यह मोक्ष प्राप्ति का सबसे सरल मार्ग है जो कोई भी भावना पूर्वक कर सकता है। मंत्रजप करने से सिद्धि मिलती है। जितना जप होता है उतने ही दोष मिटते जाते है और उसी मात्रा में अन्तःकरण की शुद्धि होती जाती है। जप साधना के द्वारा साधक एक दिन नर से नारायण बन जाता है अर्थात सिद्धि प्राप्त कर लेता है।

मंत्र में बड़ी शक्ति होती है जाग्रत मंत्र में इतनी शक्ति होती है कि उसके जप मात्र से शीघ्र ही अभीष्ट सिद्धि मिलने लग जाती है। इसलिए प्राचीन काल के कितने ही ऋषि–महर्षि, योगी, ज्ञानी, तपस्वी भक्त तथा महान साधक गण इस मंत्र योग के द्वारा अपने अपने इष्ट देव का दर्शन उनसे वार्तालाप तथा वर प्राप्ति आदि किये हुए है। अतः साधक को चाहिए कि वह शीघ्र मोक्ष प्राप्ति के लिए मंत्रयोग ही करें। मंत्र सिद्धि के चार प्रधान आधार ध्वनि विज्ञान के आधार पर विनिर्मित शब्द श्रृंखला का चयन और उसका विधिवत उच्चारण साधक के संयम द्वारा प्राणशक्ति और मानसिक एकाग्रता का समावेश। उपप्रयोग में प्रयुक्त होने वाले यथार्थ वा उपकरणों की भौतिक किन्तु सुक्ष्म शक्ति, विप्रवाह, बद्धा, विश्वास एवं उच्चस्तरीय लक्ष्य दृष्टिकोण, इन चारों का जहाँ जितने अंश में समावेश होगा वहाँ उतने ही अनुपात में मन्त्र शक्ति का प्रतिफल एवं चमत्कार दिखाई पड़ेगा मंत्र विज्ञान भी अन्य विज्ञानों की तरह ही एक सुव्यवस्थित प्रक्रिया है, जिसे धैर्य एवं सावधानी के साथ अपनाना पडता है।

3.22 अभ्यास प्रश्न

सत्य/असत्य बताये

(क) कर्म का वर्णन श्रीमद् भगवद्गीता में मिलता है।

(ख) जप के समय मंत्र का उच्चारण तेज तेज करते हैं।

(ग) पुण्य कर्मों को ही निसिद्ध कर्म कहा जाता है।

(घ) मंत्र योग के द्वारा सिद्धि प्राप्त की जा सकती है।

3.23 सारांश

इस प्रकार, उपरोक्त चर्चा से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि योग के विभिन्न मार्ग योग साधकों के लिए सर्वश्रेष्ठ मार्ग है ये मार्ग न केवल योग के तीन रूपों– ज्ञान योग, कर्म योग और मंत्र योग योग के ऐसे मार्ग है जो सरल , सुगम्य और वैज्ञानिक भी है। ये मार्ग एक विज्ञान के रूप में दृष्टिगत होते है। राजयोग, हठ योग और भक्ति योग के तीन मार्गों का अनुसरण किया जा सकता है। योग साधक अपनी क्षमताओं और रुचि के अनुसार किसी भी मार्ग को चुन सके और अंततः मुक्ति प्राप्त कर सके। वर्तमान दृष्टि से यह अत्यंत लाभकारी सिद्ध होगा क्योंकि यह सद्भाव, प्रेम और निष्काम भाव का दर्शन सिखाता है। ये तीनों रास्ते एक दूसरे से अलग लग सकते हैं लेकिन वास्तविकता में ये अलग नही हैं नहीं. योग के ये तीनो मार्ग के रूप में एक दूसरे के पूरक हैं और अनंत के साथ सीमित की प्रक्रिया के माध्यम से मुक्ति के उद्देश्य को पूरा करते हैं। जिस प्रकार प्रकाश की विभिन्न किरणों का स्रोत एक ही होता है, उसी प्रकार योग के विभिन्न रूप मुक्ति के समान उद्देश्य को पूरा करते हैं जो वास्तव में एक हैं लेकिन अलग–अलग लगते हैं।

3.24 शब्दावली

निषिद्ध – रोका गया।

विहित – उचित।

प्रायश्चित – भूल सुधार के लिए किया गया कर्म।

अंतर्मुखी– भीतर की ओर जाने वाला।

परिष्कृत – सुधारा हुआ।

3.25 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सरस्वती स्वामी विज्ञानानन्द योग विज्ञान (2007) योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेति ऋषिकेश।

2. महर्षि पतंजलि योग दर्शन (2001) गीताप्रेस गोरखपुर ।

3. शिवानन्द स्वामी शिवानन्दनगर ऋषिकेश। श्रीमदभगवद्गीता (2005) द डिवाइन लाइफ सोसायटी।

4. पातंजल योग दर्शन स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती (1999) योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेति ऋषिकेष

5.योग विज्ञान स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती (2007) योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेति ऋषिकेष।

3.26 निबंधात्मक प्रश्न

1. ज्ञान योग क्या है? ज्ञान योगी के लक्षणों पर प्रकाश डालिए।
2. ज्ञान योग की अंतरंग साधना को विस्तार से समझाइए?
3. कर्म का अर्थ और परिभाषा समझाइए?
4. पतंजलि योग सूत्र एवं भगवद गीता के अनुसार कर्म के भेद बताइए?
5. मंत्र जप के भेद बताइए और मंत्र जप के नियम बताए?
6. मंत्रो के प्रकारों का सविस्तार वर्णन करें?

इकाई 04— बौद्ध दर्शन एवं जैन दर्शन में योग, वेद एवं उपनिषद में योग

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 बौद्ध दर्शन में योग का स्वरूप

4.3 चार आर्य सत्य

4.4 दुःख निरोध गामिनी प्रतिपत

4.5 बोद्ध दर्शन के अनुसार शील गुण विवेचन

4.6 आसन प्राणायाम निरुपण

4.7 प्रत्याहार धारणा ध्यान एवं समाधि निरुपण

4.8 जैन दर्शन में योग का स्वरूप

4.9 जैन दर्शन में यम—नियम निरूपण

4.10 वेद एवं उपनिषद में योग

4.10.1 वेदों में योगांगो का स्वरूप

4.10.2 वेदों में यमो का स्वरूप

4.10.3 वेदों में नियमों का स्वरूप

4.10.4 वेदों में असनों का स्वरूप

4.10.5 वेदों मे प्राणायाम का स्वरूप

4.10.6 वेदों में प्रत्याहार का स्वरूप

4.10.7 वेदों में धारणा का स्वरूप

4.10.8 वेदों में ध्यान का स्वरूप

4.10.9 वेदों में समाधि का स्वरूप

4.11 उपनिषद में योगांगों का स्वरूप

4.11.1 उपनिषदों मे यम व नियम

4.11.2 उपनिषदों मे प्राणायाम

4.11.3 उपनिषदों मे प्रत्याहार

4.11.4 उपनिषदों मे धारणा

4.11.5 उपनिषदों में ध्यान

4.11.6 उपनिषदों में समाधि

4.12 अभ्यास प्रश्न

4.13 सारांश

4.14 शब्दावली

4.15 सन्दर्भ ग्रन्थ

4.16 निबंधात्मक प्रश्न

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद–

- आप जान सकेंगे की योग अनेक धर्मों, वेदों और उपनिषदों में भी वर्णित है।
- बौद्ध दर्शन में योग के स्वरूप का जान सकोगें।
- जैन दर्शन में योग के स्वरूप का जान सकोगें।
- जैन दर्शन तथा बौद्ध दर्शन में योग का तुलनात्मक विश्लेषण कर सकोगे।
- वेदों में योग के स्वरूप को समझने में सहायता मिलेगी।
- आप जानेंगे की उपनिषद क्या है और उपनिषदों में योग की किस तरह व्याख्या की गई है।

4.1 प्रस्तावना

बौद्ध धर्म ,जैन धर्म के साथ वेद और उपनिषदों में योग के बारे में हम इस इकाई में जानेंगे। बौद्ध धर्म के संस्थापक गौतम बुद्ध का चरित नितान्त प्रख्यात है। ऐतिहासिक चिंतन के अनुसार बुद्ध धर्म का उदय जैन धर्म के अनन्तर हुआ है। बौद्ध धर्म के दो रूप ऐतिहासिक पृष्ठों में मिलते हैं। पहला शुद्ध धार्मिक रूप जिसमें आध्यात्मिक तत्त्वों के रहस्योद्घाटन को आवश्यक मानकर आचार मार्ग का जनता के कल्याण के लिए सरल रीति से प्रतिपादन किया गया है। दूसरा दार्शनिक रूप जिसमें बौद्ध तत्त्व विवेचकों ने बुद्ध की आचार शिक्षा के तह में रहने वाले सूक्ष्म सिद्धान्तों का तर्क निष्णात बुद्धि से गहरा अनुशीलन किया तथा बुद्ध धर्म की धुंधली दार्शनिक रूप रेखा को स्पष्ट कर दिखलाया गया है। भगवान बुद्ध स्वयं मार्ग का अन्वेषण कर समाधिस्थ होकर अपनी प्रज्ञा से बोधितत्त्व को प्राप्त किया। सारनाथ में कौण्डिन्य आदि पंचवर्गीय पंच भिक्षुओं के सामने अपना प्रथम उपदेश देकर इन्होंने धर्म चक्र प्रवर्तन किया। भारतवर्ष में जिस समय बौद्ध दर्शन का विकास हो रहा था उसी समय जैन दर्शन भी विकसित हो रहा था। दोनों दर्शन छठी शताब्दी में विकसित होने के कारण समकालीन दर्शन कहे जा सकते हैं। जैन मत के विकास और प्रचार का श्रेय अन्तिम तीर्थंकर महावीर को दिया जाता है। इन्होंने ने ही जैन धर्म को पुष्पित एवं पल्लवित किया। जैन मत मुख्यतः महावीर के उपदेशों पर ही आधारित है।

वेद ज्ञान व विज्ञान की एक अविचल एवं अविरल धारा है। वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। इसमें मानवीय जीवन की समस्त समस्याओं का समाधान सन्निहित है, यह मान्यता सर्वविदित है। इसलिए परमपिता परमेश्वर ने सृष्टि के प्रारम्भ में ही मानव मात्र के कल्याणार्थ चार तत्त्ववेत्ता ऋषियों (अग्नि, वायु, आदित्य और

अंगिरा) के हृदय में क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद का ज्ञान प्रकाशित कर दिया था। यही वेद ज्ञान अनादि काल से गुरु–शिष्य के माध्यम से चला आ रहा है। वेद को मूल प्रमाण मानकर मनुष्य जाति के लिए आचार–विचार एवं धर्म–कर्म की व्यवस्था की गई है। वेदोऽखिलोधर्ममूलम अर्थात् सभी धर्मों का मूल वेद ही है। वेद चार हैं– ऋग्वेद में ज्ञान काण्ड, यजुर्वेद में कर्मकाण्ड, सामवेद में उपासना काण्ड और अथर्ववेद में विज्ञान काण्ड है। वेदों में मूल रूप से सभी विद्याओं का वर्णन मिलता है। इस प्रकार उपनिषद् शब्द की परिभाषा देते हुए कह सकते हैं कि जो ज्ञान साधक के चित्त के दोषों को दूर करता हुआ उसके चित्त की गति को ब्रह्म की ओर करता है और ब्रह्म के पास स्थिर करता है अर्थात् ब्रह्म के सानिध्य में बैठाता है, वह उपनिषद् है।

प्रस्तुत इकाई में आप बौद्ध एवं जैन दर्शन में के साथ वेदो तथा उपनिषदो में योग विद्या का अध्ययन करेगें।

4.2 बौद्ध दर्शन में योग का स्वरूप

गौतम बुद्ध का चरित नितान्त प्रख्यात है । भगवान बुद्ध स्वयं मार्ग का अन्वेषण कर समाधिस्थ होकर अपनी प्रज्ञा से बोधितत्त्व को प्राप्त किया। सारनाथ में कौण्डिन्य आदि पंचवर्गीय पंच भिक्षुओं के सामने अपना प्रथम उपदेश देकर इन्होंने धर्म चक्र प्रवर्तन किया। गौतम बुद्ध ने अपना सम्पूर्ण उपदेश जनसाधारण को मागधी भाषा में दिया। गौतम बुद्ध के समस्त उपदेशों को त्रिपिटका में संग्रह किया गया है। त्रिपिटक को आरम्भिक बौद्ध दर्शन का मूल और प्रमाणिक आधार कहा जा सकता है त्रिपिटक शब्द का अर्थ तीन पिटारियाँ है। इस प्रकार त्रिपिटक बुद्ध शिक्षाओं की तीन पिटारियाँ हैं। सुत्तपिटक, अभिधम्मपिटक तथा विनय पिटक– ये तीन पिटकों के नाम हैं। सुपिटक में धर्म सम्बन्धी बातों की चर्चा है,
अभिधम्मपिटक में बुद्ध के दार्शनिक विचारों का संकलन है तथा विनय पिटक नीति सम्बन्धी बातों की चर्चा है। त्रिपिटक की रचना का समय तीसरी शताब्दी ई०पू० माना गया है।

बुद्ध के शिक्षाओं का ध्येय क्लेश–बहुल प्रपंच से उद्धार पाने के लिए सरल आचार–मार्ग का निर्देश करना था। कर्त्तव्य शास्त्र के विषय में बुद्ध ने इन चार आर्य सत्यों का अपनी सूक्ष्म विवेक बुद्धि से रहस्योद्घाटन किया है– (1) इस संसार में जीवन दुःखों से परिपूर्ण है (दुःखम्) (2) इन दुःखों का कारण विद्यमान है (दुःख समुदायः) (3) इन दुःखों से वास्तविक मुक्ति मिल सकती है (दुःख निरोधः) तथा (4) इस निरोध–प्राप्ति के लिए उचित उपाय भी है (दुःख निरोधगामिनीप्रतिपत्)। इन्हीं सत्यों के सम्यक् ज्ञान के कारण उन्हें सम्बोधि प्राप्त हुई। इन सत्यों का नाम आर्य सत्य है अर्थात् वह सत्य जिन्हें आर्य (श्रेष्ठ) लोग ही भलि भाँति जान सकते हैं।

ये चार आर्य सत्य प्रत्येक साधकों के लिए साधना के पूर्व बौद्ध धर्म में आवश्यक माना गया है। ये चार आर्य सत्य बौद्ध धर्म के सार हैं। बुद्ध ने चार आर्य सत्यों की महत्ता को स्वयं मज्झिम निकाय में इस प्रकार स्पष्ट किया है– इसी से (चार आर्य सत्यों से) अनासक्ति, वाशनाओं का नाश, दुःखों का अन्त, मानसिक शान्ति, ज्ञान, प्रज्ञा तथा निर्वाण सम्भव हो सकते हैं। चार आर्य सत्यों पर अत्यधिक जोर देना बुद्ध के व्यवहारवाद का प्रमाण कहा जा सकता है। अब यहाँ चार आर्य सत्यों का विवेचन किया जाता है।

4.3 चार आर्य सत्य

(क) दुःख –

बुद्ध का प्रथम आर्य सत्य दुःख है। यह संसार दुःखमय है। बुद्ध ने इस निष्कर्ष को जीवन की विभिन्न अनुभूतियों के गहरे विश्लेषण से सत्य माना है। जीवन में अनेक प्रकार के दुःख हैं। रोग, बुढ़ापा, मृत्यु, चिंता, असन्तोष, नैराश्य, शोक आदि सांसारिक दुःखों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस सिलसिले में बुद्ध के ये कथन, जो दुःखों की व्यापकता को प्रमाणित करते हैं. उल्लेखनीय है

जन्म में दुःख है, नाश में दुःख है. रोग दुःखमय है, मृत्यु दुःखमय है अप्रिय से संयोग दुःखमय है, प्रिय से वियोग दुःखमय है। संक्षेप में रोग से उत्पन्न पंचस्कन्ध दुःखमय है। यहाँ पर शरीर अनुभूति, प्रत्यक्ष इच्छा और विचार को बौद्ध दर्शन में पंच स्कन्ध माना जाता है।

(ख) दुःख समुदाय–

बुद्ध का द्वितीय आर्य सत्य दुःख समुदाय है। समुदय का अर्थ है– कारण। अतः दूसरा सत्य है– दुःख का कारण बिना कारण के कार्य उत्पन्न नहीं होता। कार्य–कारण का नियम अच्छेद्य है। दुःख का हेतु तृष्णा है। बुद्ध के शब्दों में दूसरे आर्य सत्य का वर्णन मज्झिमनिकाय में इस प्रकार है–

'हे भिक्षुगण, दुःखसमुदय दूसरा आर्य सत्य है दुःख का वास्तव हेतु तृष्णा है जो बार–बार प्राणियों को उत्पन्न करती है, विषयों के राग से युक्त है तथा उन विषयों का अभिनन्दन करने वाली है। यहाँ और वहाँ सर्वत्र अपनी तृप्ति खोजती रहती है यह तृष्णातीन प्रकार की हैकृ काम तृष्णा, भव तृष्णा तथा विभव तृष्णा । संक्षेप में दुःख समुदाय का यही स्वरूप है।'

परन्तु इस दुःख के उत्पत्ति के लिए केवल एक ही कारण नहीं है, प्रत्युक्त कारणों की एक लम्बी श्रृंखला है जो द्वादश निदान के नाम से जाना जाता है। ये द्वादश निदान हैं– (1) जरामरण, (2) जाति, (3) भव, (4) उपादान. (5) तृष्णा, (6) वेदना, (7) स्पर्श, (8) षडायतन, (9) नामरूप, (10) विज्ञान (11) संस्कार तथा

(12) अविद्या इन्हीं द्वादश निदानों का दूसरा नाम प्रतीत्यसमुत्पाद है जो बौद्ध धर्म का मौलिक सिद्धान्त माना जाता है। इसका अर्थ है– किसी वस्तु की प्राप्ति होने पर अन्य वस्तु की उत्पत्ति। इनकी संक्षिप्त व्याख्या इस प्रकार है–

जरामण का कारण है जाति, जन्म लेना, जाति का कारण है भव, अर्थात् पुनर्जन्म उत्पन्न करने वाले कर्म वसुबन्धु ने 'भव' का यही अर्थ किया है।

यद् भविष्यद्भवफलं कुरुते कर्म तद्भावः । अभिधर्मकोश 3/24 भव उत्पन्न होता है उपादान से आसक्ति से। उपादान अनेक प्रकार के होते हैं– 1 कामोपादान (स्त्री में आसक्ति), शीलोपादान (व्रतों में आसक्ति) और इनसे कहीं बढ़कर है आत्मोपादान (आत्मा को नित्य मानने में आसक्ति) आसक्ति पैदा होती है तृष्णा–इच्छा के कारण, वेदना तृष्णा की जननी है। वेदना का उद्गम स्थल है स्पर्श, स्पर्श उत्पन्न होता है षडायतन से, षडायतन का कारण है नामरूप, नाम रूप की सत्ता विज्ञान पर प्रतिष्ठित है। यह विज्ञान संस्कार से उत्पन्न होता है, जो स्वयं अविद्या का कार्य है। इस प्रकार समस्त दुःख पुंजों का आदि कारण अविद्या ही है।

(ग) दुरूख निरोध–

तृतीय आर्य–सत्य दुःख निरोध है। द्वितीय आर्य सत्य में बुद्ध ने दुःख के कारण को माना है। यदि दुःख के कारण का अन्त हो जाए तो दुःख का भी अन्त अवश्य होगा। कारण की सत्ता पर ही कार्य की सत्ता अवलम्बित रहती है। यदि कारण परम्परा का निरोध कर दिया जाए तो आप से आप कार्य का निरोध हो जाएगा। मूल कारण अविद्या का विद्या के द्वारा निरोध कर देने पर दुःख निरोध अवश्य हो जाता है। दुःख निरोध को बुद्ध ने निर्वाण कहा है।

निर्वाण के विषय में बुद्ध धर्म के सम्प्रदायों में बड़ा मतभेद है परन्तु यहाँ इतना ही समझना पर्याप्त होगा कि निर्वाण जीवनमुक्ति का ही बौद्ध संकेत है। अंगुत्तर निकाय में निर्वाण प्राप्त पुरुष की उपमा शैल से दी गई है। प्रचण्ड झंझावत पर्वत को स्थान से च्युत नहीं कर सकता, भयंकर आँधी के चलने पर भी पर्वत एकरस, अडिग, अच्युत बना रहता है। ठीक यही दशा निर्वाण प्राप्त व्यक्ति की है। सेलो यथा एकघनो वातेन म समीरति ।

एवं रूपा, रसा, सद्दा, गन्धा, फरूसा च केवला ।।
इट्ठा धम्मा अनिष्ठा च न पवेधेन्ति तादिनो ।
ठितं चित्तं विप्पमुत्तं वसं यस्सानुपस्सति ।

अंगुत्तर निकाय 3/52

रूप, रस, गन्धादि विषयों के थपेड़े उसके ऊपर लगातार पड़ते रहते हैं, परन्तु उसके शान्त चित्त को किसी प्रकार भी क्षुब्ध नहीं करते। आस्रवों से विरहित होकर वह पुरुष अखण्ड शान्ति का अनुभव करता है।

4.4 दुःख निरोधगामिनी प्रतिपदा

यह चतुर्थ आर्य सत्य है। यही दुःख निरोध तक पहुँचाने वाला मार्ग है। इस मार्ग को दुःख निरोध मार्ग कहा जाता है। इसी मार्ग को बौद्ध धर्म में आर्य अष्टांगिक मार्ग कहा गया है। ये आठ अंग हैं– (1) सम्यक ज्ञान, (2) सम्यक् संकल्प, (3) सम्यक् वचन, (4) सम्यक् कर्म, (5) सम्यक आजीव (6) सम्यक व्यायाम (7) सम्यक स्मृति तथा (8) सम्यक समाधि ।

अयमेव अरियो अट्ठगिको मग्गो संय्यथीदं सम्मादिट्ठि सम्मासंकप्पो, सम्मावाचा,
सम्माकम्मन्तो, सम्माआजीवो, सम्मावायामो, सम्मपासती, सम्मासमाधि ।।

संयुक्त निकाय – 5/2

इस अष्टांगिक मार्ग के यथार्थ सेवन से प्रज्ञा उत्पन्न होता है और निर्वाण की सद्यः प्राप्ति हो जाती है। इन आठों अंगों का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है–

(क) सम्यक् (दृष्टि) ज्ञान –

बुद्ध ने दुःख का मूल कारण अविद्या को माना है। अविद्या के फलस्वरूप मिथ्या ज्ञान (दृष्टि) का प्रादुर्भाव होता है और मिथ्याज्ञान के कारण अवास्तविक वस्तु को वास्तविक समझा जाता है जो आत्मा नहीं है, उसे आत्मा मान लेता है। मिथ्या दृष्टि का अन्त सम्यक दृष्टि (ज्ञान) से ही सम्भव है। सम्यक दृष्टि का अर्थ बुद्ध के चार आर्य सत्यों का यथार्थ ज्ञान है।

(ख) सम्यक् संकल्प

बुद्ध के चार आर्य सत्यों का जीवन में पालन करने का निश्चय ही सम्यक संकल्प है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि जो अशुभ है उसे न करने का संकल्प ही सम्यक संकल्प है।

(ग) सम्यक् वचन

सत्य और प्रिय वचनों का प्रयोग ही सम्यक वचन है मृषा वचन, पैशून्य वचन, कर्कश वचन एवं अनर्थ पूर्ण वचनों से विरति होना सम्यक वचन है।

(घ) सम्यक् कर्म –

अशुभ कर्मों के निरोधपूर्वक निर्वाण प्राप्ति में सहायक कर्मों का अनुष्ठान करना ही सम्यक कर्म है। बुद्ध के अनुसार बुरे कर्म तीन हैं– हिंसा, स्तेय, और इन्द्रिय भोग इन तीनों बुरे कर्मों का त्याग करना ही सम्यक कर्म कहा जाता है। (ड) सम्यक आजीव किसी को बिना पीड़ा पहुँचाते हुए न्यायपूर्ण रीति से जीविकोपार्जन करना ही सम्यक आजीव है।

यथापि भमरो पुटकं वण्णगन्धं अहदेयं ।

पलेति रसमादाय एवं गामे मुनि चरे ।।

धम्मपद, पुष्फवग्ग गाथा

(च) सम्यक व्यायाम– झूठी आजीविका को छोड़कर सच्ची जीविका के द्वारा शरीर का पोषण करना सम्यक् आजीव है।

सम्यक् व्यायाम इन्द्रियों पर संयम, बुरी भावनाओं को रोकने और – भावनाओं को उत्पन्न करना तथा अच्छी भावनाओं के कायम रखने का प्रयास व्यायाम हैं। –

(छ) सम्यक् स्मृति – काय, वेदना, चित्त तथा धर्म के वास्तविक स्वरूप को जानना तथा उसकी स्मृति सदा बनाये रखना सम्यक् स्मृति कहलाता है।

(ज) सम्यक् समाधि– एकाग्रचित्त द्वारा तत्त्वों की भावना ही समाधि है। समाधि से उत्पन्न प्रज्ञा द्वारा तत्वों के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर निर्वाण प्राप्त किया जा सकता है ।

बुद्ध के आर्याष्टांगिक मार्ग को शील, समाधि एवं प्रज्ञा इन तीन भागों में विभाजित किया गया है जो कि बौद्ध धर्म में शिक्षात्रय के नाम से प्रसिद्ध है। यह शिक्षात्रय, योगांगो में अष्टांग योग को प्रदर्शित करता है। अब यहाँ शिक्षात्रय का वर्णन किया गया है।

4.5 वौद्ध दर्शन के अनुसार शील गुण विवेचन

बुद्ध ने शील के द्वारा शारीरिक शोधन पर विशेष जोर दिया है। शील से समग्र सात्त्विक कर्मों का तात्पर्य है। भिक्षु तथा गृहस्थ दोनों के कतिपय साधन शील हैं जिनका पालन करना प्रत्येक बौद्ध का कर्त्तव्य है अहिंसा, अस्तेय, सत्यभाषण, ब्रह्मचर्य तथा नशा का सेवन न करना ये पंचशील कहे जाते हैं। इनकी व्यवस्था दोनों के लिए समान है, – परन्तु भिक्षुओं के लिए अन्य पांच शीलों का उपदेश है– अपराहन भोजन, मालाधारण, संगीत, सुवर्ण रजत तथा महार्घ शय्या आदि इन पाँचों वस्तुओं का त्याग। पूर्व पाँच शीलों को मिलाकर इन्हें दस शील (दश सत्कर्म) कहते हैं। गृहस्थ के लिए अपने माता, पिता, आचार्य, पत्नी, मित्र, सेवक तथा श्रमण–ब्राह्मणों का सत्कार प्रतिदिन करना चाहिए। बुरे कर्मों के अनुष्ठान से सम्पत्ति का नाश अवश्यम्भावी होता है। नशा का सेवन, चौरस्ते की सैर, समाज (नाच–गाना) का सेवन, जुआ खेलना, दुष्ट मित्रों का संग तथा आलस्य में फँसना– ये छओं सम्पत्ति के नाश के कारण हैं। बुद्ध ने गृहस्थों के लिए भी इनका निषेध आवश्यक बतलाया है।

शीलों के फल के बारे में बताते हुए कहा गया है कि शील में प्रतिष्ठित होने पर ही समाधि की भावना संभव है। शील में प्रतिष्ठा के बिना कुलपुत्रों का बौद्ध शासन में प्रवेश नहीं हो सकता।

सासने कुलपुत्तानं पतिट्ठा नत्थि यं बिना ।
आनि संसपरिच्छेद तस्स सीलस्स को वदे ।।

विसुद्धिमग्गो 1/23 –

विभिन्न ग्रन्थों में शील का अनेक प्रकार से निरुपण है। जिनमें से कुछ का परिचय यहाँ दिया जा रहा है। महावग्ग में श्रमणों हेतु दस शील का निरुपण पाणातिपातावेरमणी जीव हिंसा से विरति) हुआ है–

अदिन्नादाना वेरमणी (चोरी से विरति)
अब्रह्मचर्या वेरमणी (अब्रह्मचर्य से विरति
मुसावादा वेरमणी (मृषा वचन से विरति)
सुरामेरयमज्जपमादठाना वेरमणी (मद्यपान से विरति)
विकाल भोजना वेरमणी
नच्चगीतवादित वेरमणी
मालागन्धविलेपन वेरमणी
उच्चासयनमहासयना वेरमणी
जातरूपरजतपट्ठग्गहना वेरमणी (महावग्ग 1/47/106)

विसुद्धिमग्गों में प्रातिमोक्ष संवर शील, इन्द्रिय संवर शील, प्रत्यय सन्निश्रित शील आदि प्रमुख शील बताए गये हैं। प्रातिमोक्ष संवर शील बौद्ध शासन की आचार संहिता है । भिक्षु के लिए यह आवश्यक बताया गया है कि वह प्रातिमोक्ष से संयमित होकर विहार करे ।

4.6 आसन एवं प्राणायाम निरूपण

यह कर्मस्थान अत्यन्त सूक्ष्म है, अतः इसे कोलाहल से रहित निर्जन प्रदेश में ही सम्पन्न किया जा सकता है। आचार्य के पास जाकर कर्मस्थान योग्य स्थल को पूछकर, आचार्य द्वारा बताये गये स्थान पर ही आसन लगाना चाहिए। इस कर्मस्थान को प्रारम्भ करते हुए भिक्षु को पर्यंक बद्ध होकर शरीर के ऊपरी भाग को सीधा करके बैठना चाहिए। इस प्रकार के आसन से योगी को वेदना नहीं होती एवं चित्त सुगमतया एकाग्र हो जाता है।

तत्थ पल्लंकति समन्ततो उरूबद्धासन।
आमुजित्वा तिबन्धित्वा ।
तासु अनुप्पज्जमानासु चित्त एकग्गं होति ।।

विसुद्धिमग्गो – 8/100

चित्त की एकाग्रता होने के पश्चात् योगी स्मृतिपूर्वक दीर्घ एवं सूक्ष्म आश्वास–प्रश्वास करता है। आश्वास–प्रश्वास की दीर्घ हस्वता का काल निमित्त होती है। भिक्षु नव प्रकार से आश्वास–प्रश्वास की क्रिया को स्मृतिपूर्वक सम्पन्न करता हुआ कायानुपश्यनाश स्मृति उपस्थान की भावना करता है।

भिक्षु आश्वास–प्रश्वास के क्रम सूक्ष्म सूक्ष्मतर एवं सूक्ष्मतम आश्वास–प्रश्वास दोनों क्रियाओं को दीर्घ काल तक करता है। इस भावना के द्वारा प्रामोद्य की उत्पत्ति होती है। प्रामोद्य भावना के उत्कर्ष से क्रमपूर्वक श्वास–प्रश्वास अत्यन्त सूक्ष्मभाव को प्राप्त होते हैं।

4.7 प्रत्याहार धारणा ध्यान एवं समाधि निरूपण

भिक्षु नव प्रकार से लम्बा आश्वास–प्रश्वास कर रहा हूँ जानता हुआ कायानुपश्यना, स्मृति उपस्थान की भावना करता है। इस भावना द्वारा भिक्षु यह जान लेता है कि यह शरीर अनित्य, अशुचि एवं अनात्मभावरूप है तब इस भावना द्वारा भिक्षु कार्य में अहंभाव, ममभाव न देखकर कार्य को कायमात्र ही समझता है। यही स्मृति पूर्वक काय की अनुपश्यना की जाती है, अतः इस भावना को कायानुपश्यना स्मृति उपस्थान कहा जाता है। इस प्रकार की भावना से आश्वास–प्रश्वास इतने सूक्ष्म हो जाते हैं कि उनके अस्तित्व का भी बोध नहीं होता । फलस्वरूप काय एवं चित्त शान्त हो जाते हैं।

अनुबन्धना (आश्वास–प्रश्वास को निरन्तरता बनाये रखने का अभ्यास) के निरन्तर अभ्यास से अर्पणा हेतु चित्त एकाग्र होता है तत्पश्चात् अनुबन्धना, स्पर्श एवं स्थापना तीनों द्वारा धर्म स्थान (ध्यान) की भावना की जाती है।

इस भावना के फलस्वरूप प्रतिभाग निमित्त का उदय होता है। यह प्रतिभाग निमित्त सबका एक सदृश नहीं होता है। अट्ठ कथाओं के अनुसार यह तारे की प्रभा मार्ग मुक्ता, कर्कशस्पर्श वाला कपास का बीज, लकड़ी के हीर से निर्मित सुई, पामंग धागा, पुष्पमाला, अग्नि, मकड़ी की जाला, मेघघटा, पद्म पुष्प, रथ चक्र, चन्द्र मण्डल एवं सूर्यमण्डल के सदृश दृष्टिगोचर होता है। कुशल चित्त की एकाग्रता समाधि है।

"चित्तैकाग्रतालक्षणः समाधिः।" (बोधिचर्यावतार – 8/4)

समाधि दो प्रकार की होती है (1) रूप समाधि, (2) अरूप समाधि ।

(क) रूप समाधि

रूपवान् विषय जिस समाधि का आलम्बन होता है, उसे रूप समाधि की संज्ञा दी गयी है। रूप समाधि चार भागों में विभक्त है। प्रथम रूप समाधि में वितर्क, विचार, प्रीति, सुख एवं एकाग्रता ये ध्यानांग विद्यमान रहते हैं परन्तु इसमें वितर्क एवं विचार की प्रधानता रहती है।

कत्थ वितक्कनं वितक्को, ऊहनं ति वुत्तो होति ।

विसुद्धिमग्गो – 4/75

अभ्यास के कारण वितर्क विचारों के उपशम द्वारा चित्त की एकाग्रता से युक्त प्रीति सुख वाला द्वितीय रूप समाधि उत्पन्न होता है। इस ध्यान में प्रीति, सुख एवं एकाग्रता ये तीन अंग निहित होते हैं। द्वितीय ध्यान के सिद्ध होने के उपरान्त उसकी दृढ़ता के लिए पंचवशी का अभ्यास करके द्वितीय ध्यान को दृढ़ करने के पश्चात् द्वितीय ध्यान वितर्क एवं विचार का समीपवर्ती है एवं वहाँ चित्त स्थूल प्रीति से युक्त होने के कारण हर्षोत्फुल्ल रहता है, अतः यह ध्यान भी दुर्बल एवं स्थूल है, ऐसा विचार कर द्वितीय ध्यान से विरक्त हो तृतीय ध्यान का अनुष्ठान किया जाता है। सुख एवं एकाग्रता इस ध्यान के दो अंग है।

तृतीय ध्यान को दृढ़ करने के पश्चात् चतुर्थ ध्यान के अनुष्ठान का विधान है। साधक विचार करता है कि तृतीय समापत्ति विपक्षी प्रीति के समीप है प्रीति का सुख स्थूल है, इस प्रकार सुख से स्थूल होने से एवं अंगो के दुर्बल होने से तृतीय ध्यान त्याज्य है, ऐसा विचार कर चतुर्थ ध्यान की प्राप्ति का निश्चय कर चतुर्थ ध्यान की भावना करता है।

(ख) अरूप समाधि

चार रूप ध्यानों की प्राप्ति होने पर और ऊँची भूमि में प्रतिष्ठित होने हेतु अरूप समाधि की भावना करनी चाहिए। जब साधक चतुर्थ रूप ध्यान का अतिक्रमण कर वहाँ स्थित प्रतिभाग निमित्त में स्थित कसिण रूप के भी निवारण कर देता है तब अरूप समाधि की सिद्धि होती है। अरूप समाधि की सिद्धि से सभी प्रकार के रूपों का अतिक्रमण हो जाता है। अरूप समाधि चार प्रकार की होती है–

(1) आकाशनन्त्यायतनु (2) विज्ञानानन्त्यायतन, (3) आकिंचन्यायतन एवं (4) नैवसंज्ञानासज्ञायतन ।

4.8 जैन दर्शन में योग का स्वरूप

जैन दर्शन का साहित्य अत्यन्त विशाल है। आरम्भ में जैनों का दार्शनिक साहित्य प्राकृत भाषा में था। आगे चलकर जैनों ने संस्कृत को अपनाया जिसके फलस्वरूप जैनों का साहित्य संस्कृत में विकसित हुआ। संस्कृत में तत्त्वार्थाधिगम सूत्र अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण दार्शनिक ग्रन्थ है।

जैन धर्म में दो सम्प्रदाय स्वीकार किये गये हैं, पहला दिगम्बर और दूसरा श्वेताम्बर । जो श्वेत वस्त्रों को धारण करते हैं, उसे श्वेताम्बर सम्प्रदाय समझा जाता है तथा जो नग्न अवस्था में रहते हैं, उसे दिगम्बर सम्प्रदाय समझा जाता है। दिगम्बर सम्प्रदाय में धार्मिक नियमों की उग्रता दिखाई पड़ती है, पर श्वेताम्बर ने मानव कमजोरियों का स्मरण कर कुछ अंशों में कठोर नियमों में शिथिलता ला दी है।

जैन परम्परा का आधार प्राचीन वैदिक संस्कृति ही है तथापि निःसन्देह कहा जा सकता है कि जैनाचार्यों ने प्राचीन परम्परा का पुनरुत्थान कर, दार्शनिक वाद–विवाद में न पड़कर, श्रमण मुनि एवं निवृति मार्गी यतियों की परम्परा में मूल आधार योग के प्रचार प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। जैन सम्प्रदाय द्वारा प्रवर्तित योग विद्या का अनुसरण कर अनेक जैनाचार्यों ने निर्वाण की प्राप्ति की है। यह तथ्य प्रसिद्ध जैनाचार्य कुन्दकुन्द की कृति नियमसार के इस कथन से प्रमाणित हो जाता है– वृषभादि जिनवरेन्द्र इस प्रकार योग की उत्तम भक्ति करके निवृत्ति सुख को प्राप्त हुए हैं, इसलिए योग की उत्तम भक्ति तू भी कर।

जैन धर्म के वास्तविक एवं अन्तिम तीर्थंकर महावीर का जीवन चरित्र योग का ज्वलंत उदाहरण है। इन्होंने पूर्व जन्मों में संस्कार वश, युवावस्था में ही विरक्त होकर, गृहत्याग करके तपस्या करते हुए बारह वर्ष से अधिक समय तक मौन धारण करके, अत्यन्त कठोर तप का अनुसरण कर, योगाभ्यास द्वारा आत्मज्ञान को प्राप्त कर निर्वाण लाभ किया। इस प्रकार उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट होता है कि जैन धर्म में भी योग विद्या का स्वरूप किसी न किसी रूप में अवश्य प्राप्त होता है।

योग को परिभाषित करते हुए नियमसार में कहा है कि आत्मप्रयत्न सापेक्ष विशिष्ट जो मनोगति है, उसका ब्रह्म में संयोग होना योग कहलाता है। जो यह आत्मा, आत्मा को आत्मा के साथ निरन्तर जोड़ता है, वह मुनीश्वर निश्चय ही योग भक्ति वाला है।

आत्मप्रयत्नसापेक्षा विशिष्टा या मनोगतिः ।
तस्या ब्रह्मणि संयोगो योग इत्यभिधीयते ।।
आत्मानमात्मायं युतक्त्येव निरन्तरम् ।
स योग भक्तियुतः स्यान्निश्चयेन मनुीश्वरः ।।

नियमसारः कुन्दकुन्द प०भ०अ०गा० 137

जैन सम्प्रदाय में यह स्वीकार किया गया है कि निर्मल मन द्वारा ही आत्मस्वरूप प्रकाशित हो सकता है।

पातंजल योगदर्शन में योग का लक्षण बताते हुए कहा है। चित्त वृत्तियों का निरोध – ही योग है।

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।

(यो० सू० 1/2)

इसी को जैन सम्प्रदाय में इस प्रकार कहा है–
जिसका मन रूपी जल विषय कषाय रूपी प्रचण्ड पवन से नहीं चलायमान होता है, उसी भव्य जीव की आत्मा निर्मल होती है एवं शीघ्र प्रत्यक्ष हो जाती है।

जिसने शीघ्र ही मन को वश में करके यह आत्मा परमात्मा में नहीं मिलाया, वह योग से क्या कर सकता है? इसी बात को और स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि जिन पुरुषों ने विषय कषायों में जाता हुआ मन कर्म रूपी अंजन से रहित भगवान् में युक्त किया (वे ही मोक्ष कारण के अनुयायी हैं) यही मोक्ष का कारण है, दूसरा अन्य कोई भी तन्त्र अथवा मन्त्र नहीं है।

आशय यह है कि जो कोई भी संसारी जीव शुद्धात्मभावना से उल्टे विषयकषायों में जाते हुए मन को वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान द्वारा पीछे हटाकर निज शुद्धात्म द्रव्यमें स्थापन करता है, वही मोक्ष पाता है। दूसरा कोई मन्त्र, तन्त्रादि में चतुर होने पर भी मोक्ष का अधिकारी नहीं होता है। जेणणिरंजणि मणु धरिउ विसय कसायहिं जंतु ।

मोक्खहं कारण एत्तहु अण्णु ण तंतु ण भंतु ।।

परमात्मप्रकाशः जुइन्दु देव, अध्याय–1, दोहा 123

4.9 जैन दर्शन में यम–नियम निरुपण

जिस प्रकार अन्य योग ग्रन्थों में यम–नियम का पालन प्रथमतः अनिवार्य माना गया है, उसी प्रकार जैन – शास्त्र में भी पंचमहाव्रत का अनुष्ठान सर्वप्रथम आवश्यक रूप से अपेक्षित है। ये पंचमहाव्रत इस प्रकार हैं–
1. अंहिंसाजन्यव्रत 2. सत्यव्रत 3. अस्तेयव्रत, 4. ब्रह्मचर्यव्रत, 5 अपरिग्रहव्रत ।

तत्त्वार्थसूत्र में इन व्रतों का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि हिंसा, असत्य, चोरी, मैथुन, ब्रह्मचर्य, परिग्रह इनसे मन, वचन, काय का निवृत्त होना ही व्रत है।

हिंसानृतस्तेयाब्रह्मवर्चपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्। अब यहाँ पंच महाव्रतों का वर्णन किया जा रहा है–

तत्त्वार्थसूत्र उमास्वाति 7/1

(क) अंहिसाव्रत–

मनुष्य जानवर, पक्षी अथवा स्थावर प्राणियों को मन, वचन और काय से किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं पहुँचाना अंहिसा है। मूलाचार में इस व्रत का स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया है कि एकेन्द्रिय आदि जीव पाँच प्रकार के होते हैं। पाप भीरु को सम्यक् प्रकार से मन, वचन, कायपूर्वक सर्वत्र इन जीवों की कदापि हिंसा नहीं करनी चाहिए।

एइंदियादिपाणां पंचविहाज्जभिरुणां सम्मं ।
ते खलु ण हि सिदत्वा मणवचिकायेण सत्वत्थ ।।

मूलाचार, प० अ० गा० 289

अहिंसा व्रत का अबाध रूप से पालन हो सके इसलिए सभी व्रतों की पाँच–पाँच भावनाएं निर्धारित की गयी हैं जो इस प्रकार हैं–

- वाग्गुप्ति – वचन द्वारा विषयों में जाने वाली इन्द्रियों की प्रवृति से आत्मा की रक्षा करना।
- मन के द्वारा विषयों में जाने वाली प्रवृत्ति से आत्मा की रक्षा करना ।
- जन्तुओं की रक्षा करते हुए सावधानी पूर्वक गमन करना।
- आसनादि को देखकर सतर्कता पूर्वक ग्रहण करना ।
- देखकर किसी वस्तु को खाना या पीना ।

(ख) सत्यव्रत–

सभी कालों में सर्वदा प्रिय परिणाम में सुखद, कल्याणकारी वचन बोलना सत्य महाव्रत है। सत्यव्रत का स्वरूप निश्चित करते हुए नियमसार में उल्लिखित है कि रागद्वेषअथवा मोह से होने वाले मृषा भाषा के परिणाम को जो साधु छोड़ता है, उसी को सदा दूसरा व्रत होता है।

राणेण वा दासेण मोहेण वा मोसभांसपरिणामं ।
जो पजहादि साहु सया विदियवद होई तस्सेव ।।

नियमसारः कुन्दकुन्द व० अ० गा० –57

मूलाचार में सत्यव्रत की पांच भावनाओं का निदर्शन इस प्रकार किया गया है– 1. वाणी विवेक 2. क्रोध त्याग. 3. लोभ त्याग 4. भय त्याग 5 हास्य त्याग। अर्थात् हास्य. भय, क्रोध और लोभ से मन, वचन के द्वारा सभी काल में असत्य नहीं बोले, क्योंकि वैसा करने वाला असत्यभाषी होता है।

हस्तम्यकोहलोहो मणिवचिकायेण सव्वालम्मि ।
मोसं ण हि भासिज्जो पंचयघादी हवदि एसो ।।

मूलाचार प.ग.290

(ग) अस्तेयव्रतः–

अस्तेयव्रत का निरुपण करते हुए मूलाचार में कहा है कि ग्राम में, नगर में तथा अरण्य में जो भी स्थूल सचित्त और बहुल तथा इनसे प्रतिपक्ष सूक्ष्म अचित्त और अल्प वस्तु है उनका बिना किसी के दिये मन, वचन, कायपूर्वक त्याग करना चाहिए।

गामेणगरे रणे थूलं सचित्तं बहु सपडिवक्खं ।
तिविहेण वज्जिदव्वं अदिण्णगहणं च तण्णिचं।।

मूलाचार, प० गा० 291

अस्तेय व्रत की पाँच भावनाओं का उल्लेख तत्त्वार्थसूत्र में निम्न प्रकार किया है जो इस प्रकारहै–

- **अनुविधिग्रहयाचनाः–** सम्यक विचार करके उपयोग के लिए आवश्यक
- **अवग्रह स्थान–** अवग्रह स्थान की याचना करना अनुविचिग्रहयाचन है।
- **अभीक्ष्य अवग्रहयाचनः–** राजा, कुटुम्बादि से जो स्थान (वस्तु) मांगने में विशेष औचित्य हो, उनसे वही स्थान मांगना तथा एक बार देने के बाद मालिक ने वापिस ले लिया हो, फिर भी रोगादि के कारण विशेष आवश्यक होने पर उसके स्वामी से इस प्रकार बार–बार लेना कि उसको क्लेश न होने पाये, अभीक्ष्य अवग्रहयाचन है।
- **अवग्रह धारण–** मालिक से मांगते समय अवग्रह का परिमाण निश्चित कर कोई वस्तु ग्रहण करना अवग्रह धारण है।

- **साधर्मिक अवग्रहयाचन–** अपने से पहले दूसरे किसी समानधर्मी ने कोई वस्तु ले ली हो और उसी वस्तु को उपयोग में लाने का प्रसंग आ जाय तो उस साधर्मिक से ही याचना करना साधर्मिक अवग्रह याचन है।
- **अनुज्ञापितपान भोजन–** विधिपूर्वक अन्नपानादि लाने के बाद गुरु के समक्ष रखकर उनकी अनुज्ञापूर्वक ही उपयोग करना अनुज्ञापितपान भोजन है।

(घ) ब्रह्मचर्यव्रतः–

ब्रह्मचर्यव्रत के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए निमयसार में कहा गया है कि स्त्रियों का रूप देखकर उनके प्रति वांछाभाव की निवृत्ति अथवा मैथुन संज्ञारहित जो परिणाम है वह ब्रह्मचर्य व्रत है। ब्रह्मचर्य व्रत का स्थान साधना मार्ग में महत्त्वपूर्ण है। मूलाचार में ब्रह्मचर्य व्रत के फल का उल्लेख करते हुए कहा है कि चिरकाल तक ब्रह्मचर्य का उपासक शेषकर्म को दूर करके क्रम से विशुद्ध होता हुआ शुद्ध होकर सिद्ध गति को प्राप्त कर लेता है।

चिरउसिदवं भयारी पफोवेदून सर्व कम्म,
अणुपुवीय विसुद्धो सुद्धों सिद्धिमर्दि जादि।

मूलाचाररू वट्टकेराचार्य, प० गा० 102

(ड) अपरिग्रह :–

मूलाचार में अपरिग्रहव्रत के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है कि ग्राम, नगर, अरण्य, स्थूल सचित्त और बहुत तथा स्थूलादि से विपरीत सूक्ष्म अचित्त ऐसे अन्तरंग, बहिरंग परिग्रह को मन, वचन, काय द्वारा छोड़ देवें ।

गामं णगरं रण्णं थूलं सच्चित्तं वहु सपडिवक्खं ।
अज्झत्थ बहिरत्थं तिविहेण परिग्गहव्वजे ।।

मूलाचारः चट्टकेयराचार्य प० गा० 213

योगसार में अपरिग्रहव्रत के फल का निरुपण करते हुए कहा है कि जितेन्द्र देव का कथन है कि यदि व्रत एवं संयम से युक्त होकर जीव निर्मल आत्मा को पहचानता है तो शीघ्र ही सिद्धि सुख पाता है।

जई जिम्मल अप्पा मुणइ वय–संजमा –संजुत्तु ।
तो लहु पावइ सिद्धि सुह इड जिणणाहहं उत्तु ।।

योगसारः आचार्य जुइन्दु, दोहा 30 पृ० 366

अपरिग्रहव्रत की पांच भावनाएं निम्नलिखित है।

1. श्रोत्रेन्द्रिय के विषय शब्द के प्रति रागद्वेष रहितता।
2. चक्षुरिन्द्रिय के विषय रूप के प्रति अनासक्त भाव।
3. घ्राणेन्द्रिय के विषय गन्ध के प्रति अनासक्त भाव।
4. रसनेन्द्रिय के विषय रस के प्रति अनासक्त भाव।
5. स्पर्शनेन्द्रिय के विषय स्पर्श के प्रति अनासक्त भाव । इस प्रकार अहिंसादि ये पंचमहाव्रत को योग सम्प्रदायों में यम कहा गया है। पातंजल योग मे तो स्पष्ट रूप से यमों को सार्वभौम महाव्रत की संज्ञा दी गयी है।

4.10 वेद एवं उपनिषद में योग

वैदिक संहिताओं में योग का विस्तृत वर्णन किया गया है। वेदों में मानवीय जीवन के सर्वागीण विकास के साथ–साथ निःश्रेयस की प्राप्ति कराने वाली योग विद्या का उपदेश पदे पदे उपलब्ध है। योग–परम्परा की मान्यता है कि हिरण्यगर्भः ही योग के आदि प्रवक्ता है, अन्य कोई नहीं।

हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः ।

या० स्मृति

ऋग्वेद में इसकी पुष्टि करते हुए कहा गया है कि हे मनुष्यों तुम को योग्य है कि इस प्रसिद्ध सृष्टि के रचने से प्रथम परमेश्वर ही विद्यमान था, जीव गाढ निद्रा सुषुप्ति में लीन और जगत का कारण अत्यन्त सूक्ष्मावस्था में आकाश के समान एकरस स्थिर था। जिसने सब जगत को रच के धारण किया और जो अन्य समय में प्रलय करता है। उसी परमात्मा को उपासना के योग्य मानो।

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्यजातः पतिरेक आसीत ।

ऋग्वेद 10/121/1

इस प्रकार हिरण्यगर्भ की स्मृति वेदों में अन्यत्र भी की गयी है यह हिरण्यगर्भ परमपिता परमात्मा ही है, क्योंकि वही उत्पन्न हुए सब प्राणियों का स्वामी हो सकता है। जिसको अन्य गन्थों में भी स्वीकार किया गया है

वह हिरण्यगर्भ परमात्मा गुरुओं का भी गुरु है, वही सबसे पुरातन और आदि प्रवक्ता है महाभारत में सांख्य का प्रवक्ता महर्षि कपिल तथा योग का आदि प्रवक्ता हिरण्यगर्भ बतलाया है।

सांख्यस्य वक्ता कपिलः परमर्षिः स उच्यते ।
हिरण्य गमों योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः।।
महाभारत– 12/349/65

योग रहस्य का वर्णन करते हुए आगे कहा है कि यह अद्वितीय हिरण्यगर्भ वही है जिसकी वेद में स्तुति की गई है एवं जिसकी योगी लोग नित्य पूजा किया करते हैं, जिसे समस्त संसार का विभु कहा गया है।

हिरण्यगर्भो युतिमान् य एष छन्दसि स्तुतः ।
योगैः सम्पूज्यते नित्यं स च लोके विभुः स्मृतः ।।
महाभारत 12/342/96

इस हिरण्यगर्भ भगवान को समष्टि बुद्धि कहा है। अदभुत रामायण में तो स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यह हिरण्यगर्भ सम्पूर्ण जगत् का अंतरात्मा है।

'हिरण्यगर्भो जगदन्तरात्मा'

श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि है योगेश्वर! यह वही योग विद्या है जिसे भगवान् हिरण्यगर्भ ने कहा था।

इदं हि योगेश्वर योगनैपुणं हिरण्यगर्भो भगवान् जगाद यत्
श्रीमदभागवत 5/19/13

अतः योग का आदि प्रवक्ता हिरण्यगर्भ परमात्मा को ही कहा जा सकता है।

4.10.1 वेदों में योगांगों का स्वरूप–

वेदों के अध्ययन यह तथ्य प्रकट होता है कि पातंजल योगदर्शन की भांति अष्टांग योग का संकलित रूप वेदों में प्रतिपादित नहीं किया गया है परन्तु अथर्ववेदमन्त्र में प्रयुक्त अष्टायोगः पद का अर्थ भाष्यकार क्षेमकरणदास त्रिवेदी ने पातंजल योग में वर्णित यम–नियम आसन–प्राणायाम आदि आठ अंगों को ग्रहण किया है।

इमं यवमष्ययोगः षढ्योगेभिरचकृषुः ।
तेना ते तन्वोइरपोऽपाचीनमपत्यये ।।
अथर्ववेद 6/91/1

अन्यत्र सहिताओं में योग के अंगों के निश्चित संख्यावाची पदों का प्रयोग नहीं मिलता है। अथर्ववेद में कहा गया है कि इस संयोग वियोग करने वाले परमेश्वर को आठ प्रकार के (यम–नियमादि) योगों से और छ प्रकार के ब्राह्मणों के कर्मों से उन महात्माओं ने परिश्रम से प्राप्त किया है उसी से तेरे शरीर के पाप को विपरीत गति करके मैं हटाता हूँ। परवर्तीकाल में महर्षि पतंजलि ने वेदों में निहित योगांगों को संकलित कर योगशास्त्र में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि इन आठ अंगों को सम्मिलित किया। योगतत्त्वोपनिषद् ने अष्ट योगांगों का ही परिगणन किया है, परन्तु ध्यानबिन्दुपनिषद तथा अमृतनादोपनिषद में यम–नियम को छोड़कर शेष छह अंगों को स्वीकार किया गया है।

इमं यवमध्ययोगः पयोभिरचतुः ।

अथर्ववेद – 6/91/1

तेना ते तन्वोइरपोऽपाचीनमपत्यये ।। अन्यत्र संहिताओं में योग के अंगों के निश्चित संख्यावाची पदों का प्रयोग नहीं मिलता है। अथर्ववेद में कहा गया है कि इस संयोग वियोग करने वाले परमेश्वर को आठ प्रकार के (यम–नियमादि) योगों से और छः प्रकार के ब्राह्मणों के कर्मों से उन महात्माओं ने परिश्रम से प्राप्त किया है। उसी से तेरे शरीर के पाप को विपरीत गति करके मैं हटाता हूँ। परवर्तीकाल में महर्षि पतंजलि ने वेदों में निहित योगांगों को संकलित कर योगशास्त्र में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि इन आठ अंगों को सम्मिलित किया। योगतत्त्वोपनिषद् ने अष्ट योगांगो का ही परिगणन किया है, परन्तु ध्यानबिन्दूपनिषद् तथा अमृतनादोपनिषद् में यम–नियम को छोड़कर शेष छह अंगों को स्वीकार किया गया है।

4.10.2 वेदों में यमों का स्वरुप–

वेदों में यमों का उल्लेख किसी एक मन्त्र या सूक्त में एकत्रित नहीं मिलता है, वरन् प्रकरण के अनुसार यमों के स्वरूप का ज्ञान होता है। महर्षि पतंजलि ने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पांचों को यम कहा है।

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।

०सू० 2/30

अब यहाँ यमों की चर्चा वेदों में वर्णित पतंजलि प्रोक्त अष्टांगों का किया जा रहा है

(क) अहिंसा–

अहिंसा के सम्बन्ध में ऋग्वेद में कहा गया है कि जो अन्याय से किसी की हिंसा नहीं करते और धर्मात्माओं की वृद्धि करते हैं वे विद्वान् जन सर्वदा जीतते, धर्म में निवास करते और पुष्ट होते हैं। **मा स्रेधन्तं**

सोमिनः। (ऋग्वेद– 7/32/9) इसी प्रकार ऋग्वेद में ही अन्यत्र कहा गया है कि जो अधर्माचरण से युक्त दुष्ट, हिंसक मनुष्य है उनको धन, राज्य, श्री और उत्तम पदार्थ प्राप्त नहीं होता है, इससे सबको न्याय के आचरण से ही धन खोजना चाहिए। **न स्रेधन्तं रयिर्नशत्। (ऋग्वेद 7/32/21)** इस प्रकार जब साधक आसुरी वृत्तियों जैसे– काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या–द्वेष, अहंकार आदि विविध कष्टों से दुःखित रहता है तब इनके वशीभूत होकर मनुष्य अन्य प्राणियों को कष्ट देने के लिए सन्नद्ध होता है तो उस वृत्ति का ही नाम हिंसा है परन्तु जब साधक आसुरी वृत्तियों को प्रबल विरोधिनी सेनाओं के द्वारा दैवी वृत्तियों को जीत लेता है तो दैवी वृत्तियों के विशाल साम्राज्य में सात्त्विकता, शान्ति, श्रद्धा, प्रेम, उत्साह आदि आध्यात्मिक सुख की स्वतः स्थापना हो जाती है। इन्हीं दैवी वृत्तियों को अहिंसा कहते हैं।

यजुर्वेद कहता है योगाभिलासी उपासक अहिंसा का पालन करें, अन्य राजपुरुष आदि उनकी रक्षा करते हुए अहिंसा वृत्ति का आचरण करें। **मा हिंसीः पुरुषं जगत् । यजु0 16 / 3**

वेदों में मन, वाणी एवं शरीर तीनों से ही अहिंसा–पालन के निर्देश मिलते हैं। अथर्ववेद में कहा है कि जो व्यक्ति कठोर भाषण के द्वारा दूसरों को कष्ट पहुँचाते हैं या वाणी द्वारा द्रोह प्रकट करते हैं, वेद में उन्हें द्रोघवाचः कहा गया है। इसे हम वाचिक हिंसा कह सकते हैं।

अहिंसा का फल के बारे में सामवेदीय ऋचा में कहा गया है कि अहिंसनीय योगयज्ञ के द्वारा भक्ति रस का पान करता हुआ साधक, विश्व बन्धुत्त्व की भावना को प्राप्त कर लेता है। उसे संसार में किसी से भय नहीं रहता। साधक वेद के शब्दों में प्रार्थना करता है कि हमें अन्तरिक्ष से द्युलोक से पृथिवी लोक से आगे–पीछे से, ऊपर–नीचे से अभय प्राप्त हो।

अभयं न करत्यन्तरिक्षमभयम् ।

अथर्ववेद 19/15/5

अहिंसा सिद्ध साधक के लिए लोक–परलोक दोनों ही कल्याणकारी होते हैं।

(ख) सत्य

अहिंसा के सदृश सत्य का पालन भी मन, वचन तथा कर्म से करनीय है। वेद में सत्य के लिए ऋत शब्द का प्रयोग बहुत बार किया गया है। सत्य व्रत का अनुष्ठान करने के लिए साधक प्रतिज्ञा करता है कि हे सत्य भाषण आदि धर्मो के पालन करने और सत्य उपदेश करने वाले परमेश्वर ! मैं जो झूठ से अलग वेद विद्या प्रत्यक्ष आदि प्रमाण, सृष्टिक्रम, विद्वानों का संग श्रेष्ठ विचार तथा आत्मा की शुद्धि आदि प्रकारों से जो निर्भ्रम, सर्वहित तत्त्व अर्थात् सिद्धान्त के प्रकाश करने हारे सिद्ध हुआ, अच्छी प्रकार परीक्षा किया गया, सत्य बोलना, सत्य मानना तथा सत्य व्यवहार करना है उसका अनुष्ठान करने वा जानने और उसकी प्राप्ति की

इच्छा करता हूँ । मेरे उस सत्य व्रत को आप अच्छी प्रकार सिद्ध कीजिए जिससे कि मैं उक्त सत्य व्रत के नियम करने को समर्थ होऊँ और इसी प्रत्यक्ष सत्यव्रत के आचरण का नियम करूँगा।

सत्य के साथ प्रिय तथा मधुर वाणी का प्रयोग भी वेद में निहित है। उपासक वाणी से मधु व्यवहार के लिए कामना करता है कि मेरी वाणी के अग्रभाग पर जिह्वा मूल में – बुद्धि में मधुरता विराजमान हो मेरा घर से बाहर जाने तथा आने की क्रिया के तथा मन– साथ–साथ वाणी से सदैव मधुर, प्रिय ही बोलूँ, मेरे जीवन में मधुरता का साम्राज्य हो ।

जिह्वया अग्रे मधुमे जिह्वा मूले मधूलकम् ।

अथर्ववेद 1/34/2

जो साधक सत्य व्रत का अनुष्ठान मन, वचन और कर्म से कर लेता है, वह ब्रह्मवेत्ता के समान शान्ति प्राप्त करता है, उसके काम–क्रोध आदि दोष नष्ट हो जाते हैं।

(ग) अस्तेय

वेदमन्त्रों में अस्तेय शब्द के स्थान पर स्तेन दस्यु, वंचक आदि चौरकर्म वाचक शब्दों का प्रयोग बार–बार किया गया है। वेदों में चौरकर्म की निन्दा की गई है। इस कर्म को नीच कर्म बताते हुए अपराधी को कारागार में डालने तथा शारीरिक दण्ड देने का आदेश किया गया है। वेदों में चौर–कर्म को घृणित बताकर उससे बचने के लिए जन साधारण को उपदेश दिये हैं। ऋषि ने मनुष्य के लिए पालनीय सात मर्यादाओं (स्तेय, परस्त्रीगमन, विद्वानों की हत्या, गर्भ हत्या, सुरापान, दुष्कर्म का पुनः पुनः सेवन तथा पाप कर्म करके झूठ बोलना) का उपदेश किया है। जो इन मार्यादाओं का पालन नहीं करता वह जीवन में सब प्रकार से पतित हो जाता है

(घ) ब्रह्मचर्य

वेदों में ब्रह्मचर्य का विस्तार रूप से वर्णन मिलता है। ब्रह्मचर्य शब्द का व्यापक अर्थ है। भ्वादिगण की **ब्रृहि वृद्धौ धातु से निष्पन्न ब्रह्म** शब्द का अर्थ है– जो बढ़ा हुआ है वह ब्रह्म, ईश्वर, वेद, तप आदि। 'चर' धातु जिससे चर्य शब्द बना है जो गति एवं भक्षण अर्थवाली है। अतः ब्रह्मचर्य शब्द का अर्थ हुआ परमात्मा तथा वेद में विचरण करना और वीर्य का भक्षण अर्थात् उसे अपने अन्दर धारण करना।

ऋग्वेदीय मन्त्रों में आयु के प्रथम 24 वर्ष तक ब्रह्मचर्य धारण करने के लिए साधकों को निर्देश किया है कि वह नित्य प्रति अग्नि विद्या (अग्निहोत्र) को प्रदीप्त करे।

आदंगिराः प्रथमं दधिरे वयं इद्वाग्नयः शम्या ये शुकृत्यया ।

ऋग्वेद 1/83/4

इसी वेद में अन्यत्र कहा गया है कि जो विद्वान् नित्यप्रति निष्पक्षता से आत्मनिरीक्षण करके, दोषों का परिहार कर सद्गुणकर्मों को धारण करते हैं वही वीर्य की पूर्ण रक्षा करने में समर्थ हो सकते है।

सम्पश्यमाना अदन्नमि स्वयं पयः प्रत्नस्य रेतसो दुधानाः ।

ऋग्वेद– 3/31/10

ब्रह्मचर्य व्रत पालन के लाभ का वर्णन करते हुए यजुर्वेद में कहा गया है कि जो आयु के प्रथम चरण में ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, वे ही बल पराक्रम को प्राप्त करते हैं. तथा विद्या प्राप्ति में समर्थ होते हैं। ब्रह्मचर्य पालन से साधारण मनुष्य हो या विद्वान् सभी दीर्घायु को प्राप्त कर लेते हैं।

यो विमर्ति दावायणं हिरण्य स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः।

यजु0 34/51

ब्रह्मचर्य सेवन से परमात्म उपासना में तत्पर साधक के चेहरे पर ओज कान्ति ब्रह्मतेज प्राप्त होता है। अथर्ववेदीय मन्त्रानुसार– ष्योगी ब्रह्मचर्य, वेदाध्ययन और इन्द्रिय– दमन रूप तप से मृत्यु के कारणों को दूर कर देते हैं। परमात्मा ब्रह्मचर्यव्रती – विद्वानों को ही मुक्ति रूपी परमसुख प्रदान करता है।

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाध्नत ।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत् ।।

अथर्ववेद 11/5/19

इस प्रकार बाल्यावस्था से ही ब्रह्मचर्य का पालन स्त्री–पुरुष सभी के लिए उपयोगी है।

(ड.) अपरिग्रह

वैदिक संहिताओं में अपरिग्रह का विशद रूप में वर्णन मिलता है। यजुर्वेद के मन्त्रानुसार हे मनुष्य! तू जो प्रकृति से लेकर पृथिवीपर्यन्त सब प्राप्त होने योग्य सृष्टि में चरप्राणीमात्र सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त सर्वशक्तिमान् परमात्मा से आच्छादन करने योग्य हैं उस त्याग किये हुए जगत् से पदार्थों के भोगने का अनुभव कर, किन्तु किसी के भी वस्तुमात्र की मत अभिलाषा कर।

तेन त्यक्तेन भुंजिया । (यजुर्वेद 40/1)

यहाँ पदार्थों का त्यागपूर्वक भोग अपरिग्रह को प्रदर्शित करता है।

अथर्ववेद में कहा गया है कि मनुष्य सैकड़ों हाथों से कर्मकुशल होकर धन धान्य एकत्र करे और हजारों हाथों से धन को उत्तम कर्मों में व्यय करके सदैव उन्नति करता रहे। **शतहस्त समाहर सहस्त्र हस्त संकिर।'** **(अथ0 3/24/5)** अर्थात् यहाँ पर धन का दान करने का निर्देश है जिसके पास विद्या है वह विद्या का दान

करे और कहे कि हे सोम स्वरूप अखण्डनीय परमेश्वर! हम उत्तम बल पराक्रम से युक्त विद्या धन के देने वाले होवें ।

अच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्य्यस्य रायस्पोषस्य ददितारः स्याम । यजु0 7/14

इस प्रकार वेदों में दान की महिमा विशेष रूप से प्रदर्शित है। दान की महिमा को जानकर साधक कहता है कि हे इन्द्र! मेरे अन्दर कभी अदानशीलता का भाव न ठहरे, न हमारे बीच में कोई अदानी कृपण निवास करे। अदानियों को मैं समाप्त कर दूँ।

4.10.3 वेदो में नियमों का स्वरूप–

(क) शौच

वेदों में शौच शब्द का अर्थ भिन्न–भिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। यथा– पूताः, पावन, पवित्र, पवमान, शुचिः शुन्धामि आदि । साधना क्षेत्र में पवित्रता की महती आवश्यकता है। सामवेद में साधकों को शुद्धि हेतु प्रेरित किया गया है और कहा गया है कि हे उपासको ! तुम अपने–आपको पवित्र करो, जिससे तुम बल की प्राप्ति तथा प्रगति के लिए, प्रगति एवं बलों के दाता परम पिता परमेश्वर की सर्वभूत– मैत्री के लिए और अपने पापों का स्वयं निवारण करने के लिए शान्तिदायक, आनन्दस्वरूप परमेश्वर को प्राप्त कर सको।

पुनाता दक्षसाधनं यथा शर्धाय गीतये ।
यथा मित्राय वरुणाय शान्तमम् ।
1159 सामवेद

ऋग्वेद में शुद्धि का वर्णन करते हुए कहा गया है– हे योगयज्ञ के लिए तत्पर साधकों! आप लोग मृत्यु के साधारण पद को हटाते हुए, लम्बी आयु को धारण करते हुए. सन्तान और धन से शुद्ध और पवित्र होओ।

मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।
आप्यायमानाः प्रजया धनेन शुद्धाः पूता भवत यज्ञिया। ।
ऋग्वेद 10/18/2

शुद्धि को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है– एक बाह्य शुद्धि और आन्तरिक शुद्धि । शारीरादि की शुद्धि, बाह्य शुद्धि है तथा वाचनिक एवं मानसिक शुद्धि को आन्तरिक शुद्धि कह सकते हैं। शारीरिक शुद्धि के बारे में यजुर्वेदीय मंत्र में कहा गया है कि हे मनुष्यो ! शरीर के सब सुखों को प्राप्त करने, प्राणों को धारण कराने तथा माता के समान पालन के हेतु जल है उनसे सब प्रकार पवित्र होके इन को शोधकर मनुष्यों को

नित्य सेवन करना चाहिए जिससे सुन्दर वर्ण, रोगरहित शरीर को सम्पादन कर निरन्तर प्रयत्न के साथ धर्म का अनुष्ठान कर पुरुषार्थ से आनन्द भोगना चाहिए।

आपो अस्मान् मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु। यजुर्वेद 4/2

(ख) संतोष

वेदों में सन्तोष पद प्राप्त नहीं होता है परन्तु सन्तोषवाची तोशमानाः, तुषयन्ती, तोशतमाः आदि पद प्राप्त होते हैं। यजुर्वेद के चालिसवाँ अध्याय का पहला मन्त्र इसी पद को उद्घोषित करता है और कहा गया है कि सन्तोष बुद्धि उत्पन्न करने के लिए त्यागपूर्वक भोग करो, किसी पराये धन की लालसा मत करो वेद का यह आदेश पालन के योग्य है।

तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विद्वनम् ।

ऋग्वेद में कहा है कि हे मनुष्य! तू जुआ मत खेल, कृषि आदि परिश्रमसाध्य कर्मों को कर। इस प्रकार जो धन–अन्न मिलता है उसको बहुत मानता हुआ, इसी में सन्तोष कर और प्रसन्न रह।

अक्षैर्मा दिव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहुमन्यमानः ।

ऋग्वेद 10/34/13

संतोष का फल के बारे मनुस्मृति में कहा है कि तृष्णा, लोभ और लालच का त्याग कर संतोष से प्रसन्नतापूर्वक जीवन निर्वाह करना ही सुख है तथा इससे विपरीत आचरण करना दुःख है।

सन्तोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत् ।
सन्तोष मूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः ।।

मनु0 4/12

महर्षि पतंजलि ने संतोष का फल उत्तम सुख की प्राप्ति बतलाया है

सन्तोषादनुत्तम सुखलाभः।

(ग) तप –

वैदिक संहिताओं में श्तपश का वर्णन विस्तृत रूप में किया गया है। ऋग्वेद में कहा है कि– हे तपस्वी । दुष्ट जनों के अग्नि के सदृश दाहकर्त्ता आप भेद को प्राप्त शत्रुओं को सन्तापयुक्त तथा अहिंसायुक्त श्रेष्ठजन की प्रशंसा करो हे दुष्ट पुरुषों के दाहकारी उत्तम गुणों में निवासी ज्ञानवान वा बोधकारक आप दरिद्र दशायुक्त पुरुषों को सचेत कीजिए ।

तपोष्वग्ने अन्तराँ अमित्रान् तपा शंसमररूषः परस्य ।

ऋग्वेद – 3/18/2

अन्तःकरण तथा आत्मा को तप से तपाने की शिक्षा देते हुए ऋग्वेद में कहा गया हैं कि हे विद्वान् तपस्वी! देह का जो भाग अज अर्थात् नित्य आत्मा है, उसको ज्ञान और विवेक रूप तप से तपा तेरा तेज उसे तपावे, तेरा कल्याणमय रूप उसे तपाकर, सुकृतवाले लोकों को प्राप्त कराये।

अजो भागस्तपसा तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः ।
यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकम् ।।

ऋग्वेद 10/16/4

अथर्ववेद में कहा है कि हे विद्वान् योगी! तुझे पूजायोग्य विवेक ज्ञान ने ऊँचा चढ़ाया है। शुद्धाचरण तथा अतिशय तप रूप ब्रह्मचर्यादि पालन से इस ज्ञान को सर्वत्र फैला। उत्तम ऋषिजन भी इसी प्रकार मिलकर इस योग यज्ञ को ऋतुओं के साथ उपकार में लाए। इस प्रकार मानसिक तथा बौद्धिक तप के लिए संहिताओं में विशेष प्रेरणाएँ उपलब्ध है। गीता में मानसिक तप का वर्णन करते हुए कहा है कि मन और बुद्धि को शान्त – स्वच्छ – पवित्र रखना, प्रसन्न रहना, मौन रहना, अन्तःकरण को वश में रखना तथा भाव संशुद्धि करने को मानस तप कहते हैं।

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतपस्ते मानसमुच्यते ।।

गीता 17/16

सामवेदानुसार सब प्रकार के तपों से तृप्त तपस्वी ही परमात्मा को प्राप्त करने का सामर्थ्य रखता है एवं तप से आत्मा प्रसन्न होती है। परमात्मा तपस्वी एवं पुरुषार्थी जनों की रक्षा तथा प्रेरणा करता है।

कुष्ठः को वामश्विना तपानो देवा मर्त्यः ।
नता वामश्मया क्षपमाणोशुनेत्थमु आद्वन्यथा ।।

सामवेद 305

इस प्रकार तप का महत्व वेदों में विविध स्वरूपों में वर्णित है। अतः उपासकों के लिए तप का अनुष्ठान अपरिहार्य है।

(घ) स्वाध्याय

व्यास ने मोक्षशास्त्रों का अध्ययन तथा प्रणव जप को स्वाध्याय कहा है।

स्वाध्यायो मोक्षशास्त्राणामध्ययनं प्रणवजपो वा ।

स्वाध्याय का प्रथम साधन दैवी वाणी वेद है। वेदवाणी को पढ़कर धीर पुरुष अपनी वाणी को बड़ी कठिनता से चलनी से छाने हुए सत्तुओं के समान पवित्र करते हैं और मन से पवित्र की गयी शुद्ध वाणी को बोलते हैं। मित्रभाव से शब्दार्थ सम्बन्ध को जानने वाले योगीजनों की वाणी में कल्याणमयी लक्ष्मी निहित होती है।

वेदो में ओ3म पद का पवित्र जाप करने का निर्देश दिया गया है और कहा है कि हे कर्मशील मानव! तू अन्य कर्म करते हुए भी परमात्मा के प्रमुख नाम ओ3म का स्मरण किया कर ।

ओ3म क्रतो स्मर।

यजु0 40/15

स्वाध्याय का फल के बारे में सामवेद मंत्र में कहा है कि अहिंसामय उपासना–यज्ञ में वैदिक सूक्तों के उच्चारण करने पर प्रकाशस्वरूप जगन्नेता प्रत्यक्षवत् सम्मुख उपस्थित हो जाता है। स्वाध्याय से युक्त योगज ज्ञान से दूर–दूर के सूक्ष्म तथा व्यवहित पदार्थों का भी प्रत्यक्ष दर्शन होने लगता है। पतंजलि ने स्वाध्याय से इष्टदेव परमात्मा का दर्शन बतलाया है।

स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः ।

योगसूत्र – 2/44

(स.) ईश्वरप्रणिधान

व्यास भाष्य में ईश्वर – प्रणिधान की परिभाषा इस प्रकार किया गया है उस परमगुरु परमेश्वर में सब कर्मों को अर्पण करना ईश्वर प्रणिधान कहलाता है। ऋग्वेद मंत्रों में कहा है कि तेजस्वी परमेश्वर प्रत्येक कार्य में शान्ति सुख देने वाला तथा सत्य नियमों का पालन करता है इसलिए प्रत्येक का पूज्य है। साधक के अन्दर जिस

समय वह दैवीभाव जाग्रत करता है, उस समय उपासक प्रभु को जान पाता है और मन से उसका संगीतकरण करता है।

यजुर्वेद के 16वें अध्याय में प्रकृति के विविध पदार्थों का सदुपयोग, यथायोग्य सत्कार तथा विनम्रता से नमस्कार करना और परमात्मा की अनेक शक्तियों का स्मरण कर उनका धारण तथा स्तुति आदि का परिशीलन किया गया है।

शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि ।

यजु0 16/4

इस प्रकार नियमों का वैदिक स्वरूप संक्षेप में वर्णन किया गया है, अब आसन का। निरूपण किया जाता है।

4.10.4 वेदो में आसनो का स्वरूप–

वैदिक संहिताओं में विभिन्न अवसरों पर बैठने का प्रकार वर्णित है, जैसे– अध्यापन के लिए निषीदत तथा संसीदत्वश (ऋग्वेद– 2/41/13, यजु० 11/37) आदि पदों – का प्रयोग हुआ है जो अच्छी प्रकार सुखपूर्वक बैठने का वाचक है तथा तूष्णीमासीनः सुमतिं चिकिद्धिन मन्त्रांश मौनावलम्बन करके बैठे हुए, योगाभ्यास करने का परिचायक है। इन पदों के प्रयोग से स्पष्ट होता है कि योगाभ्यासी को स्थिारता से किसी एक स्थिति में बैठना चाहिए ।

ऋग्वेद में आसन सिद्ध होने पर साधक के मनःस्थिति को अभिव्यक्त करते हुए कहा है कि– ष्आसन पर बैठे हुए मुझ पर ऋत– सत्य साक्षात्कार की कामनाएँ आरोहण करने लगी है, तब हृदय के प्रति उन कामनाओं को ऐसे कहता हूँ जैसे बालक को उसके अन्तरंग मित्र बुलाते हैं ।

आ यन्मा वेना अरुहन्नृतस्य एकमासीन र्ध्यतस्य पृष्ठे ।
मनश्चिम्में हृद आ प्रत्यवोचदचिक्रदछिंशुमन्तः सखायः ।।

ऋग्वेद – 8/100/5

4.10.5 वेदो में प्राणायाम का स्वरूप–

अष्टांग योग में प्राणायाम का विशेष स्थान है। इसकी उपयोगिता वैदिक संहिताओं एवं अन्य आध्यात्मिक शास्त्रों में प्रतिपादित की गई है। प्राणों का सृष्टिगत निर्माण कार्य, कार्य विभाजन तथा प्राणों को संयत करने के साधन प्राणमयकोश के प्रसंग में विस्तृत रूप से व्याख्यात है।

शारीरिक पुष्टि के अतिरिक्त शारीरिक रोग विनाश हेतु प्राणायाम की उपयोगिता अथर्ववेद के प्राण– सूक्त में निरूपित है। यहाँ मन्त्रों में प्राण को ओषधयः तथा भेषजं (अथर्ववेद 11/4/6) आदि कहा है।

अथर्ववेदीय प्राणविद्या से ही सम्भवतः हठयोग के अन्तर्गत विभिन्न प्रयोजनों को लक्ष्य बनाकर प्राणायाम के प्रकारों का आविष्कार किया गया। सामवेद में कहा हैं कि श्वेदो द्वारा श्रवण–मनन करने वाले तथा प्राणायाम के अभ्यासियों में और द्युलोक के नक्षत्र – समूह में वह परमात्मा विशेष रूप से चमकता है।

अगन्म वृत्रहन्तमं ज्येष्ठमाग्निमानवम् ।
यः स्म श्रुतर्वन्नार्थे बृहदनीक इध्यते ।।

सामवेद 89

प्राण–संयमी योगी शरीर रथ द्वारा भवसागर तैरने का ज्ञान प्राप्त करता है। प्राणायाम के अनवरत अभ्यास एवं ओ3म् जप से परमात्म प्रत्यक्ष करने में समर्थ होता है।
इस प्रकार वैदिक संहिताओं में प्राणायाम का लाभ आध्यात्मिक विकास के लिए विशेष रूप से वर्णित है।

4.10.6 वेदों में प्रत्याहार का स्वरुप–

इन्द्रियों को बाह्य विषयों से हटाकर अन्तर्मुख करना ही प्रत्याहार कहलाता है। योगशास्त्र के अनुसार– अपने–अपने विषय के साथ सम्बन्ध न होने के कारण इन्द्रियों की चित्तस्थिति के समान स्थिति का नाम प्रत्याहार है ।

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ।

योग सूत्र 2/54

प्रत्याहार का मुख्य लक्ष्य इन्द्रियों को वश में करना है। इन्द्रियाँ करण है जो आन्तरिक तथा बाह्य दो भागों में विभक्त है। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, अन्तःकरण हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ बाह्यकरण हैं। बाह्यकरण यदि अश्व है तो मन लगाम है और बुद्धि सारथी है एवं शरीर रथ है।

सुषारविरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेमशुभिर्वाजिन इव ।

यजुर्वेद 34/6

यजुर्वेद के मन्त्र में यह रूपक बांधा गया है।
इन्द्रियों की सत्कर्म तथा सदाचार में प्रवृत्ति के लिए प्रार्थना की है कि हे यजनीय प्रभु ! हम कानों से भद्र भावों को सुनें और आँखों से मंगलमय दृश्य को देखें।

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः । ।

ऋग्0 – 1/89/8 तथा यजुर्वेद 25 / 21

इसी प्रकार हम सौ वर्ष तक देखते रहें, सुनते रहें, बोलते रहें, जीवित रहें एवं अदीन होकर रहें। हम सौ वर्ष से ऊपर की आयु प्राप्त कर प्रत्येक इन्द्रिय से सदाचार करनेवाले हों।

पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं श्रृणुयाम शरदः शतं
प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ।।
यजु0 – 36/24 तथा अथ0 19/67/1–2

योग साधना से सम्पन्न उपासक इस परमेश्वरीय दीप्ति द्वारा अपने को पवित्र करता हुआ, सब प्रकार की द्वेषभावनाओं से तर जाता है। तदन्तर यह उपासक सूर्य के समान अन्यों को भी प्रकाश देने लग जाता है। जब उपासक की पृष्ठवंश की सुषुम्णा में प्रकाशधारा चमकने लगती है तब वह अधिक पवित्र होकर रोष आदि दुर्गुनों से अलग होकर प्रत्याहार–साधना पर विजय पा लेता है। यही प्रत्याहार की सिद्धि का फल है।

4.10.7 वेदों में धारणा का स्वरुप–

यजुर्वेद में कहा है कि ध्यान करने वाले विद्वान् लोग यथायोग्य विभाग से नाड़ियों में अपने आत्मा से परमेश्वर की धारणा करते हैं, जो योगयुक्त कर्मों में तत्पर रहते हुए ज्ञान एवं आनन्द को फैलाते हुए विद्वानों के मध्य प्रशंसा को पाकर परमानन्द के भागी होते हैं।

सौरा जन्ति कवयो युनो वितन्ते पृथक्। धीरा देवेषु सुम्नया ।।

यजुर्वेद – 12/67

यजुर्वेदीय अन्य मन्त्र में संकेत मिलता है कि उत्साह से, हृदय, प्राण, मन एवं बुद्धि सें, इन्द्रियों के द्वारा परमेश्वर का सम्यक् धारण किया जाता है अर्थात् परमात्मा की धारणा की जाती है। इस धारणा शक्ति को बढ़ाकर साधक प्राचीन ऋषियों के समान मोक्ष पद को प्राप्त होते हैं।

गायत्री मन्त्र का अर्थ प्रकाशित करते हुए महर्षि दयानन्द ने धीमहि पद का दधीमहि अर्थ किया है जिसके आधार पर मन्त्र में वर्णित सब जगत् के उत्पतिकर्त्ता, प्रकाशमय, शुद्धस्वरूप, सब सुखों के दाता परमेश्वर का जो अतिश्रेष्ठ दुःखमूलक पापों को भस्म करने वाला स्वरूप है, उसी का धारण करना अर्थात् आन्तरिक धारणा द्वारा परमात्मा के गुण–कर्म–स्वभावों का चिंतन अपेक्षित है।

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

यजुर्वेद– 3/ 35

4.10.8 वेदों में ध्यान का स्वरुप–

धारणा किये गये स्थान पर प्रत्ययों की एकतानता या वृत्तियों के प्रवाह का एकरस हो जाना ही ध्यान है। **तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्। (योगसूत्र 3/2)** वेदों में ध्यान की कई पद्धतियाँ हैं। ऋग्वेदीय मन्त्र के अनुसार ध्यान की एक पद्धति बताई गयी है कि नदी–नद आदि जल जैसे समुन्द्र में ही समा जाते हैं वैसे ही परमेश्वर में ध्यान करने वाले अपनी इन्द्रियों को समेट कर परमात्मा के आनन्द में निमग्न हो जाते हैं ।

आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः। न त्वामिन्द्रातिरिच्यते ।।

ऋग्वेद – 8/92/22

वेद में निर्देश है कि नाड़ियों में ध्यान करके परमानन्द की वृद्धि करो। इस प्रकार साधना करने से अन्तःकरण शुद्ध होकर प्रज्ञाविवेक उत्पन्न होने लगता है। इस उपासना का फल क्लेशों का नाश, शान्ति की प्राप्ति तथा मोक्षानन्द से परितृप्ति है।

तेजोमय परमात्मा का ध्यान करने का भी निर्देश वेद में किया गया है। ध्यान का फल के बारे में कहा गया है कि उषा के समान ज्ञान प्रकाश करने वाले, उत्तम दिनोंवाले, निर्दोश, निरन्तर ध्यान करने वाले योगी विशाल प्रकाश को प्राप्त करते हैं।

4.10.9 वेदों में समाधि का स्वरुप–

समाधि की परिभाषा करते हुए पतंजलि कहते हैं कि अपने ध्यानात्मक रूप से रहित केवल ध्येय रूप से प्रतीत होने वाले ध्यान का नाम समाधि है।

तदेवार्थमात्रनिर्मास स्वरूपशून्यमिव समाधिः।

योगसूत्र 3/3

ऋग्वेद के मन्त्र में उपासक द्वारा समाधि अवस्था की अभिलाषा व्यक्त की है कि– हे प्रकाशस्वरूप परमात्मा जब मैं तू हो जाऊँ और तू भी मैं हो जाए, तो मेरी आशीर्भावनाएँ = कल्याण भावनाएँ एवं शिक्षाएँ सत्य हो जाएँ।

यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं वा धा स्या अहम् । स्युष्टे सत्या इहाशिषः ।।

ऋग्वेद 8/44/23

यजुर्वेद के मन्त्र में प्रेरणा दी गयी है कि हे योग के जिज्ञासु मनुष्यों! जैसे मैं सत्यभाषण युक्त योगी स्तुति, प्रार्थना, उपासना रूप सत्कार से पूर्व योगिजनों से प्रत्यक्ष किये हुए जिस सर्वव्यापक ब्रह्म को आत्मा में साक्षात् करता हूँ उनसे आप लोग भी इस योग विद्या का श्रवण करो। इसी प्रकार दिव्य सुखों की प्राप्ति तथा मोक्षानन्द की उपलब्धि हेतु वेदों में समाधि–योग के लिए अनेक बार उदबोधन दिए गये हैं।

देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय ।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ।।

यजुर्वेद 11/7

4.11 उपनिषदों में योगांगों का स्वरूप

उपनिषदों में योग का स्वरूप जानने से पूर्व उपनिषद् शब्द पर विचार किया जाता है। उपनिषद् शब्द उप और नि उपसर्गपूर्वक सद् धातु में क्विप् प्रत्यय लगाकर निष्पन्न हुआ है। यहाँ उप शब्द का अर्थ समीप या निकट है और नि्सद का अर्थ बैठना। इस प्रकार जिसमें गुरु और शिष्य समीप बैठकर आत्मज्ञान की चर्चा करते हैं, उस ज्ञान की चर्चा को उपनिषद् कहते हैं। इसे उपनिषद इसलिए भी कहा जाता है क्योंकि इनके ज्ञान से शिष्य ब्रह्म के समीप बैठने का अधिकारी हो जाता है।

इस प्रकार उपनिषद शब्द की परिभाषा देते हुए कह सकते हैं कि जो ज्ञान साधक के चित्त के दोषों को दूर करता हुआ उसके चित्त की गति को ब्रह्म की ओर करता है और ब्रह्म के पास स्थिर करता है अर्थात् ब्रह्म के सानिध्य में बैठाता है, वह उपनिषद् है।

उपनिषदों की संख्या वैसे तो दो सौ से अधिक है, किन्तु यहाँ पर सभी उपनिषदों को न लेकर ईशादि प्रधान एकादश उपनिषदों को लिया गया है, जो निम्नलिखित है– (1) ईश, (2) केन, (3) कठ, (4) प्रश्न, (5) मुण्डक (6) माण्डूक्य, (7) ऐतरेय, (8) तैत्तिरीय, (9) छान्दोग्य, (10) बृहदारण्यक और (11) श्वेताश्वतर। इनका संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार है–

(1) ईशोपनिषद् – इस उपनिषद् में सर्वव्यापक परमात्मा का स्मरण करते हुए लोगों को निष्काम कर्म करने का उपदेश दिया गया है।

(2) केनोपनिषद् – इसमें मन प्राण, वाणी, चक्षु और श्रोत्र आदि के प्रेरक देव परमात्मा को जानने का प्रयास किया गया है।

(3) कठोपनिषद् – इस उपनिषद् में नचिकेता और यम के संवाद रूप में ईश्वर के स्वरूप का विशद् वर्णन किया गया है।

(4) प्रश्नोपनिषद् – इसमें विभिन्न ऋषियों (सुकेशा, सत्यकाम, सौर्यायणी, आश्वलायन, भार्गव और कबन्धी) के छः प्रश्नों का उत्तर दिया गया है।

(5) मुण्डकोपनिषद् – इस उपनिषद् में ब्रह्मविद्या का उपदेश किया गया है। इसमें तीन मुण्डक है तथा प्रत्येक मुण्डक के दो–दो खण्ड हैं।

(6) माण्डूक्योपनिषद् – इस उपनिषद् में ओंकार की व्याख्या और उसके उपासना के फल का वर्णन किया गया है।

(7) तैत्तिरीयोपनिषद् – इसमें तीन वल्लियाँ है– शिक्षावल्ली, ब्रह्मानन्दवल्ली तथा भृगुवल्ली । शिक्षावल्ली में मन्त्रों के वर्ण, स्वर, मात्रा और बल की व्याख्या की गयी है, ब्रह्मानन्दवल्ली में हृदयगुहा प्रतिष्ठित परमेश्वर को जानने का फल बताया है तथा भृगुवल्ली में ब्रह्मा के विभिन्न स्वरूपों और उसकी उपासना का फल बताया गया है।

(8) ऐतरेयोपनिषद् – इस उपनिषद् में तीन अध्याय हैं। इसमें इन्द्रियों की उत्पत्ति और उनके निवास स्थान, मनुष्य के तीन जन्मों की तथा ईश्वर के उपास्य का प्रतिपादन किया गया है।

(9) श्वेताश्वरोपनिषद– इसमें ब्रह्मज्ञान का विस्तार से वर्णन किया गया है। इसमें छह अध्याय हैं।

(10) छान्दोग्योपनिषद् – इस उपनिषद् में आठ प्रपाठक हैं। इस आठो अध्यायों में ब्रह्मविद्या एवं उपासना का विस्तृत विवेचन किया गया है।

(11) बृहदारण्यकोपनिषद् – इन सभी उपनिषदों में, यह सबसे बृहत्काय उपनिषद् है। यह छः अध्यायों में निबद्ध है, जिसमें ब्रह्मविद्या के अनेक तत्त्वों पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया है ।

4.5.1 उपनिषदों में यम व नियम उपनिषदों में यम–नियम की चर्चा महर्षि पतंजलि के – योगदर्शन के समान ही की गई है। इनमें अन्तर इतना अवश्य है कि इनमें से किसी–किसी उपनिषद् में यम–नियमों की संख्या पतंजलि के समान पाँच–पाँच न मानकर दस–दस मानी गयी है।

योगदर्शन में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच यम हैं तथा शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान ये पाँच नियम हैं। इन्हीं यम–नियमों में संसार के समस्त कर्त्तव्य, सम्पूर्ण पवित्राचरण समस्त धर्म एवं सम्पूर्ण आदर्श तथा उपदेश सन्निहित है। न्यायदर्शन का आर्षोपदेश, सांख्य योग का विवेकज्ञान, योग का तत्त्वज्ञान, मीमांसकों का निःश्रेयस का मार्ग, अद्वैत वेदान्त के साधनचतुष्टय ये सब इन्हीं पर आधारित हैं। बौद्ध दर्शन एवं जैन दर्शन ने इनको धर्मों का मूल माना है।

अन्य उपनिषदों जैसे– शाण्डिल्योपनिषद् 1.1 जाबालदर्शनोपनिषद् 1.6 तथा त्रिशिख ब्राह्मणोपनिषद् श्लोक 33 में समान रूप से अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, आर्जव, क्षमा, धृती, मिताहार तथा शौच इनकी

गणना यमों के अन्तर्गत की गयी है। इन तीनों उपनिषदों में नियमों के अन्तर्गत तप, संतोष, आस्तिक्य, दान, ईश्वर पूजन, सिद्धान्त श्रवण, ह्री मति, जप तथा व्रत इन दस की गणना की गयी है।

ईशादि प्रधान उपनिषदों में सत्य, ब्रह्मचर्य, तपस्या पर बहुत अधिक बल दिया गया है। इसके अतिरिक्त शौच, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान प्रत्याहार आदि अन्य योगांगो के बीज भी इन उपनिषदों में पाये जाते हैं।

(क) अहिंसा–

अहिंसा का पालन समस्त धर्मों एवं समस्त दर्शनों ने स्वीकार किया है। कायिक,वाचिक तथा मानसिक रूप से किसी भी प्राणी को कष्ट न पहुँचाना अहिंसा है
व्यास जी के अनुसार सभी प्राणियों से सर्वदा तथा सर्वथा द्रोह भावना न रखना ही अहिंसा है

तत्रा हिंसा सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनमिद्रोह

योगसूत्र व्यास व्यास 2/29

ईशादि उपनिषदों में अहिंसा का पृथक रूप में अधिक उल्लेख नहीं किया गया है। यद्यपि छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है कि जो व्यक्ति तप, दान, आर्जव अहिंसा और सत्य वचन में जीवन व्यतीत करता है उसका जीवन वास्तव में उपकारी का जीवन है।

यत्तपो दानमार्जवमहिंसा सत्यवचनमिति ता अस्य दक्षिणाः।

छान्दोग्योपनिषद् – 3/17/4

इसी प्रकार उपनिषद में एक कथा प्राप्त होती है कि प्रजापति ने द अक्षर के द्वारा ही देवों, मनुष्यों तथा असुरों को क्रमशः इन्द्रियदमन, दान तथा दया का उपदेश दिया। प्रजापति के उपदेश से असुर जो हिंसारत रहते थे, वे भी हिंसा को छोड़ दिये। यह कथा उपनिषदों की अहिंसा वृत्ति को ही द्योतित करता है।

(ख) सत्य – उपनिषदों में सत्य पर बल देते हुए कहा गया है कि सत्य से ही देवमार्ग बना है तथा आप्त काम ऋषि जिस मार्ग पर चलते हैं, जहाँ पहुँचते हैं, वह सत्य का ही परम–धाम है।

सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः ।

मुण्डकोपनिषद् 3/1/6

इसी उपनिषद् में एक अन्य स्थान पर कहा गया है कि सत्य की ही विजय होती है, असत्य की नहीं। ऋषियों की समस्त साधाना का आधार सत्य ही है।

तैत्तिरियोपनिषद् में समावर्तन संस्कार के समय वेद विद्या पढ़ चुके स्नातकों को आचार्य दीक्षान्त भाषण देते हुए कहते हैं कि किसी भी अवस्था में सत्य का आचरण नहीं छोड़ना अर्थात् सवर्दा सत्य बोलना एवं

धर्माचरण करना। **सत्यं वद ।धर्मं चर ।(तैत्तिरी0)** प्रश्नोपनिषद् में कहा गया है कि जो व्यक्ति असत्य बोलता है, वह समूल सूख जाता है।

'तस्माच्च देवा बहुधा संप्रसूताः ब्रह्मचर्य विधिश्च'।

मुण्डकोपनिषद – 2/1/7

प्रश्नोपनिषद् में तो पिप्पलाद ऋषि प्रश्न पूछने के लिए आए भारद्वाज आदि छः ऋषियों को एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य तथा तपस्या पूर्वक रहने की आज्ञा देते हैं। छान्दोग्योपनिषद में कहा गया है कि ब्रह्मचर्य के द्वारा ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है।

'तद्य एवैतं ब्रह्मलोकं ब्रह्मचर्येणानुविन्दन्ति' ।

छान्दोग्योपनिषद् 8/5/3

इसी प्रकार कठोपनिषद् में कहा गया है कि ब्रह्मप्राप्ति के लिए ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया जाता है।

यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्तिः ।

कठोपनिषद 1/1/15

(घ) अपरिग्रह –

उपनिषदों में अपरिग्रह की चर्चा नहीं मिलती है परन्तु उपनिषदों की शिक्षा अवश्य ही अपरिग्रह वृत्ति को दृढ़ करती है। यथा– कठोपनिषद् में यमाचार्य नचिकेता के समक्ष संसार के सभी प्रकार के ऐश्वर्यों का प्रलोभन उपस्थित करते हैं। किन्तु नचिकेता यह कहकर इनका तिरस्कार कर देता है– तवैव वाहास्तव नृत्यगीते । यमाचार्य! मुझे इन विषयों में से कुछ नहीं चाहिए, ये सब मुबारक हो। इनके त्याग में नचिकेता जो हेतु प्रस्तुत करता है वह योग भावना से ही अनुप्राणित है। वह कहता है कि ये सभी प्रकार के भोग अनित्य, इन्द्रियों के तेज को नष्ट करने वाला है। इससे तृप्ति नहीं हो सकता। इस प्रकार विषयों में विविध दोषों को देखकर नचिकेता उसका त्याग कर देता है। यह अपरिग्रह वृत्ति का ही फल है ।

श्वोमावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः ।
अपि सर्वं जीवितमल्पमेव तवैव वाहास्तव नृत्यगीते ।।

कठोपनिषद् 1/1/26

(ड.) शौच–

उपनिषदों में भी आचरण की शुद्धि पर बल दिया गया है। कठोपनिषद् में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जो व्यक्ति सदैव पवित्र विचारों का चिंतन करता है वह उच्च पद को प्राप्त कर लेता है।

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुद्धिः ।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते ।।

कठोपनिषद् /3.8

मनुस्मृति में क्षमा, दान, तप, ज्ञान, सत्य, जप और विद्या इन सबको शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकार की शुद्धि करने वाला कहा गया है।

क्षान्त्या शुद्धयन्ति विद्वांसो दानेनाकार्यकारिणः ।
प्रच्छन्नपापा जप्येन तपसा वेदवित्तमाः ।।

मनुस्मृति – 5/30

मनुस्मृति के अनुसार विद्वान् व्यक्ति क्षमा से कुकर्मी दान से गुप्त पाप वाले जप से तथा वेदवेत्ता तपस्या से शुद्ध होते हैं।

अर्गात्राणि शुद्धयन्ति मनः सत्येन शुध्यति ।
विद्यातपोम्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ।।

मनुस्मृति

ईशोपनिषद् में उपदेश दिया गया है कि मनुष्य को त्यागपूर्वक ही उपभोग करना चाहिए अथवा पूर्ण पुरुषार्थ के पश्चात् जो कुछ प्राप्त होता है, उतने में ही सन्तोषपूर्वक उपभोग करना चाहिए।

तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृह कस्यस्विद्धनम्।

ईशोपनिषद् 1/1

यह एक प्रकार से संतोषवृत्ति धारण करने का ही उपदेश है। यहाँ पर स्पष्ट रूप में लालच न करने की बात कही गयी है।

(ज) तप– तप का उपनिषदों में महत्वपूर्ण स्थान है। प्रश्नोपनिषद् में कहा गया है कि अपने शरीर को साध लेना ही तप है। इसलिए पिप्पलाद् जिज्ञासुओं को तप ब्रह्मचय और श्रद्धापूर्वक जीवन व्यतीत करने का आदेश देते हैं।

तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया संवत्सरं संवत्स्यथ।

प्रश्नोपनिषद् 1/2

तैत्तिरीयोपनिषद् में अनेक बार तप का उल्लेख किया गया है और कहा गया है कि तप के द्वारा ब्रह्म के यर्थाथ स्वरूप को जाना जा सकता है। **तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व । (तैत्तिरीयोपनिषद् 3.2) ।** केनोपनिषद् में तप, दम व कर्म ब्रह्म जिज्ञासु के लिए अनिवार्य बताया है। –

तस्यै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा वेदाः सर्वांगानि सत्यमायतनम्।

केनोपनिषद् 4.8

शारीरिक नियंत्रण को तप कहते हैं। मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है कि जो शान्त विद्वज्जन भिक्षाटण करते हुए जंगल में रहकर तप और श्रद्धा का अर्जन करते हैं, वे सब मलों से शुद्ध होकर सूर्य द्वार से अमृतलोक को प्राप्त करते है।

तपःश्रद्धे ये हयुपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्षचर्यां चरन्तः । हयव्ययात्मा ।।
सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो

मुण्डकोपनिषद 1/2/11

अतः मोक्ष के जिज्ञासु के लिए तप परम आवश्यक है।

(झ) स्वाध्याय –

नियमों में चतुर्थ नियम स्वाध्याय का उल्लेख पंतजलि ने अष्टांग योग तथा क्रियायोग के प्रसंग में किया है। व्यास भाष्य में दोनों स्थानों पर स्वास्थ्याय का अर्थ मोक्ष विषियक शास्त्रों का अध्ययन तथा प्रणव जप किया है। उपनिषदों में स्वाध्याय का विस्तृत अध्ययन मिलता है। (**तैत्तिरीयोपनिषद् 1.10**) में स्वाध्याय के साथ प्रवचन को जोड़कर इन दोनों को करना आवश्यक कर्त्व्य बतलाया गया है। साथ ही योग दर्शन के समान ही प्रणव आदि के जप का विधान भी उपनिषदों में किया गया है। –

(ञ) ईश्वर प्रणिधान –

ईश्वर प्रणिधान का नाम उपनिषदों में नहीं मिलता है परन्तु ईश्वर प्रणिधान का स्वरूप ईशोपनिषद् में अवश्य प्राप्त होता है। इसमें परमेश्वर के प्रति सभी कर्मों के अर्पण की बात तो नहीं कही गयी है किन्तु यह अवश्य कहा गया है कि कर्म व्यक्ति को बांधने वाले न हो।

ईशा वास्यमिदँ सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यसिवद्धनम्।।

ईशोपनिषद् 1/1

इसी व्याख्या में यही कहा गया है कि निष्काम कर्म बन्धन का कारण बनते हैं। मुण्डकोपनिषद में कहा गया है कि यह आत्म (ब्रह्म) जिसको स्वीकार कर लेता है वही इसे प्राप्त कर सकताहै, उसके सामने आत्मा अपने स्वरूप को खोलकर रख देता है।

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष

आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्।

मुण्डकोपनिषद् 3/2/ 3

यह ईश्वर प्रणिधान ही है जिसका निर्देश पतंजलि ने अपने सूत्रों में किया है।

4.5.2 उपनिषदों में प्राणायाम– पतंजलि ने प्राणायाम को परिभाषित करते हुए कहा है कि आसन के सिद्ध हो जाने पर श्वास–प्रश्वास की गति को रोक देना प्राणायाम कहलाता है।

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ।।

यो.द. 2/49

उपनिषदों में प्राणायाम का वर्णन बहुत कम किया गया है परन्तु जितना भी प्राणसम्बन्धी वर्णन उपलब्ध होता है उसमें प्राणों का महत्व भली–भाँति प्रतिपादित किया गया है। छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है कि सभी भूत प्राण से ही उत्पन्न होते हैं तथा प्राणों में ही समाहित हो जाते हैं।

सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि प्राणमेवाभिसंविशन्ति ।

छान्दो० 1/11/5

तैत्तिरीयोपनिषद् में भी इसी प्राण से सब भूतों की उत्पत्ति, स्थिति एवं अन्त में विलीन हो जाते हैं। इसमें प्राण को ब्रह्म कहा गया है। **प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात् ।। (तैत्तिरी0 3.3)** प्रश्नोपनिषद् में प्राण की उत्पत्ति आत्मा से बतलाते हुए प्राण के अन्य भेद व्यान, उदान, समानादि का भी उल्लेख किया गया है। कठोपनिषद् में स्पष्ट रूप से प्राणायाम की क्रियाविधि बतायी गयी है। इसमें प्रथम प्राणायाम करते समय हृदय स्थान के प्राण वायु को उपर (ब्रह्माण्ड) ले जाकर स्थिर करता है तथा दूसरा प्राणायाम करते समय अपान वायु को नीचे की ओर धक्का दिया जाता है। नाभि तथा कण्ठ देश के मध्य हृदय स्थित जीवात्मा की समस्त इन्द्रियाँ उपासना करती है।

ऊर्ध्व प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति ।

मध्ये वामनमासीनं विश्वे देवा उपासते ।।

श्वेताश्वतरोपनिषद् में भी संक्षेप में प्राणायाम की विधि बतलायी गयी है। मन को वश में करके प्राण को अन्दर लेकर रोकें, उसका पीडन करे। जब प्राण अन्दर न रुक सके, तब नासिका छिद्र से बाहर निकाल दे। इस प्राणायाम को मन के एकाग्र करने वाला बतलाया गया है।

4.5.3 उपनिषदों में प्रत्याहार– पतंजलि के अनुसार इन्द्रियों का अपने विषयों के साथ सम्बन्ध न होने पर चित्त के अनुसार होना प्रत्याहार कहलाता है। भोजवृत्ति के अनुसार विषयों के प्रति अभिमुख न होने पर इन्द्रियों का सम्बन्ध केवल चित्त से ही रहता है इसलिए इन्द्रियाँ भी चित्त के स्वरूप का अनुकरण करती है।

स्वविषयासंप्रयोगे चित्तस्वरूपाऽनुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः । ।

यो०सू० – 2/54

ईशादि प्रधान उपनिषदों में प्रत्याहार नाम की चर्चा नहीं मिलती है किन्तु शाण्डिल्योपनिषद् में प्रत्याहार का विस्तार से वर्णन किया गया है। प्रत्याहार के पाँच भेद बतलाये गये हैं।

(1) विषयों में विचरने वाले इन्द्रियों को बलपूर्वक रोकना प्रत्याहार कहलाता है

(2) इन्द्रियों से जो–जो देखा जाए, उसे आत्मा के रूप में देखा जाए, यह प्रत्याहार है।

(3) नित्य तथा विहित कर्मों के फल त्याग को भी इस उपनिषद् में प्रत्याहार माना गया है। यह परिभाषा ईशोपनिषद् के दूसरे मन्त्र के अनुसार प्रतीत होती है जिसमें कहा है कि

कुर्वन्नवेहे कर्माणि जीजिवेषच्छतं समाः ।
एवं त्वयी नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे । (ईशोपनिषद 1–2)

(4) सभी विषयों से पराङ्मुख होना प्रत्याहार कहलाता है। यह परिभाषा योग सूत्र (2.54) स्वविषयासम्प्रयोगे के अनुसार ही प्रतीत होती है।

(5) इस उपनिषद में प्रत्याहार की एक अन्य अलग प्रकार से परिभाषा दी गयी है कि पैर, अंगूठा, जंघा, जानु आदि अठारह स्थानों में क्रमशः धारणा करना ही प्रत्याहार है। उपनिषदकार की यह परिभाषा अन्यत्र कहीं भी प्राप्त नहीं होती। मण्डल ब्राह्मणोपनिषद् में भी विषयों से इन्द्रियों को हटाना प्रत्याहार कहा गया है।

4.5.4 उपनिषदों में धारणा –

धारणा को परिभाषित करते हुए पतंजलि ने कहा है कि चित्त को किसी देश विशेष में स्थिर करना धारणा है। **देशबन्धचित्तस्य धारणा (योगसूत्र – 3/1)** मण्डल ब्राह्मणोपनिषद् के अनुसार धारणा, विषयों से हटाते हुए चित्त को चौतन्य में स्थिर करना है। धारणा के द्वारा मन स्थिरता को प्राप्त कर लेता है।

उपनिषदों में धारणा का वर्णन ध्यान के प्रसंग में किया गया है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि विद्वान् पुरुष मन को उसी प्रकार धारण करे जैसे कि दुष्ट घोड़ा को वश में किया जाता है।

दुष्टश्वयुक्तमिव वाहमेनं विद्वान् मनो धारयेताप्रमतः ।।

श्वेताश्वतरोपनिषद–2/9

ईशादि प्रधान उपनिषदों के अतिरिक्त अन्य उपनिषदों में भी धारणा का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। योगतत्त्वोपनिषद् में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश ये पाँचों धारणा के स्थल कहे हैं किन्तु यहाँ पर स्वयं ही पृथिवि आदि का अभिप्राय शरीर के ही विभिन्न अंग मानते हुए कहा गया है कि पैरों से जानु पर्यन्त भाग को पृथिवि कहते हैं। जानु से पायु पर्यन्त भाग जलस्थान कहलाता है। पायु से हृदय तक का भाग अग्नि स्थान कहलाता है। हृदय से तक का भाग वायु स्थान तथा ''भ्रू'' के प्रारम्भ से अन्त तक का भाग आकाश कहलाता है। इन स्थानों में धारणा करने से पृथिवि, जल, अग्नि तथा वायु के संयोग से योगी की मृत्यु नहीं होती तथा वह आकाश–गमिता को प्राप्त करता है। जाबालदर्शनोपनिषद् में भी धारणा के इसी प्रकार पाँच भेद करते हुए उपर्युक्त पृथिवि आदि पांचों स्थानों में धारणा का विधान किया गया है। शाण्डिलयोपनिषद् में धारणा के तीन प्रकार कहे हैं– आत्मा में मन को लगाना, दहराकाश में बाह्याकाश को लगाना तथा पृथ्वी आदि पंचभूतों में पंचमूर्ति की धारणा करना ।

4.5.5 उपनिषदों में ध्यान जिस स्थान में धारणा की हुई है, उस स्थान में चित्त की एकतानता = एकाग्रता एक समान बना रहे वह ध्यान की स्थिति है।

तत्र – प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ।

योगसूत्र – 3 / 2

ध्यान की स्थिति में चित्तवृत्तियाँ पूर्णतः निरुद्ध रहती है। तब केवल ध्याता, ध्यान और ध्येय का ही सूक्ष्म रूप में भान रहता है, अन्य का नहीं। मण्डलब्राह्मणोपनिषद् में भी इसी प्रकार चौतन्य में एकतानता को ध्यान कहा गया है।

सर्वशरीरेषु चौतन्यैकतानता ध्यानम् ।

मण्डल ब्राह्मणोपनिषद् – 347

ईशादि उपनिषदों तथा अन्य उपनिषदों में भी ध्यान का वर्णन विस्तार के साथ किया गया है। इनमें ध्यान के द्वारा आत्मदर्शन की बात कही गयी है। मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है कि ज्ञानप्रसाद के द्वारा विशुद्ध अन्तःकरण होकर ध्यान करता हुआ आत्मा को देखे । उपनिषदों में प्रायः ओंकार ध्यान का विधान किया गया

है। प्रश्नोपनिषद् में ओंकार के ध्यान के सम्बन्ध में ओंकार की एक, दो तथा तीन मात्राओं के ध्यान तथा उनके फलों का अलग–अलग वर्णन स्पष्टता के साथ उपलब्ध होता है। श्वेताश्वरोपनिषद् में ध्यान करने की विधि बतलाया गया है कि सिर, ग्रीवा तथा कमर को एक सीध में करके इन्द्रियों को हृदय में स्थापित करके ध्यान करे।

त्रिरूत्रयं स्थाप्य समं शरीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा संनिवेश्य।
ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विहान्स्त्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि।।
श्वेताश्वतरोपनिषद् 2–8

ब्रह्मविद्योपनिषद् में ध्यान करने का स्थान भ्रूमध्य बतलाया गया है। योगशिखोपनिषद् में सुषुम्ना में ध्यान करने को सर्वश्रेष्ठ मानकर कहा गया है कि यह ध्यान हजारों अश्वमेधादि यज्ञ की अपेक्षा सर्वोत्तम है। योग तत्त्वोपनिषद् में ध्यान के दो भेद बतलाए हैं– सगुण और निर्गुण । प्राणायाम द्वारा प्राण को नियंत्रण कर अपने इष्ट देवता का ध्यान करना सगुण ध्यान कहलाता है। इस ध्यान द्वारा अणिमादि अष्टसिद्धियाँ प्राप्त होती है। निर्गुण ध्यान के द्वारा समाधि की प्राप्ति होती है।

सगुणं ध्यानमेत्स्यादणिमादिगुणप्रदम् ।

निर्गुणध्यानयुक्तस्य समाविश्च ततो भवेत।। योगतत्त्वोपनिषद् श्लोक 106 शाण्डिल्योपनिषद् में भी ध्यान के दो भेद बताते हुए कहते हैं कि मूर्ति के ध्यान को सगुण ध्यान तथा आत्मस्वरूप के दर्शन को निर्गुण ध्यान कहते हैं।

सगुणं मूर्तिध्यानम् निर्गुणमात्मयाधात्म्यम् ।। शाण्डिल्योपनिषद् 1/71

4.5.4 उपनिषदों में समाधि–

समाधि के स्वरूप के बारे में बताते हुए पतंजलि कहते हैं कि वह ध्यान ही केवल ध्येय के स्वरूप को प्रकाशित करने वाला, अपने ध्यानात्मक स्वरूप से
शून्य बना जैसा अर्थात् ज्ञानस्वरूप में गौण हुआ समाधि कहलाता है।

तदेवार्थमात्र निर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।।
योगसूत्र 3/3

अभिप्राय यह है कि ध्यान में ध्याता, ध्यान तथा ध्येय तीनों की प्रतीति होती है जबकि समाधि में केवल ध्येय मात्र की योगतत्त्वोपनिषद् में समाधि को जीवात्मा तथा परमात्मा की साम्यावस्था कहा गया है। शण्डिल्योपनिषद् में कहा गया है कि यह त्रिपुटिरहित अवस्था ही समाधि है, जिसमें जीवात्मा एवं परमात्मा शुद्ध स्वरूप में रहते हैं।

योगदर्शन में समाधि के दो भेद बताए गये हैं– सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात समाधि । सम्प्रज्ञात समाधि के चार भेद हैं–

(1) वितर्कानुगत

(2) विचारानुगत,

(3) आनन्दानुगत एवं

(4) अस्मितानुगत।

इनमें से वितर्कानुगत एवं विचारानुगत के दो–दो भेद बताए गये हैं– सवितर्क व निर्वितर्क तथा सविचार व निर्विचार। अध्यात्मोपनिषद् में कहा गया है कि ध्याता तथा ध्यान को छोड़कर जब चित्त वायु रहित स्थान में रखे हुए दीपक की भांति ध्येय मात्रपरायण हो, तब यह समाधि की स्थिति होती है। समाधि प्राप्त हो जाने पर पूर्व संचित कर्म वासनायें नष्ट हो जाती है तब शुद्ध धर्म की वृद्धि होती है। यह समाधि हजारों अमृत वर्षा की भाँति धर्म का वर्षण करती है। पैंगलोपनिषद् में भी इसी प्रकार कहा गया है कि धर्म मेघ समाधि के द्वारा वासनाजाल तथा कर्म संचय नष्ट हो जाने पर जीवनमुक्ति प्राप्त होती है।

4.12 अभ्यास प्रश्न

एक शब्द में उत्तर दीजिए

1– यम कितने है?

2– बौद्ध धर्म के संस्थापक कौन थे?

3– चौबीस जैनी तीर्थंकरों में पहला तीर्थंकर किसेमाना जाता है?

1– बहुविकल्पीय प्रश्न

क- वेदों की संख्या कितनी है।

(अ) 4 (ब) 5. (स) 18, (द) 108

ख– सबसे प्राचीन वेद माना जाता है।

(अ) सामवेद (ब) यजुर्वेद (स) ऋग्वेद (द) अधर्ववेद

ग– कर्मकाण्ड का सम्बन्ध है।

(अ) ऋग्वेद (ब) यजुर्वेद, (स) सागवेद, (द) अथर्ववेद

घ– योग के आदिवक्ता माने जाते है।

(अ) हिरण्यगर्भ (ब) महर्षि पतंजलि (स) भगवान कृष्ण, (द) महर्षि घेरड़

ब– इन्द्रियों का संयम कहलाता है।

(अ) यम (ब) नियम (स) प्रत्याहार (द) दम

4.13 सारांश

महात्मा बुद्ध ने धर्मचक्र लगाया, सारनाथ में कौण्डिन्य आदि पंचवर्गीय पंच मिक्षुओं के सामने प्रथम उपदेश दिया । गौतम बुद्ध ने मगधी भाषा में अपनी सारी शिक्षाएँ दीं। गौतम बुद्ध की सभी शिक्षाओं को त्रिपटक के रूप में संकलित किया गया था। त्रिपटक की रचना का समय हमारे युग की तीसरी शताब्दी माना जाता है। यह वही काल था जिसने जैन धर्म को एक प्रेरणा बना दिया और जैन धर्म प्रसारित हुआ।

जैन धर्म मुख्य रूप से महावीर की शिक्षाओं पर आधारित है। जैन दर्शन का साहित्य बहुत व्यापक है। प्रारंभ में, जैन का दार्शनिक साहित्य प्राकृत भाषा में था। बाद में, जैन ने संस्कृत में जैन साहित्य के परिणामस्वरूप संस्कारों को स्वीकार कर लिया। जैन धर्म में दो संप्रदायों को स्वीकार किया गया। पहला दिगम्बर और दूसरा श्वेताम्बर। जो लोग सफेद कपड़े पहनते हैं, उन्हें स्वेताम्बर का संप्रदाय माना जाता है, और जो लोग नग्न अवस्था में रहते हैं, उन्हें एक दिगंबर समुदाय माना जाता है। प्रस्तुत इकाई में, आपने जैन और बौद्ध दर्शन में योग की प्रकृति का अध्ययन किया। इसी क्रम में आपने वेदों में भी योग का स्वरूप देखा है। वेद विज्ञान में भारतीय संस्कृति और ज्ञान के मूल स्रोतों के रूप में काम करते हैं। सभी सांसारिक ज्ञान वेदों के भीतर पाए जा सकते हैं। वेद भारतीय सभ्यता और संस्कृति के इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं, हम सब इसमें बहुत गर्व करते हैं। प्राचीन काल से, व्यक्तिगत जीवन, सामाजिक प्रणालियों और भारतीय समाज के राष्ट्रीय संगठन ने वेदों की मजबूत नींव पर विश्वास किया है। वेद जीवन के सभी पहलुओं को शामिल करते हैं, जो निर्विवाद प्रमाण के रूप में कार्य करते हैं और अन्य विषयों को सूर्य की तरह प्रकाशित करते हैं। यह सच्चे विषयों के लिए आधार बनाता है, जिसने तब अन्य विषयों का विकास किया है। अन्य ग्रंथ जैसे कि उपनिषद, स्मृति ग्रंथ, दर्शन और पुराण भी योग के लिए पर्याप्त प्रशंसा प्रदान करते हैं।

4.14 शब्दावली

- यथार्थ– सत्य
- तत्त्ववेत्ता– जो आत्मतत्त्व को जानते हैं
- अर्वाचीन– प्राचीन पुरातनता
- यम –अहिंसा, सत्य, गोपनीयता, अपरिग्रह, ब्रह्माचर्य
- नियम– शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्राणिधान
- शिंच– पवित्रता, स्वच्छता
- अस्तेय– चोरी ना करना
- स्वाध्याय– श्रेष्ठ ग्रन्थों को पढ़ना
- ऋत– प्रिय, सत्य

4.15 सन्दर्भ ग्रन्थ

- भारतीय दर्शन आ० बलदेव उपाध्याय, शारदा मन्दिर, वाराणसी, 1991
- बौद्ध दर्शन मीमांसा 1954 1 आ० बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी,
- भारतीय दर्शन की रूपरेखा प्रो० हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, मोतीलाल बनारसी दास, 2002
- ऋग्वेद – भाष्यकार स्वामी दयानन्द सरस्वती, आर्य प्रकाशन, दिल्ली, 2006।
- यजुर्वेद – भाष्यकार स्वामी दयानन्द सरस्वती, आर्य प्रकाशन, दिल्ली, 2006।
- सामवेद भाष्यकार स्वामी दयानन्द सरस्वती, आर्य प्रकाशन, दिल्ली, 2009
- अथर्ववेद भाष्यकार क्षेमकरणदास त्रिवेदी, आर्य प्रकाशन, दिल्ली 2007
- भारतीय दर्शन आ० बलदेव उपाध्याय, शारदा मन्दिर, वाराणसी, 1991 ।
- भारतीय दर्शन की रूपरेखा प्रो० हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, मोतीलाल बनारसी दास, 2002।
- वेदों में योग विद्या डॉ० योगेन्द्र पुरुषार्थी यौगिक शोध संस्थान, ज्वालापुर, हरिद्वार, 8. उपनिषदों में योग विद्या डॉ० रघुवीर वेदालंकार ।

4.16 निबंधात्मक प्रश्न

1. जैन दर्शन में योग की विस्तार पूर्वक चर्चा कीजिए।

2. बौद्ध दर्शन में योग की विस्तार पूर्वक चर्चा कीजिए।
3. जैन दर्शन तथा बौद्ध दर्शन में योग की तुलनात्मक व्याख्या करें।
4. वेदो में यमो के स्वरूप की विस्तार पूर्वक चर्चा कीजिए।
5. उपनिषदों में यमो के स्वरूप की विस्तार पूर्वक चर्चा कीजिए।
6. उपनिषदो में धारणा ध्यान एवं समाधि की व्ययख्या कीजिए।
7. वेदो तथा उपनिषदो में प्रत्याहार की तुलनात्मक व्याख्या कीजिए

द्वितीय खंड

इकाई 05 – महर्षि पतंजलि का परिचय एवं यौगिक योगदान
गोरखनाथ जी की परम्परा का परिचय और यौगिक योगदान
आदि शंकराचार्य जी का परिचय और यौगिक योगदान

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 महर्षि पतंजलि

5.3.1 महार्षि पतंजलि का जीवन परिचय

5.3.2 महर्षि पतंजलि का यौगिक योगदान

5.3.3 योगसूत्र की रचना

5.3.4 अष्टांग योग का दर्शन

5.4 गौरख नाथ परम्परा का परिचय गौरख नाथ जी का

5.4.1 यौगिक योगदान

5.4.2 योगी गोखखनाथ जी की योग साधनाएर

5.4.3 गोरक्ष सहिता – एक परिचय

5.5 आदि शंकराचार्य

5.5.1 आदि शकरा चार्य जी का जीवन परिचय

5.5.2 सन्यास

5.5.3 गुरु मिलन

5.5.4 महा यात्रा

5.5.5 आचार्य शंकर की जगदगुरु यात्रा

5.5.6 आचार्य शंकर की जी का यौगिक योगदान

5.5.7 शंकराचार्य जी का अद्वैत वैदान्त शिक्षा

5.5.8 शंकर का जगत विचार

5.5.9 माया और अविधा सम्बधि विचार

5.5.10 ब्रह्मविचार

5.5.11 ईश्वर विचार

5.5.12 आत्मा विचार

5.5.13 जीव विचार

5.5.14 बधन मोक्ष विचार

5.5.15 साधन चतुष्टय

5.5.16 नैतिकता एवं धर्म विचार का स्थान

5.6 अभ्यास प्रश्न

5.7 सारांश

5.8 शब्दावली

5.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

5.10 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

यह वसुन्धरा कभी भी किसी भी काल में ऋषि सत्ताओं, योगियों, मनीषियों एवं विद्वानों से खाली नहीं रही। योग का गूढ़ ज्ञान रखते हुये महर्षि ने योग को सूत्र रूप में पिरोकर न सिर्फ तत्कालिक आवश्यकता को पूरा किया है। बल्कि आज भी योग की समग्रता का ज्ञान कराने वाली सर्वश्रेष्ठ कृति योग सूत्र ही है।वहीं, गुरु शिष्य परम्परा पर आधारित नाथ संप्रदाय के आचार्य गोरखनाथ जी के योगमय जीवन और उनके द्वारा समाज की कुरीतियों का खंडन करते हुए योग की अलख हठयोग के सावरूप से स्वयं सिद्ध होने के साथ उसके व्यवहारिक रूप को जान सामान्य के लिए सुलभ बनाया। इस इकाई में आप योग सूत्र कार महर्षि पतन्जलि, गोरखनाथ और आदि शंकराचार्य के जीवन वृत्त व उनकी कृति का विशिष्ट अध्ययन करेंगे।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप योग में महर्षि पतन्जलि,गोरखनाथ परंपरा, आदि शंकराचार्य के जीवन दर्शन के और उनके यौगिक के विषय में विस्तृत ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- महर्षि पतंजलि के जन्म एवं जन्म स्थान से सम्बन्धित विभिन्न मतों के बारे में जान सकेंगे।
- महर्षि पतंजलि द्वारा दी गई सार्वभौम साधना के विषय में जान सकेंगे।

- महर्षि पतंजलि के उच्च आध्यात्मिक मनोदशा का परिचय कराती, योग दर्शन की सर्वश्रेष्ठ कृति श्योग सूत्रश के विषय में जान सकेंगे।
- गोरखनाथ जी के जीवन को जानेंगे, और उनका यौगिक जीवन को समझेंगे।
- गोरखनाथ जी का नाथ परंपरा द्वारा योग को दिए उनके योगदान को जानेंगे।
- गोरखनाथ जी के द्वारा हठयोग के विस्तार और उसके सहज सरल स्वरूप को समझेंगे।
- आदि शंकराचार्य जी की योगमय जीवन को जानेंगे ।
- अव्यवस्था की इस स्थिति से आचार्य शंकर ने कैसे भारतवर्ष को उबारा।
- जानेंगे की उन्होंने ऐसा कौन सा नया धर्म या विचार धारा दी जो पूर्व में नहीं थी।
- उनका स्वयम् का कैसा व्यक्तित्व रहा होगा जो समाज के लिये अनुकरणीय बन गया।

5.3 महर्षि पतंजलि

महर्षि पतंजलि योग के आदि ऋषि के रूप में जाने जाते हैं। योग प्राचीन ऋषि–मुनियों, तत्ववेताओं द्वारा प्रतिपादित अनमोल ज्ञान और विज्ञान से युक्त एक अति विशिष्टताओं से परिपूर्ण जीवन मार्ग है। मानव हर काल में अपने जीवन के मूल्यों एवं बाहरी वातावरण के प्रति उत्सुकता, गम्भीरता एवं खोजी प्रवृति का रहा है। हर काल में मानवीय मस्तिष्क आन्तरिक और बाह्य खोजें करता रहा है। आधुनिक मानव ने जहां बाह्य जगत में आश्चर्यचकित कर देने वाली खोजें की हैं, सुख सुविधाओं का अम्बार लगा दिया है वहीं प्राचीन काल में ऋषि–महऋषियों ने आन्तरिक जगत में अतुलनीय अन्वेषण किये और उनआन्तरिक अन्वेषणों का फल मानसिक सन्तुलन, सामाजिक, आध्यात्मिक और बौद्धिक सामंजस्य के रूप में परिलक्षित हुआ। यह बात निर्विवाद रूप से सत्य है कि बाहरी खोज जैसे–जैसे आगे बढ़ती है, ऊपर उठती है वैसे वैसे असंतोष, चंचलता और भय भी बढ़ता जाता है, अन्दर की छटपटाहट भी बढती जाती है। आर्ष योगियों में महर्षि पतंजलि ऐसे योगी तत्वदृष्टा हुये जिन्होंने मानव मन को समझकर और भविष्य में आने वाली अस्थिरता की पूर्व कल्पना करते हुये उससे उबरने का मार्ग प्रशस्त किया। योग विद्या के यत्र–तत्र बिखरे हुये ज्ञान को इन्होने ही एक सूत्र में पिरोया और समाज को एक उत्कृष्ट, बेजोड़ और सटीक शब्दावली के साथ योग सूत्र नामक ग्रन्थ दिया।

देश, काल, धर्म और लिंग की सीमाओं से परे सार्वभौम सत्य का प्रतिपादन करने वाला योग सूत्र युग दृष्टा महर्षि पतंजलि की अनुपम कृति होने के साथ–साथ इनके उच्च आध्यात्मिक मनोभूमि के दर्शन भी कराती है। इनके सम्बन्ध में विस्तृत वर्णन पतंजलि चरित्र तथा लघुमुनि त्रिकल्पतरू में प्राप्त होता है।

5.3.1 महर्षि पतंजलि का जीवन परिचय–

योग दर्शनकार महर्षि पतंजलि के जीवन के विषय में कई मत प्राप्त होते हैं। पतंजलि नाम के पीछे भी एक रोचक कथा बहुत प्रचलित है। प्रातःकाल सूर्योदय के समय इनके पिता ध्यान साधना के पश्चात् सूर्यदेव को अर्घ्य प्रदान कर रहे थे। अर्घ्यदान करने के दौरान दिव्य रूप से अपने पिता की अज्जुलि में गिरने के कारण इनका नाम पतंजलि हुआ। एक अन्य कथा के अनुसार साध्वी श्गोनिका दिव्य पुत्र हेतु ध्यान साधना कर रहीं थी एवं स्वयम् भगवान् भी आदिशेष के रूप में पृथ्वी पर आना चाहते थे एवं अवतरण के लिये किसी उच्चकोटि की आत्मा का शरीर चाहते थे। अपने जीवन की अन्तिम और दिव्य इच्छा को पूरा करने के लिये साध्वी गोनिका सूर्य देव की प्रातः आराधना कर रही थी। साध्वी गोनिका ने अपनी अंजुली में जल लिया और सूर्यदेव को अघ्य प्रदान करने लगीं, अपनी आँखें बन्द करने के बाद वे सूर्यदेव का ध्यान करने लगीं और अपने हाथों का जल उन्होने जैसे ही चढ़ाया उनके हाथों में एक सूक्ष्म सर्प प्रकट हो गया जिसने धीरे–धीरे नवजात बालक का रूप ले लिया और बालक ने साध्वी को उसे पुत्र रूप में स्वीकार करने का आग्रह किया। साध्वी गोनिका ने दिव्य बालक को अपने पुत्र रूप में स्वीकार लिया और अंजुलि में गिरने के कारण पतंजलि नाम रखा। एक अन्य कथा में उन्हें माँ अनुसूया के तीन पुत्रों में एक पुत्र माना जाता है।

योग दर्शनकार पतंजलि के जीवन के विषय में कई मत प्राप्त होते हैं। कोई उन्हें नागू जाति में उत्पन्न हुआ मानते हैं एवं कोई उन्हें शेषनाग का अवतार मानतें हैं। परन्तु निश्चित ही श्री पतंजलि भगवान कपिल के पश्चात् और अन्य चारों दर्शनकारों से बहुत पूर्व हुये। उपरोक्त मतों में उनके जन्म नाम के विषय में हमने जाना कि –

भगवान सविता को अर्घ्य दान देते हुये अंजुलि में आकर गिरने से नाम पतंजलि हुआ।

माँ अनुसूया (जो कि सप्त ऋषियों में प्रथम ऋषि श्अत्रीश की पत्नि हैं) ने त्रिमूर्ति ब्रह्मा, विष्णु, महेश की ली हुई परीक्षा उत्तीर्ण की और उन्हे अपने पुत्रों के रूप में पाया जो बाद में सोमस्कानन्द जिन्हे पतंजलि ऋषि के नाम से जाना जाता है, दत्तात्रेय भगवान और ऋषि दुर्वासा हुये।

अब आगे हम ऋषि पतंजलि के विषय में प्रचलित अन्य मतों की चर्चा करेंगें और जानेंगें कि–

वैधक शास्त्र, योग सूत्र, व्याकरण महाभाष्य इन्हीं की रचना मानी जाती हैं एवं इसने पक्ष व विपक्ष में विभिन्न प्रमाणों को जानेंगे।

ऋषि पतंजलि ने गोत्र के विषय में कौन–कौन से मत प्राप्त होते हैं।

ऋषि पतंजलि द्वारा लिखे गये योग सूत्र की विषय वस्तु क्या है ।

महर्षि पतंजलि द्वारा दी गई योग साधनाओं को किस प्रकार जीवन में ढाल सकते हैं।

विभिन्न ज्ञात मतों में से एक मत के अनुसार पाणिनी व्याकरण महाभाष्य तथा वैधक शास्त्र चरक संहिता इन्हीं के द्वारा रचित है ऐसा कहा गया है–

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य व वैधकेन ।
योऽपाकरोत्तम् प्रवरं मुनीनां पतंजलि प्रान्जलिरानतोऽस्मि ।।

मैं उन मुनियों में श्रेष्ठ पतंजलि को हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूं, जिन्होंने योग से अन्तःकरण के, पद (व्याकरण महाभाष्य) से वाणी के और वैधक (चरक ग्रन्थ) से शरीर के मल को दूर किया है। पतंजलि नाम के शास्त्रकार भी एक से अधिक हुये हैं ऐसे प्रमाण मिलते हैं। बृहदारण्यक में पतंजलि एक वंश का नाम कहा गया है। पतंजलो नामतः कपिगोत्रस्य (शांकरभाष्य)।

मैक्स मूलर कहते हैं कि शतपथ ब्राह्मण में काव्य पतंजलि नाम है। माध्यन्दिन शतपथ में पातन्जल नाम मिलता है। मत्स्यपुराण के गोत्र–प्रवर सूची में आङ्गिरस पतंजलि नाम है। पतंजलि नामक एक व्यक्ति इलावृतवर्ष या भारतवर्ष के उत्तर में स्थित हिमवान् प्रदेश में निवास करते थे ऐसा वर्णन मिलता है। संस्कृत व्याकरण के इतिहास में पतंजलि का महाभाष्य महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस ग्रन्थ की महत्ता व्याकरण शास्त्र की उपादेयता के अतिरिक्त तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक, ऐतिहासिक एवं राजनीतिक दशाओं पर भी प्रकाश डालने के कारण है। योग दर्शन के निर्माता ऋषि पतंजलि एवं महाभाष्यकार पतंजलि एक हैं अथवा नहीं ठीक–ठीक कहना कठिन है। योग दर्शन के प्रथम सूत्र एवं महाभाष्य के प्रथम सूत्र को यदि ठीक–ठीक समझा जाये तो दोनों तत्व को कहने वाले सूत्र है। प्राचीन काल के पतंजलि को शेषनाग के अवतार के रूप में भी जाना जाता है। एक प्राचीन कथा के अनुसार पतंजलि मुनि को शेषनाग का अवतार मानकर काशी में एक बावड़ी पर पाणिनी मुनि के समक्ष सर्परूप में प्रकट होना बताया गया है। पाणिनी मुनि पूछते हैं। कोर्भवान (घबराकर वे को भवा के स्थान पर कोर्भवान् पूछ बैठते हैं) सर्प उत्तर देता है सपोऽहम् । पुनः पाणिनी पूछते हैं रेफः कुतो गतः उत्तर में सर्प तव मुखे कहता है। इसके बाद सर्प के आदेशानुसार चादर पर्दे के रूप में लगाई गई एवं बाहर से सभी विद्वान अपनी जिज्ञासाओं का उत्तर पाते रहे। इस प्रकार सम्पूर्ण भाष्य की रचना हुई। किन्तु सर्प की आज्ञा थी कि कोई भी पर्दा उठाकर न देखे। एक व्यक्ति ने इसका उल्लंघन किया, परिणास्वरूप सर्पफुंकार से सभी लेख जल गये। यह पूरी घटना देखने एवं लेखन का कार्य करने वाले पास के वृक्ष पर बैठे हुये यक्ष ने दया करके स्वयम् का लिखा हुआ भाष्य जो कि पत्तों पर लिखा गया था, ब्राह्मणों को दे दिया। कथानुसार इन पत्तों में जिन पर भाष्य लिखा गया था, बकरी कुछ पत्तों को खा गई। इसीलिये भाष्य में कुछ स्थानों पर विसंगति पाई जाती है।

पराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयों

(अष्टाध्यायी 4/3/110)

अष्टाध्यायी के उपरोक्त सूत्र से व्यास जी का पाणिनी मुनि के पूर्व होना सिद्ध होता है। पाणिनी मुनी द्वारा लिखा गया अष्टाध्यायी पर महाभाष्यकर्ता पतंजलि योग दर्शन के सूत्रकार पतंजलि किस प्रकार हो सकते

हैं। यह सम्भव है कि पतंजलि नाम से कोई अन्य व्यक्ति इन दोनों उच्च कोटि के ग्रन्थकार हुये हों। जे०एच० वुड्ज के मतानुसार योगसूत्रकार पतंजलि व्याकरण महाभाष्यकार पतंजलि से भिन्न व्यक्ति थे क्योंकि दोनों आचार्यों का जीवनकाल भिन्न–भिन्न है। व्याकरणकार पतंजलि का जन्मकाल 300 ई०पू० माना जाता है।

प्रो० जैकोबी एवं प्रो० कीथ के मतानुसार भी दोनों अलग–अलग हुये। इनके कथनानुसार दोनों ग्रन्थों के विषयों में समानता न होना बताया गया है। परन्तु एक भिन्न मत के अनुसार, उदयवीर शास्त्री (साँख्यदर्शन का इतिहास, पृष्ठ 514–523) के मतानुसार दोनों की लेखनशैली एक है एवं तत्वदर्शन समान होने से दोनों एक ही हैं ऐसा उल्लेख मिलता है।

5.3.2 महर्षि पतंजलि का यौगिक योगदान–

ईसा से दो सौ वर्ष पूर्व जन्मे महर्षि श्पतंजलि ने जिस रूप में योग की व्याख्या की और अवधारणा दी, वह आज तक उन्हीं सिद्धांतों पर चली आ रही है। कहा जा सकता है कि महर्षि पतंजलि में ही योग का अथ और इति है। समय–समय पर अनेक योग ऋषियों ने योग को अपने–अपने ढंग से जनप्रिय बनाने का कार्य किया। वर्तमान में स्वामी रामदेव ने इस दिशा में एक क्रांति ही कर दी। आचार्य कर्मवीर आदि ने भी उसे अपने ढंग से प्रचारित–प्रसारित किया। आज भारतवर्ष में विभिन्न स्थानों पर सौ से भी अधिक योगपीठ स्थापित हैं, जो विभिन्न नामों से अपने को महर्षि पतंजलि से ही जोड़ते हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि योग–दर्शन महर्षि पतंजलि से अलग जा ही नहीं सकता। आज भी उसकी नींव महर्षि पतंजलि प्रवर्तित योग–दर्शन पर ही आधारित है।

महर्षि पतंजलि की बहुमुखी प्रतिभा पर लोग, विद्वान तक भी आश्चर्य करते हैं, कि एक ही व्यक्ति किस प्रकार इतना उच्चकोटि का वैयाकरण, योग–सूत्र का रचयिता और आयुर्वेद का प्रकांड पंडित हो सकता है। इसलिए उन्होंने प्रस्थापित करने की चेष्टा की कि ये तीनों ग्रंथ–रत्न अलग–अलग व्यक्तियों द्वारा रचित हैं, किंतु यह भ्रामक अवधारणा बहुत अधिक समय तक टिक नहीं पाई। अंततः यही स्वीकारा गया कि तीनों महाग्रंथों के रचयिता महर्षि पतंजलि ही हैं। महर्षि पतंजलि प्रणीत ये तीनों महाग्रंथ हैं– (1) योगसूत्र, (2) अष्टाध्यायी पर महाभाष्य, (3) आयुर्वेद पर ग्रंथ।

विभिन्न शीर्षकों से उनके इन ग्रंथों का प्रकाशन अनादि काल से होता चला आ रहा है। शरीर–विकारों की शुद्धि के लिए आयुर्वेद (वैद्यक शास्त्र), तन–मन (चित्त) की शुद्धि के लिए योगशास्त्र और शुद्ध वाणी प्रयोग के लिए व्याकरण शास्त्र की रचना कर उन्होंने एक आदर्श मनुष्य, उसकी प्रेरणार्थक जीवन–शैली तथा मन, कर्म, वचन से एक पूर्ण शुद्ध प्राणी की अवधारणा इस भौतिक जगत को दी। ऐसी अवधारणा जो ईसा पूर्व के समय से ले कर आज तक और आगे भी अनुकरणीय रहेगी। ज्ञान–विज्ञान, चिकित्सा– शास्त्र चाहे जितना भी आगे बढ़ जाएं, पर महर्षि का योगशास्त्र कभी भी पुरातन नहीं पड़ सकता। महर्षि पतंजलि का दूसरा महत्

कार्य पाणिनीय व्याकरण अष्टाध्यायी पर लिखा उनका महाभाष्य है। पाणिनी बहुत बड़े व्याकरणज्ञ थे। पाणिनी के पश्चात् अनेक आचार्यों ने अपने–अपने ढंग से उनकी व्याख्या की, कहीं विरोध तो कहीं उनके सिद्धांतों से सहमति जताई गई। इनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध कात्यायन के वार्तिक हैं। इन वार्तिकों पर महर्षि पतंजलि ने महाभाष्य लिखा, जिसने पाणिनीय व्याकरण को नवजीवन देकर और भी लोकोपयोगी बना दिया। इसमें उन्होंने पाणिनी के सूत्रों का विवेचन किया और पूर्व में लिखे गए वार्तिकों का भी आलोचनापरक अध्ययन किया। उनके सूत्रों पर लिखे गए वार्तिकों का भी गंभीर अध्ययन किया, कहीं पूर्ववर्तियों से अपनी असहमति–सह 10/100 व्यक्त कर अपनी व्याख्या की निजता बनाए रखी। महाभाष्य की रचना शैली को महर्षि पतंजलि ने इतना ललित बनाए रखा कि सहज ही इस ग्रंथ ने अपनी महत्ता स्थापित कर ली और आज भी महाभाष्य संस्कृत के अध्ययन को एक दृढ़ आधार प्रदान करता है। महाभाष्य की विशेषता है कि उसमें पाणिनी की शास्त्रीय शब्दावली को लोक–प्रचलित शब्दावली से संयुक्त कर, उसमें मुहावरों, कहावतों, लोकप्रिय दृष्टांतों, उदाहरणों का प्रयोग कर न केवल व्याख्या को सरस और जनग्राह्य बनाया गया अपितु उसे संस्कृत के अध्ययन के लिए अपरिहार्य ग्रंथ भी बना दिया गया।

महाभाष्य को जनप्रिय बनाने में महर्षि पतंजलि की भाषा के लालित्य का विशेष योग है। उनके द्वारा प्रयुक्त मुहावरें, दृष्टांत आदि ऐसे लोकग्राह्य हैं कि व्याकरण–सूत्र सिद्धांत पाठक को सहज ही हृदयंगम हो जाते हैं। पतंजलि से पूर्व शब्द और अर्थ को लेकर बड़ा विवाद रहा, वे अपने महाभाष्य का प्रारंभ ही शब्द विवेचन से करते हैं और शब्द तथा अर्थ की सत्ता का एकत्र स्वरूप प्रतिपादित किया। इस प्रकार पाणिनी व्याकरण पर अष्टाध्यायी, का यह भाष्य वास्तविक अर्थों में महाभाष्य बन गया।

5.3.3 योग सूत्र की रचना–

महर्षि पतंजलि ने अपने योगसूत्र द्वारा योग के आठ अंगों की परिकल्पना की, इसे ही अष्टांग योग का नाम दिया गया। उन्होंने योग को चित्तवृत्तिनिरोधः अर्थात् चित्त को अवांछित दिशाओं में जाने से रोकने का दर्शन बताया। आगे जाकर योग को योगः कर्मसु कौशलम् भी कहा गया अर्थात् योग के द्वारा जीवन पद्धति को सही दिशा में ढालने की बात कही गई। वस्तुतः कंप्यूटर की भाषा में कहें तो अष्टांग योग शरीर का हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर दोनों हैं। विभिन्न आसन अगर इसका हार्डवेयर हैं तो प्राणायाम–श्वास वायु नियंत्रण, इसका सॉफ्टवेयर है। मानव महर्षि पतंजलि ने महाभाष्य लिखा, जिसने पाणिनीय व्याकरण को नवजीवन देकर और भी लोकोपयोगी बना दिया। इसमें उन्होंने मनुष्य के पूर्ण कल्याण शारीरिक, मानसिक और आत्मिक संतुलन के लिए महर्षि पतंजलि ने योग के इन आठ अंगों–यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि की अवधारणा दी। इन आठ अंगों की योगसूत्र में चार पादों के अंतर्गत रखा गया है। ये चार पाद हैं–समाधिपाद, साधनपाद, विभूतिपाद तथा कैवल्यपाद। समाधिपाद का मुख्य विषय चित्त की विभिन्न वृत्तियों के नियमन से समाधि के द्वारा आत्म शुद्धि और आत्म–साक्षात्कार करना है। द्वितीय पाद में पांच बहिरंग

साधनों–यम, नियम, आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार का विवेचन है। तृतीय पाद के अंतर्गत–ध्यान, धारणा तथा समाधि के विषय में बताया गया है। चतुर्थ पाद कैवल्यपाद मुक्ति की वह परमोच्च अवस्था है, जहां योग साधक अपने मूल स्रोत से एकाकार हो जाता है।

5.3.4 अष्टांग योग का दर्शन

योग के मूल सूत्र योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः में महर्षि पतंजलि ने अष्टांग योग का दर्शन प्रतिपादित किया है। अष्टांग योग का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

(1) **यम**–यम के पांच नियमों में सामाजिक नैतिकताएं निर्धारित की गई–

(क) **अहिंसा**–मन, कर्म, वचन से किसी को हानि नहीं पहुंचाना। इनका पालन न करना व्यक्ति और समाज दोनों के लिए ही हानिकारक है।

(ख) **सत्य**–विचारों में सत्यता, परम सत्य में स्थित रहना।

(ग) **अस्तेय**–चोरी की प्रवृत्ति न होना।

(घ) **ब्रह्मचर्य** के दो अर्थ हैं– चेतना को ब्रह्म– ज्ञान में स्थिर करना तथा सभी इंद्रियजनित सुखों में संयम बरतना।

(च) **अपरिग्रह**–अपनी आवश्यकता से अधिक संचय नहीं करना।

(2) **नियम**–इसके अंतर्गत पांच व्यक्तिगत नैतिकताएं निर्धारित की गईं, जिनसे मनुष्य कर्तव्यपरायण बन जीवन को सुव्यवस्थित कर सके।

(क) **शौच**–शरीर और मन, बाह्य तथा आंतरिक दोनों प्रकार की शुद्धि।

(ख) **संतोष**–संतुष्ट और प्रसन्न रहना।

(ग) **तप**–स्वयं से अनुशासित रहना।

(घ) **स्वाध्याय**–आत्मचिंतन और स्व के विकास के लिए उपयुक्त ग्रंथों का अध्ययन।

(च) **ईश्वर प्रणिधान**–ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण और श्रद्धा भाव।

(3) **आसन**–वास्तव में आसन योग का प्रमुख घटक है।

(4) **प्राणायाम**–योग में नाड़ी शोधन के लिए श्वास–प्रश्वास का नियंत्रण अत्यावश्यक है, इसे ही प्राणायाम कहा गया है।

(5) **प्रत्याहार**–इंद्रियों को विषयों से हटाने का नाम ही प्रत्याहार है। इससे योग साधक योग के लिए अनिवार्य अंतर्मुखिता की स्थिति प्राप्त कर लेता है।

(6) **धारणा**–चित्त को एक स्थान पर केंद्रित करना ही धारणा है।

(7) ध्यान–जब ध्येय वस्तु का ध्यान करते हुए चित्त तद्रूप हो जाता है, तो उसे ध्यान कहा जाता है। ऐसी स्थिति में चित्त और कहीं भ्रमित नहीं होता है।

(8) समाधि–आत्मा से पूर्णतः जुड़ना, शब्दों से परे परम चौतन्य की अवस्था। वस्तुतः योगी के लिए यही मोक्ष की स्थिति है।

यदि ध्यानपूर्वक देखें तो महर्षि पतंजलि प्रवर्तित योग के ये आठ अंग आज के मनोविज्ञान की दृष्टि से भी मनुष्य को सुख–संतोष प्रदान करने वाले है। अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, संतोष, स्वाध्याय आदि मनुष्य को मानसिक सुख–संतोष प्रदान करते हैं। आधुनिक मनोविज्ञान इस सब पर बल देता है। इस प्रकार योग के आठ साधनों का यह प्रदेय मनुष्य मात्र के कल्याण के लिए महर्षि पतंजलि का मानव सभ्यता के लिए अद्‌भुत वरदान है।

समस्त भारतीय दर्शन और संस्कृति का मूल भाव सदैव से ही श्सर्वधर्म समभावश को मानते हुए समस्त विश्व को श्वसुधैव कुटुंबकम् माना गया है। महर्षि पतंजलि के योग का भी यही आदर्श रहा है–बिना किसी भेदभाव के समस्त मानवता का कल्याण।

5.4 गोरखनाथ परंपरा का परिचय

योग के उत्थान और विकास में गोरखनाथ जी का बहुत बड़ा योगदान रहा है। गोरखनाथ नाथ परंपरा से थे। नाथ संप्रदाय गुरु शिष्य परम्परा पर आधारित थी।

मध्ययुग के इस सम्प्रदाय में बौद्ध, शैव तथा योग की परम्पराओं का समन्वय दिखायी देता है। यह हठयोग की साधना पद्धति पर आधारित पंथ है। शिव इस सम्प्रदाय के प्रथम गुरु एवं आराध्य हैं। इसके अलावा इस सम्प्रदाय में अनेक गुरु हुए जिनमें गुरु मच्छिन्द्रनाथ मत्स्येन्द्रनाथ तथा गुरु गोरखनाथ सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। नाथ सम्प्रदाय समस्त देश में बिखरा हुआ था। गुरु गोरखनाथ ने इस सम्प्रदाय के बिखराव और इस सम्प्रदाय की योग विद्याओं का एकत्रीकरण किया, अतः इसके संस्थापक गौरखनाथ माने जाते हैं। भारत में नाथ सम्प्रदाय को सन्यासी, योगी, जोगी, नाथ, अवधूत, कौल, उपाध्याय (पश्चिम उत्तर प्रदेश में), आदि नार्मो से जाना जाता है। इनके कुछ गुरुओं के शिष्य मुसलमान, जैन, सिख और बौद्ध धर्म के भी थे। इस पंथ के लोगो को शिव का वंशज माना जाता है।

भारत के योग की परम्परा अत्यंत प्राचीन है। एक निरीश्वरवादी परम्परा के रूप में सन ईसवी के आरम्भिक काल में पतंजलि ने अपने योग वाशिष्ट नामक ग्रंथ में इसे दर्शन का रूप देकर व्यवस्थित किया। चित्तवृत्ति निरोधक के रूप में इसका प्रयोग बराबर होता रहा। लगभग एक हजार वर्ष बाद गोरखनाथ ने हठयोग के रूप में इसे लोक जीवन के लिए सुलभ बनाया। इसके अंतर्गत गुरु की महिमा, नाड़ी साधना की

बारीकियों, शून्यावस्था की परिकल्पना ब्रह्मानंद की स्थापना आदि पर गंभीरता से विचार किया गया है। इसके साथ ही नारी संसर्ग का परित्याग कर ब्रह्मचर्य के माध्यम से जीवन की शुद्धता द्वारा सिद्धों की परम्परा का परिष्कार भी इसमें सम्पन्न किया गया।

हठयोग की साधना वस्तुतः कुंडलिनी को जाग्रत करने की साधना है। इसके अंतर्गत योगी को प्राण–वायु का विरोधकर इड़ा–पिंगला नाड़ियों को सुषुम्ना नाड़ी की सहायता से कुंडलिनी तक पहुँचाना पड़ता है। कुंडलिनी शरीर के पृष्ठ भाग में स्थित रीढ़ की हड्डी के निचले और अंतिम हिस्से में स्थित होती है। योगियों की मान्यता के अनुसार यह साढ़े तीन वलयों में लिपटी सर्पिणी की भाँति सुषुप्त अवस्था में रहती है। इड़ा–पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों के सहयोग से यह जागृत होकर ऊर्ध्वमुखी होने के बाद शरीरस्थ विभिन्न चक्रों को जागृत करते हुए, सहस्रार चक्र में पहुँच शून्यावस्था को प्राप्त कर परमानंद का अनुभव कराती है। साधकों ने इसे ही दशम द्वार माना है। यहाँ पहुँच कर साधक दुनिया की मोह–माया से मुक्त होकर मोक्षावस्था को प्राप्त करता है।

हठयोग साधना की प्रक्रिया का परिचय देते हुए गोरखनाथ ने बहुत सी बातें कही हैं। इसमें गुरु की महत्ता को सर्वोपरि माना गया है। सदगुरु की सहायता के बिना योगी सिद्धि को नहीं प्राप्त कर सकता। इसके साथ ही गोरक्ष सिद्धांत संग्रहश में पुस्तकीय ज्ञान की खिल्ली भी उड़ाई गई है। इसके बोझ से दबे लोगों को भारवाही गर्दभ की संज्ञा दी गई है। इसके साथ ही इस ग्रंथ में स्मार्त हिंदू धर्म की विशुद्धता और उसकी आचार बहुलता का विस्तार से खंडन किया गया है।

गोरखनाथ द्वारा निरूपित हठयोग साधना को समझने के लिए शरीर में कुंडलिनी की स्थिति और स्वरूप को समझना आवश्यक है। पीठ में स्थित मेरुदंड या रीढ़ की हड्डी जहाँ सीधे जाकर उपस्थ के मध्यभाग में लगती है वहाँ त्रिकोण रूप में एक स्वयंभू लिंग होता है, जिसे अग्निचक्र कहते हैं। यहाँ स्थित स्वयंभूलिंग को साढ़े तीन फेरों में लपेट कर सर्पिणी की भाँति कुंडलिनी स्थित होती है। इसके ऊपर चार पल्लवों वाला एक कमल होता है, जिसे मूलाधार चक्र कहते हैं। उसके ऊपर नाभि के पास स्वाधिष्ठान चक्र होता है, जिसका आकार छः दलों के कमल जैसा होता है। इस चक्र के ऊपर मणिपूर चक्र होता है, जो दस दलों (पल्लवों) का होता है। इसके ऊपर हृदय के पास अनाहत चक्र होता है जिसके बारह दल होते हैं। इसके भी ऊपर कंठ के पास विशुद्धाख्य चक्र है, जिसका आकार सोलह दलों से युक्त कमल होता है। इससे और ऊपर जाने पर दोनों भवों के मध्य में आज्ञा नामक चक्र होता है, जिसके सिर्फ दो ही दल होते हैं। इन षट्चक्रों के भेदन के बाद मस्तक में स्थित शून्य चक्र मिलता है, जहाँ जीवात्मा को पहुँचा देना योगी का चरम लक्ष्य है। इस स्थान को सहस्रदल कमल की संज्ञा दी गई है, योगियों के यहाँ इसी को सहस्रार चक्र या कैलास भी कहा गया है।

इस प्रकार गोरखनाथ ने हठयोग साधना के लिए अनिवार्य सभी विषयों और स्थितियों का प्रतिपादन किया है। इसके साथ ही योगियों के लिए उपदेश, नीतिपरक बातें, परम्परागत मर्यादा से मुक्त सामाजिक

आचार–व्यवहार पर इन्होंने विचार किया है। लौकिक विषयों से मन को हटाकर अंतःसाधना पर बल देते हुए वैराग्य को हठयोग साधना का प्रथम सोपान माना गया है।

5.4.1 गोरखनाथ जी का यौगिक योगदान

योगी गोरक्षनाथ के द्वारा लिखे गये ग्रन्थों के विषय में ठीक–ठीक ज्ञान नहीं मिल पाया है। इनके बहुत से ग्रन्धों का परिचय आज सुलभ है परन्तु इनके द्वारा कुल कितने योग एवं तंत्र ग्रन्थ लिख गये यह कहना कठिन है।

हठयोग, गोरक्षशतक, ज्ञानामृत, गोरक्षकल्प, गोरक्षसहस्रनाम इनके सर्वसुलभ ग्रन्थ काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज में चतुरशीत्यासन, योग चिन्तामणि, योग महिमा, योग मार्तण्ड, योग सिद्धान्त पद्धति, विवेकमार्तण्ड और सिद्ध–सिद्धान्त पद्धति आदि संस्कृत ग्रन्थ और मिले हैं। सभा ने योगी गोरक्षनाथ के ही लिखे हिन्दी के 37 ग्रन्थ खोजें हैं जिनमें मुख्य ग्रन्थ अधोलिखित हैं।

1. गोरखबोध
2. दत्त–गोरखसंवाद
3. गोरखनाथाजीरा पद
4. गोरखनाथनी के स्फुट ग्रन्थ
5. ज्ञान सिद्धान्त योग
8. ज्ञानतिलक
9. योगेश्वरीसाखी
10. नरवैबोध
11. विराट पुराण
12. गोरखसार आदि।

5.4.1 योगी गोरक्षनाथ द्वारा दी गई योग साधनाएँ–

योगी गोरक्षनाथ ने मुख्य रूप से हठयोग की साधना का ही प्रचार–प्रसार किया। हठयोग राजयोग को प्राप्त करने का साधन भी है और दोनों एक दूसरे के अभिन्न अंग भी हैं। गोरक्षनाथ ने हठयोग से मन के संयम की बात कही है व मन संयम को मोक्ष का द्वार बताया है (गोरक्ष संहिता 1/4)1

गोरक्षनाथ ने अपनी साधनाओं में श्प्राणश को मुख्य स्थान दिया है। योग ग्रन्थों के अनुसार प्राण साधना द्वारा मन का नियंत्रण सम्भव है, ऐसा वर्णन मिलता है। हमारे शरीर में असंख्य नाडियां जाल के समान फैली

हुई है एवं इन नाडियों का उद्भव स्थल मूलकन्द माना गया है। योगी गोरक्षनाथ ने इस मूलकन्द से 72000 (बहत्तर हजार) नाड़ियों की उत्पत्ति मानी है।

ऊध्व मेढादधोनाभेः कन्दयोनिः खगाडवत् ।

तत्रनाडया समुत्पन्नाः सहस्राणां द्विसप्ततिः ।।

(गोरक्षशतक 25)

योगी गोरक्षनाथ की साधनाओं में कुण्डलिनी साधना का प्रमुख स्थान है एवं नाड़ियों में प्रमुख नाडी सुषुम्ना से ही कुण्डलिनी एवं प्राण ऊध्र्वमुख होकर सहस्रार में जाकर विश्रान्ति को प्राप्त होते हैं। हठयोग में हं प्राण का वाचक है और श्ठं अपान का वाचक है। इन दोनों को मिलाकर सम करना ही राजयोग की सिद्धि है।

गुरू गोरक्षनाथ के अनुसार, व्यष्टिपिण्ड ब्रह्माण्ड का ही छोटा रूप है। मनुष्य के किस अंग में ब्रह्माण्ड का कौन सा अंश है इसका वर्णन गोरक्षनाथ कृत सिद्धसिद्धान्त संग्रह में प्राप्त होता है। योगी ध्यान एवं चिन्तन के गहन अभ्यास से समस्त ब्रह्माण्ड को अपने भीतर अनुभव कर उससे स्वयं को मिलाकर, एकाकार कर सकता है। ब्रह्माण्ड में व्याप्त समस्त रहस्यों के उत्तर उसे इससे प्राप्त हो सकतें हैं।

गुरू गोरक्षनाथ ने क्रमिक विकास से मानव मन के गहन तलों के लिये प्राणायाम की साधना व योग के छः अंगो की साधना का वर्णन किया है एवं इसे घडंगयोग कहा जाता है।

आसनं प्राणं संरोधः प्रत्याहाराश्च धारणा ।

ध्यान समाधिरेतानि योगांगानि वदन्ति षट् ।।

(गोरक्ष संहिता 1/6)

पिण्ड में अखण्ड ब्रहमाण्ड की सहज अभिव्यक्ति के माध्यम से परमात्म–तत्व का पूर्ण ज्ञान व अनुभव सम्भव है। पिण्ड एवं ब्रहमाण्ड की समरसता ही नाथ योगी सम्प्रदाय के साधना का मुख्य लक्ष्य है। इसी उपलब्धि हेतु गोरक्षनाथ जी कहते हैं–

परपिण्डादिस्वपिण्डान्तं ज्ञात्वा परमदे समरसं कुयार्त।

(सिद्धसिद्धान्त पद्यति 5/2)

गुरु गोरक्षनाथ इस समरस्य में गुरु की कृपा को अत्यन्त आवश्यक मानते हैं। गुरु के द्वारा आसन प्राणायाम, षट्चक्र भेदन एवं षट्कर्म आदि का विधिपूर्वक अभ्यास कर योगी समरस को प्राप्त करता है।

कुण्डलिनी साधना के सम्बन्ध में योगी गोरक्षनाथ ने अनेक स्थानों पर बहुत ही गूढ़ ज्ञान को बताया है। वस्तुतः हठयोग की साधना का मुख्य लक्ष्य गुरू गोरक्षनाथ ने कुण्डलिनी जागरण ही बताया है। गोरक्षशतक में कहा गया है–

कन्दोव कुण्डली शक्तिः सुप्ता मोक्षाय योगिनाम।

बन्धनाय च मूढ़ानां यस्ता वेत्ति से योगवित।

माना गया है योगी गोरक्षनाथ ने इस मूलकन्द से 72000 (बहत्तर हजार) नाड़ियों की उत्पत्ति मानी है।

ऊध्व मेढादधोनाभेः कन्दयोनिः खगाण्डवत् ।

तत्रनाडया समुत्पन्नाः सहस्राणां द्विसप्ततिः ।।

(गोरक्षशतक 25)

योगी गोरक्षनाथ की साधनाओं में कुण्डलिनी साधना का प्रमुख स्थान है एवं नाड़ियों में प्रमुख नाडी सुषुम्ना से ही कुण्डलिनी एवं प्राण ऊध्र्वमुख होकर सहस्रार में जाकर विश्रान्ति को प्राप्त होते हैं। हठयोग में प्राण का वाचक है और ठ अपान का वाचक है। दोनों को मिलाकर सम करना ही राजयोग की सिद्धि है।

गुरू गोरक्षनाथ के अनुसार, व्यष्टिपिण्ड ब्रह्माण्ड का ही छोटा रूप है। मनुष्य के किस अंग में ब्रह्माण्ड का कौन सा अंश है इसका वर्णन गोरक्षनाथ कृत सिद्धसिद्धान्त संग्रह में प्राप्त होता है। योगी ध्यान एवं चिन्तन के गहन अभ्यास से समस्त ब्रह्माण्ड को अपने भीतर अनुभव कर उससे स्वयं को मिलाकर, एकाकार कर सकता है। ब्रह्माण्ड में व्याप्त समस्त रहस्यों के उत्तर उसे इससे प्राप्त हो सकतें हैं।

गुरू गोरक्षनाथ ने क्रमिक विकास से मानव मन के गहन तलों के लिये प्राणायाम की साधना व योग के छः अंगो की साधना का वर्णन किया है एवं इसे घडंगयोग कहा जाता है

आसनं प्राणं संरोधः प्रत्याहाराश्च धारणा ।

ध्यान समाधिरेतानि योगांगानि वदन्ति षट् ।।

(गोरक्ष संहिता 1/6)

पिण्ड में अखण्ड ब्रहमाण्ड की सहज अभिव्यक्ति के माध्यम से परमात्म–तत्व का पूर्ण ज्ञान व अनुभव सम्भव है। पिण्ड एवं ब्रहमाण्ड की समरसता ही नाथ योगी सम्प्रदाय के साधना का मुख्य लक्ष्य है। इसी उपलब्धि हेतु गोरक्षनाथ जी कहते हैं–

परपिण्डादिस्वपिण्डान्तं ज्ञात्वा परमदे समरसं कुयार्त।

(सिद्धसिद्धान्त पद्यति 5/2)

गुरु गोरक्षनाथ इस समरस्यश में गुरु की कृपा को अत्यन्त आवश्यक मानते हैं। गुरु के द्वारा आसन प्राणायाम, षट्चक्र भेदन एवं षट्कर्म आदि का विधिपूर्वक अभ्यास कर योगी समरस को प्राप्त करता है।

कुण्डलिनी साधना के सम्बन्ध में योगी गोरक्षनाथ ने अनेक स्थानों पर बहुत ही गूढ़ ज्ञान को बताया है। वस्तुतः हठयोग की साधना का मुख्य लक्ष्य गुरू गोरक्षनाथ ने कुण्डलिनी जागरण ही बताया है। गोरक्षशतक में कहा गया है–

कन्दोव कुण्डली शक्तिः सुप्ता मोक्षाय योगिनाम।

बन्धनाय च मूढ़ानां यस्ता वेत्ति से योगवित।

योगी गोरक्षनाथ ने मूल बन्ध, उड्डीयान बन्ध एवं जालन्धर बन्ध के अभ्यास से प्राणापान के संयोग द्वारा नाभि स्थित अग्नि के प्रदीप्त होने पर कुण्डलिनी शक्ति के जाग्रत होने की साधना कही है। जाग्रत होकर कुण्डलिनी मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि एवं आज्ञा चक्र को भेदती हुई सहस्रार में परमशिव से एकाकार हो जाती है।

गोरक्षनाथ जी ने सर्वप्रथम शरीर की शुद्धि एवं फिर प्राण व मन की शुद्धि के द्वारा समरस होने की कला बताकर अपनी साधनाओं को सहज एवं सरल परन्तु बिना अभ्यास व गुरु के दुरूह बताया है।

5.4.2 गोरक्ष संहिता – एक परिचय

अब आप योगी गोरक्षनाथ के महान ज्ञानी होने का परिचय देती हुई महान कृति गोरक्ष संहिता का सूक्ष्म परिचय प्राप्त करेंगे।

महायोगी गोरक्षनाथ कृत गोरक्ष संहिता उनके परमज्ञान का परिचय स्वयं ही करा देती है। वे योग विद्या के परम जानकार एवं आचार्य थे। मत्स्येन्द्रनाथ के पश्चात् उनके शिष्य गोरक्षनाथ ने नाथ सम्प्रदाय के ज्ञान को प्रचारित प्रसारित किया। योगी गोरक्षनाथ ने ज्ञान के अगाध भण्डार में से अति महत्वपूर्ण ज्ञान को संग्रहित कर अपने संग्रह गोरक्ष संहिता में प्रकट किया।

गोरक्ष संहिता दो सौ श्लोकों का बढ़ा ही सुन्दर और गूढ़ ज्ञान से भरा हुआ संग्रह है। यह 2 शतकों में बँटा हुआ है। एवं प्रत्येक शतक में श्लोंकों की संख्या हर शतक के साथ आप जान सकेंगे। आगे आप विस्तारपूर्वक प्रत्येक शतक का परिचय प्राप्त करेंगे।

प्रथम शतक–

इस शतक में सौ श्लोक हैं। संहिता का प्रथम श्लोक गुरु वन्दना से प्रारम्भ होता है। क्योंकि सभी विद्याएँ गुरू के मुख से ही प्राप्त की जाती है। परब्रह्म तक पहुँचने का मार्ग गुरू से ही होता हुआ जाता है। प्रथम शतक में योगी गोरक्षनाथ ने मन का संयम योग द्वारा ही सम्भव है ऐसा कहा है। योग के छः अंगों का वर्णन करते हुये वे कहते हैं–

आसनं प्राण संरोधः प्रत्याहारश्च धारणा।

ध्यानं समाधिरेतानि योगांगानि वदन्ति षट्।।6।।

आसनों में यहां सिद्धासन और पदमासन का वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् शरीर के 19 अवयवों का वर्णन किया गया है। तत्वों के वर्णन के पश्चात् शरीर के मुख्य चक्र छः हैं ऐसा कहकर उनका वर्णन किया गया है। दस नाड़ी, दस वायु का ज्ञान कराया गया है। प्राणायाम का वर्णन 1/37.38 में किया गया है। मुद्राओं का वर्णन उनके फलों सहित किया गया है। त्रिबन्धों का वर्णन भी इसी शतक में किया गया है।

द्वितीय शतक–

द्वितीय शतक में प्राणायाम का विस्तार पूर्वक वर्णन मिलता है। समाधि का स्वरूप व योगसिद्धि के चिह्नों का वर्णन इसी शतक में विस्तार पूर्वक किया गया है। प्रत्याहार वर्णन, धारणा वर्णन, चक्र वर्णन, ध्यान योग वर्णन एवं ध्यान और समाधि का भेद इसी शतक में किया गया है।

इस प्रकार आपने गोरक्ष संहिता में वर्णित योग के विभिन्न अंगों के विषय में जाना। आपने जाना कि गोरक्ष संहिता में आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि का विस्तार पूर्वक वर्णन श्लोकों में किया गया है। कुण्डलिनी शक्ति, चक्र वर्णन, मुद्रा वर्णन तथा बन्धों का वर्णन भी विस्तार पूर्वक किया गया है।

5.5 आदि शंकराचार्य

यदि भारत आज भी वैदिक धर्म के पथ पर चल रहा है तो इसका पूरा श्रेय शंकराचार्य को ही है। शंकराचार्य के पूर्व भारत की स्थिति अव्यवस्था से परिपूर्ण थी। धर्म एवं दर्शन की अलग–अलग भ्रमित करने वाली व्याख्या चरम पर थी। चार्वाक, कापालिक, शाक्त, सॉख्य, बौद्ध, एवं कई छोटे–बड़े धर्म, सम्प्रदायों एवं दर्शनों का प्रादुर्भाव इस काल में हो चुका था व सभी विचारधाराएँ एक दूसरे से उलझ रही थीं। लोक समूह में पूरी तरह उलझन व्याप्त थी कि कौन सा पथ उन्हें धर्म से जोड़ेगा व कौन सा नहीं। एक गणना के अनुसार तत्कालीन समय में लगभग बहत्तर धर्म पथ समाज में उदीयमान थे। जिस काल में इतनी विचारधाराएँ हो वहाँ सहज ही उलझन की स्थिति उत्पन्न होगी।

आचार्य शंकर के जन्म से पूर्व समाज की यह स्थिति थी। इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब–जब समाज में धार्मिक पतन की स्थिति आती है तो उद्धारकर्ता शीघ्र ही जन्म लेते हैं।

5.5.1 आदि शंकराचार्य जी का जीवन परिचय–

शंकराचार्य का जन्म आलवाइन से छः मील दूर पूर्व में कालडि नामक ग्राम में ई० सन् 788 में हुआ। ये एक गरीब नम्बूदरी ब्राह्मण परिवार में जन्में थे। इनके पितामह शिव मंदिर के पुजारी थे। इनके पिता का नाम

शिवत था व माता का नाम आर्यम्बा था। बहुत साल तक शिवगुरू के सन्तान न होने पर पति–पत्नि ने भगवान शिव की आराधना की एवं आर्त प्रार्थना के फलस्वरूप बसन्त ऋतु के आर्दा नक्षत्र में शुभ मुहूर्त में इन्हें पुत्र रत्न प्राप्त हुआ। भगवान शंकर के आशीर्वाद के पश्चात् मिले पुत्र का नाम अपने आराध्य के ही नाम पर इस का नाम शंकर रखा गया। बाल्यकाल से ही शंकर शुद्ध चित्त एवं दृढ़ निश्चयी बालक थे। यह बात हम इस कथा से जान सकते हैं– शंकर 5 वर्ष के रहे होंगे जब उनके पिता ने उन्हें देवी राज राजेश्वरी के सम्मुख दूध का पात्र अर्पित करने का आदेश दिया एवं उसके पश्चात् प्रसाद रूप में माता को व स्वयम् लेने को कहा। पिता के जाने के बाद बालक शंकर ने माता राजराजेश्वरी को दूध का कटोरा अर्पित किया व दूच गृहण करने की प्रार्थना करने लगे। बालक ने जब आँखें खोली तो देखा कि कटोरा दूध से पूर्व की भांति भरा है। बालक को बड़ी निराशा हुई और सोचने लगा कि मी राजराजेश्वरी यदि गृहण नहीं करेंगी तो पिता द्वारा मुझे दिया गया कार्य अधूरा रह जायेगा एवं वह किस प्रकार प्रसाद बांट पाऐगा। बालक पूरे मनोयोग से माँ राजराजेश्वरी से दूध गृहण करने का आग्रह करने लगा। बहुत प्रार्थना करने के बाद भी जब दूध का कटोरा पहले जैसा ही भरा हुआ देखा तो बालक नक का कोमल मन बड़ा आहत हुआ, उसने प्रण किया कि यदि माँ राजराजेश्वरी दूध गृहण नहीं करेंगी तो वह जीवित नहीं रहेगा। बालक माँ से प्रार्थना करते–करते आँखें बन्द किये बैठा रहा। बालक की यह करूण प्रार्थना व दृढ निश्चय देखकर मी राजराजेश्वरी प्रकट हुई और उन्होंने पूरा दूध पी लिया। बालक ने जब देखा कि माँ ने दूध पी लिया है।

तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ और प्रसाद बाँटने के लिये जैसे ही कटोरा उठाया तो वह पूरा कटोरा खाली देखकर हतप्रभ रह गया। उसने माँ राजराजेश्वरी से प्रार्थना की, कि उसके पिता उन्हें दूध अर्पित करने के बाद प्रसाद वितरित करते हैं लेकिन अब तो इसमें बाँटने के लिये कुछ बचा ही नहीं है, आप इसे थोड़ा दूध से पुनः भर दें। भगवती राजराजेश्वरी ने अपना दूध ही उस कटोरे में भर दिया व बालक के शुद्ध चित्त व दृढ़ निश्चय की प्रशंसा करते हुये अर्न्तधान हो गईं।

यह जगजननी माँ राजराजेश्वरी का ही आर्शीवाद रूपी दूध का ही बल था जो बालक 16 वर्ष की उम्र में ही सभी शास्त्रों के ज्ञाता हो गये। उन्होंने इसी आयु में गीता, उपनिषद तथा ब्रह्मसूत्र के भाष्यों की रचना कर दी।

जब बालक शंकर 7 वर्ष के थे तो उनके पिता का देहान्त हो गया, माता आर्यम्बा ने बड़ी कुशलता से पुत्र का लालन–पालन किया। उन्होंने शंकर के शास्त्र अध्ययन हेतु विशेष व्यवस्था की। इसी अवस्था में ही उनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ।

5.5.2 सन्यास–

बाल्यकाल से ही शंकर का मन अन्तर्मुखी था एवं सन्यास के लिये तीव्र जिज्ञासा उन्हें थी। एक दिन शंकर अपनी माता के साथ नदी में स्नान करने गये, जैसे ही शंकर नदी में थोड़ा भीतर गये तो उनका पैर

मगरमच्छ ने पकड़ लिया। माता यह दृश्य देखकर घबरा गई व मदद के लिये पुकारने लगीं। कोई सहायता के लिये नहीं आया। उचित अवसर जानकर शंकर ने माता से सन्यासी के रूप में मरने की इच्छा व्यक्त की और कहा कि, इस काल में यदि वे सन्यास की अनुमति दे देंगी तो वह जीवन रहते तो सन्यासी न बन सका कम से कम मरते हुये सन्यासी मरना चाहता है। माता ने तुरन्त आज्ञा दे दी। उसी समय शंकर ने आतुर सन्यास ग्रहण कर लिया। जैसे ही बालक शंकर ने सन्यास लिया मगरमच्छ स्वतरू ही पानी में चला गया व बालक शंकर सकुशल लौट आये।

बालक शंकर इस घटना के पूर्व ही माता से सन्यास हेतु अनुमति लेना चाहते थे परन्तु माता ने ममता वश उन्हें इसकी अनुमति नहीं दी। माता ने बालक शंकर से कहा कि उसके चले जाने पर वह सर्वथा अकेली रह जाऐगी और अन्तिम दिनों में उनकी सेवा करने वाला भी कोई नहीं रहेगा। मृत्यु उपरान्त उनका दाह–संस्कार करने वाला कोई न रहेगा। बालक शंकर ने माँ को आश्वासन दिया कि वह उनके अन्तिम समय में उनके साथ रहेगा व उनका अन्तिम संस्कार करेगा। परन्तु माँ को वे पूरी तरह सन्यास लेने के लिये राजी न कर सके। शायद इसी कारण बाद में उपरोक्त वर्णित घटना उनके आतुर सन्यास का कारण बनी।

आतुर–सन्यास प्राप्त करने के बाद शंकर अपनी माता को अपने सम्बन्धियों के पास छोड़कर विधिवत सन्यास के लिये घर–सम्पत्ति छोड़कर चले गये व गुरू को खोजने लगे।

8.5.3 गुरु मिलन–

तरूण शंकर केरलश को छोड़कर गुरू की खोज में उत्तर भारत की ओर निकल पड़े। नर्मदा के तट पर शंकर एक सन्यासी से मिले। सन्यासी को साष्टांग प्रणाम करने के बाद शंकर ने उनसे सन्यास दीक्षा के लिये कहा। सन्यासी ने उनसे प्रश्न किया– तुम कौन हो? शंकर ने भक्ति पूर्वक उत्तर दिया न मैं आकाश हूँ, न अग्नि हूँ, न जल हूँ, न पृथ्वी। गुरू उनके ये वचन सुनकर प्रसन्न हुये व उन्हें सन्यास देने के लिये राजी हो गये। गुरू के पूछने पर उन्होंने अपने आतुर सन्यास की कथा कह सुनाई व गुरू से विधिवत सन्यास के लिये प्रार्थना की। ये सन्यासी स्वामी गोविन्दभगवदपाद थे एवं इनके गुरू गौणपादाचार्य अद्वैत वेदान्त के महान भाष्यकार थे। स्वामी गोविन्द ने शंकर को विधिवत् सन्यास दीक्षा दी एवं उन्हें वेद, ब्रह्मसूत्र, उपनिषद, गीता आदि का उन्नत ज्ञान दिया। अपने गुरू गोविन्दपाद से उन्होंने शीघ्र ही आध्यात्मिक विद्या ग्रहण कर ली और गुरू आज्ञा से ये काशी चले गये। काशी में ही उन्होंने ब्रह्मसूत्र, गीता व उपनिषदों पर भाष्य लिखे।

5.5.4 महायात्रा–

अपनी दिग्विजय यात्राओं के दौरान आचार्य शंकर ने अनेक मतों के विद्वानों को अपनी तीव्र मेधा एवं प्रज्ञा से अद्वैत वेदान्त को मानने पर विवश किया। उन्हीं में एक अभिनव गुप्त थे जो कि शाक्त भाष्यकार रहे एवं प्रकाण्ड विद्वान थे। गोहाटी में अभिनव गुप्त ने अपने अभिचार कौशल से शंकराचार्य पर मारण आदि तान्त्रिक प्रयोग किये। इससे शंकराचार्य अर्श रोग से पीड़ित हो गये। परन्तु पद्मपाद, जो कि आचार्य शंकर के

श्रेष्ठ शिष्यों में एक थे. इस विद्या का उन्मूलन करना जानते थे। उन्होंने अपने गुरू को इस रोग से मुक्त कर दिया। इसके पश्चात् शंकराचार्य हिमालय यात्रा पर चले गये। हिमालय क्षेत्र में उन्होंने जोशी मठ तथा बदरी में एक मंदिर की स्थापना की। यहाँ से वे उच्च पर्वतीय मालाओं की ओर चले गये और इसी क्रम में वे केदारनाथ पहुंच गये। 32 वर्षीय जगदगुरू शंकराचार्य यहीं पर 820 ई0 में ब्रह्म में विलीन हो गये।

5.5.5 आचार्य शंकर की जगदगुरू यात्रा–

आचार्य शंकर ने अपनी आध्यात्मिक यात्रा के फलस्वरूप ब्रह्म का स्वरूप समझा एवं उस स्वरूप का दर्शन सारे विश्व को कराने के उददेश्य से, जो कि उनके गुरू का आदेश था, नगर नगर भ्रमण पर निकल पड़े। वे विभिन्न मतावलम्बी सम्प्रदायों के शीर्ष गुरूओं से मिले। उनके साथ विभिन्न मतों पर उनका वाद–विवाद हुआ और आचार्य शंकर ने सभी को निर्विवाद रूप से वेदों की ओर लौटने पर विवश कर दिया। अपने भाष्यों के माध्यम से उन्होंने ऐसे अकाट्य मत रखे कि कोई उनका रास्ता न रोक सका। वे समस्त प्रख्यात ज्ञान केन्द्रों में गये जिनका प्रभुत्व उस समय सर्वाधिक था। उन्होंने वहां के पण्डितों व आचार्यों को शास्त्रार्थ की चुनौती दी और उनके समक्ष अपने तर्क प्रस्तुत किये और अपनी सच्ची आस्था के बल पर उन्होंने सभी को उनके मतों को स्वीकार करने पर विवश कर दिया। उन्होंने वेदान्त सूत्र भाष्य के भाष्यकर्ता भट्ट भास्कर को अपने सटीक व श्रेष्ठ उद्धहरणों से पराजित किया। उन्होंने शास्त्रार्थ में श्खण्डन खण्ड खाद्य के प्रणेता हर्ष, अभिनव गुप्त, मुरारी मिश्र, उदयाचार्य, धर्मगुप्त, कुमारिल भट्ट तथा प्रभाकर को पराजित किया। आचार्य शंकर ने कर्ममिमांसा के प्रकाण्ड विद्वान मण्डन मिश्र व उनकी विदुषी पत्नि, जो स्वयम् सरस्वती का अवतार मानी जाती हैं, को अपना शिष्यत्व ग्रहण करने पर विवश कर लिया। यह कथा कुछ इस प्रकार है– आचार्य शंकर अनेक विद्वानों को पराजित कर अपने मत का प्रचार करते हुऐ महिष्मती पहुंचे। मण्डन मिश्र महिष्मती की राज्य सभा के मुख्य पण्डित थे।

मण्डन मिश्र के हृदय में कर्म मिमांसा के संस्कार होने के कारण वे सन्यास को तुच्छ व पलायनकारियों का मार्ग समझते थे।

एक दिन शंकर भ्रमण करते हुये उस स्थान पर पहुंचे जहां मण्डन मिश्र श्राद्ध–संस्कार कर रहे थे। मण्डन मिश्र ने जैसे ही शंकराचार्य को उस स्थान पर आते देखा तो वे क्रोध से भरकर उन्हें अशोभनीय बातें कहने लगे। उत्तर में शंकराचार्य ने भी उन्हें कठोर शब्द कहे। वाद–विवाद कठोर व अशोभनीय होते देख पास ही खड़े पण्डितों ने मण्डन मिश्र को रोका। इसके पश्चात् शंकराचार्य ने मण्डन मिश्र को धार्मिक वाद–विवाद की चुनौती दी जिसे मण्डन मिश्र ने स्वीकार कर लिया। वाद–विवाद का दिन निश्चित किया गया व निर्णायक के तौर पर मण्डन मिश्र की पत्नि उभय भारती को स्वीकार किया गया। यह पहले ही निश्चित कर लिया गया कि यदि शंकराचार्य पराजित हुये तो ये वैवाहिक जीवन व्यतीत करेंगें और यदि मण्डन मिश्र पराजित हुये तो वे सन्यास ग्रहण कर स्वयं अपनी पत्नि से प्रथम दान स्वीकार करेंगें।

यह शास्त्रार्थ सत्रह दिनों तक अबाध चलता रहा। सत्रवें दिन मण्डन मिश्र के गले में पड़ी हुई माला मुरझाने लगी जिसका अभिप्राय यह था कि वह पराजित हुआ है। उभय भारती ने यह वाद–विवाद नहीं सुना। वह यह कहकर अपने कार्य में व्यस्त हो गई कि जिसके गले की माला पहले मुरझाने लगेगी वह पराजित माना जायेगा। मण्डन मिश्र की पराजय की खबर सुनकर उभय भारती ने शंकराचार्य को यह कहकर शास्त्रार्थ के लिये कहा कि अभी उन्होंने आधी ही विजय प्राप्त की है, मण्डन मिश्र की अद्धांगिनी होने के नाते उन्हें उससे भी शास्त्रार्थ करना पड़ेगा। आचार्य शंकर ने स्त्री से शास्त्रार्थ के लिये मना किया परन्तु उभय भारती ने अनेक उदाहरणों से पूर्व में महिला संतों, विदुषियों के पुरूष विद्वानों से हुये शास्त्रार्थ का हवाला देकर आचार्य शंकर को शास्त्रार्थ के लिये विवश कर दिया। उभय भारती एवं शंकराचार्य के बीच शास्त्रार्थ सत्रह दिनों तक चलता रहा। भारती विभिन्न शास्त्रों के उदाहरण देकर अपनी बात की पुष्टि करती रहीं परन्तु अन्ततः उन्हें इस बात का पूर्वाभास होने लगा कि आचार्य शंकर उनकी बातों को आसानी से काट सकते हैं। अतः उभय भारती ने बाल ब्रह्मचारी सन्यासी पुरूष को काम शास्त्र के माध्यम से वाद–विवाद में हराने का निश्चय किया।

जब भारती विभिन्न उदाहरणों से दाम्पत्य जीवन सम्बन्धी विचारों को रखने लगीं तो शंकराचार्य निरूत्तर होने लगे। शंकराचार्य ने काम सम्बन्धी वाद–विवाद के लिये एक माह का अवसर मांगा जिसे भारती ने स्वीकार कर लिया। शंकराचार्य महिष्मती से काशी आ गये व गहन ध्यान में उन्होंने राजा अमरूक की मृत्यु होते देखी। अपनी योग शक्ति से आचार्य शंकर ने अपने सूक्ष्म शरीर से राजा के मृत शरीर में प्रवेश कर लिया। शंकराचार्य के स्थूल शरीर की रक्षा का भार उनके शिष्यों पर था। शिष्यों ने दिन–रात गुरू के शरीर की मन्त्रोच्चारण के साथ रक्षा की व शरीर को ज्यों का त्यूं रखने के लिये घोर साधना की। राजा के शरीर का दाह संस्कार होने वाला था उसी समय शंकराचार्य का सूक्ष्म शरीर मृत शरीर के भीतर प्रविष्ट हुआ। राजा को पुनः जीवित देखकर प्रजा में प्रसन्नता की लहर दौड़ पड़ी। शंकर गृहस्थ आश्रम का सुख भोगने लगे। शीघ्र ही मंत्रियों व रानियों को इस बात का आभास होने लगा कि राजा के शरीर में किसी श्रेष्ठ पुरूष का वास है। अतः उन्होंने दूतों को किसी निर्जन वन या किसी गुहा में गुप्त रूप से संरक्षित किसी मानव शरीर की खोज तथा उसकी प्राप्ति के पश्चात् उसे जलाने का निर्देश देकर भेजा। मंत्रियों व रानियों ने ऐसा राजा को दीर्घकाल तक जीवित रखने के उददेश्य से किया। समय बीतता गया, व माया के शक्तिशाली पंजों ने आचार्य शंकर की आत्मा के ज्ञान को धूमिल कर दिया। शंकराचार्य के शिष्यों को उनके वापस आने की प्रतीक्षा थी। समय अधिक हो जाने पर उन्हें चिन्ता होने लगी। शिष्यों की एक टुकड़ी शंकराचार्य की आत्मा की खोज में निकल पड़ी। उन्हें अपने गुरु के सूक्ष्म शरीर को शीघ्र ही खोज निकालना था नहीं तो वे शास्त्रार्थ में पराजित माने जाते। शिष्यों को राजा असरूक के पुनः जीवित होने की घटना का समाचार मिला। शिष्य समझ गये कि हो न हो उनके गुरु राजा के रूप में अपने पूर्व जीवन को भूल चुके हैं। माया के बन्धन को हटाने के लिये उन्होंने राजा के सम्मुख जाकर धर्म चर्चा की। उन्होंने अपनी चर्चा को सुमधुर एवं मर्मस्पर्शी कण्ठ से गाया जिसके फलस्वरूप शीघ्र ही आचार्य की स्मृति लौट आई और वे पुनः अपने शरीर में लौटने को उद्धत हुये।

5.5.6 आदि शंकराचार्य जी का यौगिक योगदान–

आदि शंकराचार्य जी का योग में अद्वितीय योगदान रहा है। उनके यौगिक योगदान को हम विस्तार से जानेंगे

5.5.7 आचार्य शंकर की अद्वैत वेदान्त शिक्षा–

शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्रों, उपनिषदों, तथा गीता पर भाष्य लिखे। ब्रह्मसूत्र पर उनके भाष्य को शारीरिक भाष्य कहा जाता है। भारत में जितने भी दर्शनों का विकास हुआ उनमें सबसे महत्वपूर्ण दर्शन वेदान्त ही रहा है। वेदान्त दर्शन का आधार उपनिषद हैं। वेदान्त का अर्थ है जिसमें वेदों का निचोड, अन्तिम सत्य का प्रतिपादन है। पहले वेदान्त शब्द का प्रयोग उपनिषदों के लिये ही किया जाता था क्यों कि उपनिषद वेदों के अन्तिम भाग थे। वेदान्त दर्शन का आधार ब्रह्मसूत्र कहा जाता है एवं ब्रह्मसूत्र वादरायण व्यास की कृति है। ब्रह्मसूत्र उपनिषदों के विचारों में सरलता व सामन्जस्य लाने के लिये लिखे गये थे।

वेदान्त दर्शन को चार सम्प्रदायों में बांटा गया है–

1. **अद्वैतवाद**
2. **विशिष्टाद्वैतवाद**
3. **द्वैतवाद**
4. **द्वैताद्वैत**

अद्वैतवाद के प्रवर्तक शंकराचार्य है। विशिष्टाद्वैतवाद के रामानुजाचार्य, द्वैताद्वैत के निम्बार्काचार्य व द्वैतवाद के मध्वाचार्य प्रवर्तक हैं।

वैदान्त में जितने सम्प्रदाय हैं, उनमें सबसे प्रधान शंकराचार्य का अद्वैत–दर्शन माना जाता है। आचार्य शंकर की गणना भारत ही नहीं वरन् विश्व के श्रेष्ठ विचारकों में की जाती है। इसका कारण यह है कि शंकराचार्य में आलोचनात्मक और सृजनात्मक प्रतिभा समान रूप से है। शंकराचार्य ने तर्क और मेधा के बल पर अद्वैत वेदान्त का आलोक चारों दिशाओं में फैलाया। शंकराचार्य का अद्वैत वेदान्त भारतीय एवं विदेशी दोनों ही तरफ के विद्वानों के आकर्षण का केन्द्र रहा है। रवीन्द्रनाथ टैगोर, डॉ० राधाकृष्णन, प्रो०के०सी० भट्टाचार्य, श्री अरविन्द, स्वामी विवेकानंद, स्पीनोज, और ब्रेडले आदि विचारकों व दार्शनिकों पर अद्वैत वेदान्त की छाप स्पष्ट देखी जा सकती है।

बहुत छोटे काल में ही शंकराचार्य ने दर्शन की जो सेवा की है उसका उदाहरण पूरे विश्व में नहीं मिलता है। शंकराचार्य के दर्शन की व्याख्या करते हुये डॉ० राधाकृष्णन ने कहा है– उनका दर्शन सम्पूर्ण रूप में उपस्थित है जिसमें न किसी पूर्व की आवश्यकता और न अपर की चार्लस इलियट ने कहा है, शंकर का दर्शन संगीत पूर्णता और गम्भीरता में प्रथम स्थान रखता है।

5.5.8 शंकर का जगत विचार–

शंकर ने विश्व का पूर्णतः सत्य नहीं माना है। शंकराचार्य के मतानुसार ब्रह्म ही एक मात्र सत्य है और सब मिथ्या है। उन्होंने जगत को प्रपंच की संज्ञा दी है।

ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या जीवो ब्रह्मव नापरः।

अर्थात ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है और जगत् मिथ्या है सच नहीं है। शंकराचार्य ने जगत् को रस्सी में दिखने वाले साँप की संज्ञा दी है। जिस प्रकार रस्सी में दिखाई देने वाले साँप का आधार रस्सी है उसी प्रकार विश्व का आधार ब्रहा है। विश्व को उन्होंने ब्रडा का विवर्त कहा।

शंकराचार्य के जगत विचार को ठीक प्रकार से समझने के लिये विविध सत्ताओं (**जीतमम हतंकमे वमि•पेजमदबमे)** का वर्णन किया गया है–

1. **प्रातिभासिक सत्ता**
2. **व्यवहारिक सत्ता**
3. **परमार्थिक सत्ता**

प्रातिभासिक अर्थात क्षण मात्र की सत्ता, व्यवहारिक में जाग्रत अवस्था के विषय है एवं अन्तिम सत्ता शुद्ध सत्ता है।

5.5.9 माया और अविद्या सम्बन्धी विचार–

माया और अविद्या को शंकराचार्य ने एक ही माना है। शंकर के मतानुसार माया ब्रहा में निवास करती है परन्तु जिस प्रकार जादू जादूगर के अन्दर रखता है परन्तु वह उससे प्रभावित नहीं होता उसी प्रकार माया से ब्रह्म प्रभावित नहीं होता। माया ब्रह्म की शक्ति है जिससे वह संसार का निर्माण करता है। शंकराचार्य के विचार सांख्य दर्शन से मेल खाते हैं यहां भी माया को भौतिक व अचेतन कहा गया है और शंकर ने भी यही कहा है।

5.5.10 ब्रह्म विचार–

शंकर ने अपने अद्वैत वेदान्त की व्याख्या में एक ही तत्व का अस्तित्व स्वीकार किया है और वह ब्रह्म है। ब्रह्म पारमार्थिक, व्यवहारिक एवं प्रातिभासिक दृष्टिकोण से पूर्णतः सत्य है। शंकर ने ब्रह्म को निर्गुन, पूर्ण सत्य, सर्वोच्च ज्ञान का आधार, अनन्त, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान, जगत् का आधार माना है।

5.5.11 ईश्वर सम्बन्धी विचार–

शंकराचार्य ने ब्रह्म को निराकार व निर्गुण कहा है और जब हम उसे जानने का प्रयास करते हैं तब वह ईश्वर हो जाता है। शंकर ने ईश्वर को सविशेष ब्रहा कहा है।

ईश्वर जगत् का सृष्टा, पालनकर्ता और संहारकर्ता है। यह नित्य और अपरिवर्तनशील है। ईश्वर को सविशेष ब्रह्म एवं मायोपहित ब्रह्म की संज्ञा दी गई है।

5.5.13 शंकर का आत्म विचार–

शंकराचार्य के अनुसार आत्मा और ब्रह्म एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। उनके अनुसार,

- आत्मा स्वयम सिद्ध है
- आत्मा सभी अवस्थाओं में विद्यमान रहती है।
- आत्मा का मूल तत्व चौतन्य अर्थात् चेतनता है।
- आत्मा नित्य, शुद्ध और निराकार है।
- आत्मा एक है परन्तु वह अज्ञान के फलस्वरूप अनेक दिखाई पड़ती है।
- वह पाप व पुण्य से अलग है।
- आत्मा देश, काल, नियम से परे है।

5.5.14 जीव विचार–

व्यवहारिक सत्ता के आधार पर शंकराचार्य ने जीव को सत्य कहा है। जब आत्मा शरीर, इन्द्रिय, मन आदि से बंध जाती है तो वह जीव कहलाती है। व्यक्ति विशेष के अलग–अलग होने से जीव भी अलग–अलग होते हैं। जीव आभास मात्र है। शंकर ने जीव को बन्धन ग्रस्त कहा है क्यों कि वह कर्ता है। आचार्य शंकर ने बन्धन मुक्ति के लिये ज्ञान पर बल दिया है।

5.5.15 बन्धन और मोक्ष विचार–

शंकराचार्य के अनुसार जब अज्ञानवश आत्मा शरीर, इन्द्रियों से बंध जाती है तो यह स्वयं को कर्ता मानने लगती है। फलस्वरूप वह संस्कारों में बंध कर फल भोगती रहती है। अविद्या का नाश होने पर ही मोक्ष प्राप्त होता है। वेदान्त में साधन–चतुष्टय से अविद्या को दूर करने का उपाय बताया गया है।

साधन चतुष्टय–

1. नित्यानित्य वस्तु
2. वैराग्य

3. शम, दम, श्रद्धा आदि

4. मोक्ष की तीव्र इच्छा

5.5.16 नैतिकता एवं धर्म का स्थान–

अद्वैत वेदान्त की आलोचना करते हुये आलोचक कहते हैं कि इसमें धर्म एवं नैतिकता की बात नही है। परन्तु यदि शंकराचार्य कृत अद्वैत वेदान्त को ध्यान पूर्वक देखा जाये तो दोनों का ही महत्वपूर्ण स्थान मिलता है। उन्होंने व्यवहारिक दृष्टिकोण से धर्म व नैतिकता को सत्य कहा है। शंकराचार्य ने स्पष्ट वर्णन किया है कि साधन चतुष्टय के चतुर्थ सोपान तक पहुंचने के लिये विवेक और वैराग्य की परम आवश्यकता है। आन्तरिक साधनों से ही मोक्ष की प्राप्ति सम्भव बताई गई है। दृढ़ संकल्प से ही मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है। शंकराचार्य ने उचित य अनुचित कर्म को भी सत्य और असत्य के साथ तौल कर देखने को कहा। सत्य उचित के साथ है एवं इसी प्रकार असत्य कर्म ही अनुचित कर्म है।

5.6 अभ्यास प्रश्न

सही गलत

1–महर्षि पतंजलि ने योग के बिखरे हुये ज्ञान के एक सूत्र में पिरोकर योग दर्शन की रचना की।

2–भगवान सविता को अर्घ्यदान देते हुये अंजुलि में आकर गिरने से नाम पतंजलि हुआ।

3–तत्व विशारीद, भोजराज की कृति है।

4–प्रो० जे० एच० वुड्ज के अनुसार योगसूत्र और व्याकरण भाष्यकार पतंजलि एक ही व्यक्ति थे।

5–राजयोग स्वामी विज्ञानानन्द की योग सूत्र पर टीका है।

6–समाधि चित्त की स्वरूप शून्य अवस्था है।

7–योग दर्शन भूत, वर्तमान और भविष्य के सभी कालों में उपयोगी है।

सही विकल्प चुनिये –

1. व्याकरणकार पतंजलि का जन्म माना जाता है।

1. 300 ई० पू०
2. 400 ई० पू०
3. 100 ई० पू०
4. 1500 ई० पू०

2. ऋषि पतंजलि की जाति–

1. शेषनाग
2. रावी
3. नागू
4. सूर्य

3. योग सूत्र प्रथम पाद में सूत्रों की संख्या है–

1. 55
2. 34
3. 51
4. 50

4. अष्टांग योग की तृतीय सीढ़ी है–

1. यम
2. प्रत्याहार
3. आसन
4. प्राणायाम

5. उत्तम कोटि के साधनों के लिये साधना है–

1. अभ्यास और वैराग्य
2 अष्टांग योग
3. क्रिया योग
4. सप्तांग योग

5.7 सारांश

महर्षि पतंजलि योग के पहले प्रतिपादक एक दूरदर्शी और महान योग के ऋषि थे। जन्म को लेकर अलग–अलग मत हैं योग के प्रति उनका अतुलनीय योगदान रहा है। अपने बारे में उन्होंने में कुछ नहीं कहा क्योंकि बुद्धिमान व्यक्ति स्वयं ही संकेत करता है कि वह नहीं चाहता था कि दुनिया उस व्यक्ति की प्रशंसा करती रहे। लेकिन उनके द्वारा दिया गया योग का संदेश समझाने में आसान और जीवनोपयोगी है। महर्षि

पतंजलि का व्यक्तित्व और कृतित्व उनके द्वारा लिखे गए ग्रंथो से स्पष्ट होता है जिससे पता चलता है कि उनके मन में लोगों के प्रति कितना प्रेम और करुणा थी और उन्होंने लोगों को योग सूत्र जैसे मनोवैज्ञानिक कार्य कैसे सिखाए। यहां आप समुद्र की शक्ति और सूक्ष्मता की विशालता देख सकते हैं। महर्षि हृदय में छिपे रोगों को दूर करने का तरीका बताते हैं।

इसी क्रम में आदि शंकराचार्य भारत वर्ष में जन्मे अग्रणी महान आत्मा थे। बचपन से ही शंकराचार्य एक ऊर्जावान और विनोदी भाव के गुणी व्यक्ति थे जिन्होंने लगभग 32 साल की उम्र में ब्रह्म सूत्र गीता और उपनिषदों पर अद्वैत वेदांती की व्याख्या की और कई मधुर रचनाओं के लेखक बने। ज्ञान का कोई मार्ग ऐसा नहीं जिस पर शंकराचार्य न चले हों। एक समाज सुधारक के रूप में भारत के वर्तमान एवं भावी समाज में उनका योगदान अद्वितीय है।

5.8 शब्दावली

- आदि–प्राचीन
- तत्ववेत्ता– तत्व को जानने वाला, सत्य को जानने वाला
- अन्वेषण–खोज
- आर्ष– आदि, प्राचीन
- मठ– धार्मिक साधु संतो का निवास स्थान तथा धर्म चर्चा का केन्द्र
- अद्वैत – जहां दो दो नहीं है, एकत्व
- वेदान्त – वेदों के अन्तिम भाग अर्थात् उपनिषद, वेदों का सार
- चार्वाक – नास्तिक दर्शनों में नास्तिक शिरोमणि वेद एवं ईश्वर को नहीं
- मानने वाली विचारधारा, आकाश तल को नहीं मानने वाली विचार धारा
- कापालिक – आदि सम्प्रदाय
- शाक्त – शक्ति की पूजा करने वाल
- सांख्य – षट् दर्शनों में एक दर्शन
- नम्बूदरी ब्राहमण केरल के ब्राहमण विशेष
- शास्त्रार्थ – शास्त्र के ज्ञान, अर्थ, मूल पर किया गया वाद–विवाद
- प्रणेता– रचनाकार, रचयिता

- अभिचार– शत्रु को मारने के लिये किया गया तात्रिक प्रयोग।

5.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

- पातंजल योग प्रदीप ओमानंद तीर्थ, गीता प्रेस गोरखपुर
- योग दर्शन– स्वामी निरंजनानंद सरस्वती, बिहार योग भारती ट्रस्ट, गंगदर्शन, मुंगेर (बिहार)
- मुक्ति के चार सोपान स्वामी सत्यानंद सरस्वती, बिहार योग भारती, गंगादर्शन, मुंगेर
- योग विज्ञान–विज्ञानानंद सरस्वती
- हिन्दू धर्मकोश–राजवल्ली पाण्डेय
- भारतीय योग परम्परा के विविध आयाम–राजकुमारी पाण्डेय, राधा पब्लिकेशनस्स नई दिल्ली
- योग विज्ञान– डॉ. कामाख्या कुमार
- हिन्दू धर्म कोश– राजबल्ली पाण्डेय, हिन्दी साहित्य
- सन्त चरित्र– स्वामी सत्यानंद सरस्वती, मुंगेर, बिहार

5.10 निबंधात्मक प्रश्न

(1) महर्षि पतंजलि के जन्म से सम्बन्धित कथाओं पर प्रकाश डालिये।

(2) महर्षि पतंजलि के व्याकरण महाभाष्यकार एवं योग सूत्र रचनाकार होने के पक्ष में तर्कपूर्ण विवेचना कीजिये।

(3) महर्षि पतंजलि द्वारा दी गई उच्च कोटि के साधकों के लिये योग साधना का वर्णन कीजिए।

(4) मध्यमकोटि के साधकों हेतु दी गई साधना का वर्णन कीजिए

(5) योगी गोरक्ष नाथ द्वारा दी गई साधना का वर्णन कीजिये

(6) गोरक्षनाथ कृत ग्रन्थों का वर्णन कीजिये

(7) गोरक्षनाथ के जीवन चरित्र का वर्णन कीजिये

(8) गोरक्ष संहिता को सूक्ष्म परिचय दीजिए।

इकाई 06– स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, श्री अरविंद महर्षि रमण जी, स्वामी कुवलयानन्द जी, श्री श्यमाचरण लाहड़ी

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 श्री राम कृष्ण परमहंस

6.2.1 आध्यात्मिक विवाह का अनुपम उदाहरण

6.2.2 कामिनी और कंचन का पूर्ण त्याग

6.2.3 जीवन की अंतिम झांकी

6.2.4 रामकृष्ण परमहंस जी का योग में योगदान

6.2.5 राम कृष्ण परमहंस की दृष्टिकोण से कर्म योग

6.2.6 राम कृष्ण परमहंस की दृष्टिकोण से भक्ति योग

6.2.7 भक्ति योग के मुख्य अभ्यास

6.3 स्वामी विवेकानन्द

6.3.1 जीवन परिचय एवं पारिवारिक पृष्ठभूमि

6.3.2 आरम्भिक शैक्षिक जीवन एवं खेल प्रेम

6.3.3 स्वामी रामकृष्ण परमहंस से भेंट तथा आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश

6.3.4 स्वामी विवेकानन्द एक परिव्राजक के रूप में

6.3.5 स्वामी विवेकानन्द का महासमाधि में प्रवेश

6.3.6 योग सम्बन्धी विचारधारा

6.3.7 विश्व मानवता को योगदान

6.3.8 साहित्यिक योगदान

6.3.9 आदर्श शिष्य

6.3.10 संस्कृति संवाहक

6.3.11 युवाओं के परमादर्श

6.3.12 योगी व्यक्तिव

6.4 श्री अरविन्द

6.4.1आरंभिक जीवन व शिक्षा

6.4.2 युवावस्था एवं कांतिकारी जीवन

6.4.3 श्री अरविन्द का भारत आगमन

6.4.4 वैवाहिक जीवन

6.4.5 राजनैतिक जीवन से आध्यानिक जीवन में प्रवेश

6.4.6 यौगिक एवम् साधनात्मक जीवन

6.4.7 श्री अरविंद की मौन साधना ।

6.4.8 श्री माँ का आगमन

6.4.9 महाप्रयाण

6.5 महार्षि रमण की जीवनी

6.5.1महार्षि रमण का बाल्यकाल

6.5.2 शिक्षा

6.5.3 मृत्यु पर चिन्तन व वैरण्य

6.5.4 घर का त्याग

6.5.8 महत साधना

6.5.6 महर्षि रमण की सम दृष्टी

6.5.7 पूर्व सन्यासी का वह श्राप

65.8 संत की करूणा

6.6 स्वामी कुवलयानन्द नन्द जी

6.6.1 स्वामी कुवलयानन्द जी का जीवन

6.6.2 शिक्षा

6.6.3 योग पर वैज्ञानिक शोध

6.6.4 योग के वैज्ञानिक स्वरूप का प्रतिपादन

6.6.5 विदेश में योग की अलख

6.6.6 स्वामी जी का योग पर लेखन

6.7 योगी श्यामा चरण लाहिडी महाशय जी

6.7.1 जन्म एवं आरंभिक शिक्षा

6.7.2 विवाह एवं गृहस्थ जीवन

6.7.3 शिक्षा

6.7.4 लाहिडी जी का यौगिक योगदान

6.7.5 लाहिडी जी का शिष्य समुदाय

6.8 अभ्यास प्रश्न

6.9 सारांश

06.10 शब्दा वली

6.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

6.12 निबंधात्मक प्रश्न

6.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के माध्यम से आप जान सकेंगे–

- एक योगी के रूप में रामकृष्ण परमहंस का व्यक्तित्व
- साधनात्मक जीवन –इसके अन्तर्गत रामकृष्ण परमहंस की विभिन्न
- रामकृष्ण परमहंस की महासमाधि योग विभूतियाँ
- श्रीरामकृष्ण परमहंस के जीवन का सार संदेश
- स्वामी विवेकानंद का जन्म, परिवारिक पृष्ठभूमि,
- प्रारंभिक शिक्षा–दीक्षा, खेलप्रेम एवं वात्सल्यानुभूतियाँ
- गुरूशिष्य मिलन, अध्यात्म जगत में पदार्पण
- स्वामी जी का परिव्राजक जीवन
- स्वामी जी के यौगिक जीवन का सार संदेश
- श्री अरविन्द घोष का संक्षिप्त जीवन परिचय
- श्री अरविन्द के जीवन में योग साधना का अवतरण
- श्री अरविन्द का साधनात्मक जीवन
- लाहिड़ी का लेखन व्यक्तित्व
- लाहिड़ी महाशय द्वारा प्रतिपादित योग पद्धति

6.1 प्रस्तावना

पतन और उत्थान संसार का अटल नियम है। यह केवल व्यक्तियों पर ही नहीं वरन देश, राष्ट्र, समाज, जाति, सभी छोटी– बड़ी संस्थाओं पर लागू होता है। जो जातियाँ किसी समय संसार की स्वामिनी बनी हुई थीं वे ही कुछ समय पश्चात अवनति के गर्त में गिरी हुई दिखाई पड़ती हैं। हमारा देश भी जो महाभारतकाल तक चक्रवर्ती पद पर अधिष्ठित था, तत्पश्चात पारस्परिक वैमनस्य के फल से पतन के मार्ग पर चलने लगा और एक समय ऐसा आया जब वह सब प्रकार से ध्वस्त और त्रस्त होकर विदेशियों का मुखापेक्षी बन गया। पर भारतीय संस्कृति को यहाँ के प्राचीन ऋषि–मुनियों ने ऐसे सुदृढ़ धार्मिक आधार पर स्थापित किया है कि

पतनोन्मुख हो जाने पर भी उसे किसी न किसी रूप में दैवी सहायता प्राप्त होती रहती है, जिससे यह फिर सँभल कर उत्थान की दिशा में अग्रसर होने लगती है।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पिछले सौ डेढ़ सौ वर्षों में अनेक दैवीशक्ति संपन्न आत्माओं का प्रादुर्भाव हुआ है। ऐसे युग– परिवर्तनकारी महापुरुषों की कई श्रेणियाँ होती हैं। उनमें बुद्ध और महावीर जैसे राजवंशीय भी पाए जाते हैं और कबीर और रैदास जैसे छोटी जाति के माने जाने वाले भी होते हैं। जिस प्रकार श्रीकृष्ण जैसे सर्वकला–विशारद, शंकराचार्य तथा चौतन्य जैसे प्रकांड विद्वानों का आविर्भाव हुआ, वैसे ही नामदेव, ज्ञानेश्वर, तुकाराम, मीराबाई आदि अल्पशिक्षित संतों ने भी अपूर्व कार्य करके दिखाए। इस दृष्टि से विद्या, वैभव, पदवी आदि को महापुरुषों की पहिचान समझना भूल है। कोई नहीं कह सकता कि ईश्वर का विशिष्ट तेज कब, किस जीवात्मा में प्रकट हो उठेगा? श्री रामकृष्ण परमहंस के चरित्र से इस कथन की सत्यता पूरी तरह सिद्ध होती है।

6.2 श्री रामकृष्ण परमहंस का बाल्यकाल

श्री रामकृष्ण (जन्म सन् १८३६) के पिता श्री खुदीराम चट्टोपाध्याय। कामारपुकुर गाँव के रहने वाले एक गरीब व्यक्ति थे। पर वे ऐसे ईश्वर– भक्त और सेवाभावी थे कि स्वयं भूखे रहकर भी दीन–दुःखी और अतिथियों की सेवा करने को सदैव प्रस्तुत रहते थे। उनकी पत्नी चंद्रादेवी भी बिलकुल उन्हीं के स्वभाव की थीं। जिससे इस प्रकार के परोपकारी जीवन में उनको सब तरह की सहायता मिलती थी। श्री रामकृष्ण बाल्यावस्था से ही बड़े आकर्षणयुक्त थे जिससे परिचित– अपरिचित सभी उनसे प्रेम करते थे। नामकरण संस्कार के समय पंडितों ने उनका नाम रामकृष्ण रखा था, पर पास–पड़ौस के सब लोग प्रेम से उनको गदाधर या गदाई कहा करते थे। गाँव में एक धर्मशाला थी जिसमें प्रायः साधु–सन्यासी आकर ठहरा करते थे। गदाई उन लोगों के पास घंटों बैठकर धार्मिक कथा–वार्ता सुना करते थे। पाँच वर्ष की आयु हो जाने पर उनको पाठशाला भेजा गया, पर वे उसी अवस्था में भजन–कीर्तन में इतने तल्लीन रहने लगे कि उनको पढ़ना–लिखना कुछ न आ सका। वे कहा करते थे कि पढ़ना–लिखना सीखकर तो मुझे पुरोहिताई का धंधा करना पड़ेगा, दाल, चावल, आय बाँधकर लाना पड़ेगा। मुझे ऐसी विद्या की आवश्यकता नहीं है। ऐसा अन्न तो मेरे खेत में ही पैदा हो जाता है।

जब श्री रामकृष्ण की अवस्था १४–१५ वर्ष की हुई तो वे अपने भाई श्री रामकुमार के पास कलकत्ता चले आए, जो वहाँ एक संस्कृत पाठशाला में विद्यार्थियों को पढ़ाते थे। कुछ समय बाद जानबाजार निवासी रानी रासमणि ने दक्षिणेश्वर में एक बहुत बड़ा मंदिर बनवाया जिसमें कई देवताओं के अलग–अलग मंदिर थे। पं० रामकुमार को उसमें पूजा करने को नियुक्त किया गया। श्री रामकृष्ण भी उनके साथ वहीं रहने लगे। पहले तो उन्होंने अपने भाई के इस काम का विरोध किया, क्योंकि रानी रासमणि जाति की कैवर्त (मल्लाह) थीं, पर

धीरे–धीरे उनका मन वहाँ लग गया और वे रानी की तरफ से कालीदेवी के पुजारी नियत कर दिए गए। वे इस कार्य को पूरी श्रद्धा और भक्ति के साथ किया करते थे और प्रायः प्रार्थना किया करते थे– माँ, मुझे दर्शन दे। उनकी दशा उन्मत्त की–सी हो जाती थी और वे अपने शरीर का ज्ञान भूलकर घंटों माँ–माँ चिल्लाया करते थे जिससे लोग उनको सचमुच पागल समझने लगे।

इस प्रकार आंतरिक भक्ति, श्रद्धा और वैराग्य द्वारा वे आध्यात्मिक मार्ग में निरंतर उन्नति करते गए। जब वे ध्यान करने बैठते तो उनको शीघ्र ही समाधि–सी लग जाती थी और वे बड़ी देर तक पत्थर की मूर्ति की तरह बैठे रहते थे, जो कोई उनको देखता वह भी उनसे प्रभावित हुए बिना न रहता। उनकी साधना की बात दूर–दूर तक फैल गई और सैकड़ों व्यक्ति उनके दर्शनों को आने लगे। वे लोग बहुत तरह की भेंट भी चढ़ाते थे, पर वे उसे छूते भी न थे। उन्होंने साधना द्वारा रुपए–पैसे से ऐसी घृणा पैदा कर ली थी कि सोना–चाँदी छूने से उनको जलन–सी होने लगती थी। बड़े–बड़े पदवीधारी उनकी स्तुति प्रार्थना करते पर उस तरफ भी उनका ध्यान नहीं जाता था। लोगों का विश्वास था कि उनको कालीदेवी का प्रत्यक्ष दर्शन होता था और वे प्रत्येक कार्य उससे पूछकर ही करते थे।

6.2.1 आध्यात्मिक विवाह का अनुपम उदाहरण–

श्री रामकृष्ण का विवाह अपने जन्मस्थान के समीप ही, जयराम वाटी नामक गाँव की श्रीमती शारदामणिदेवी से हुआ था। विवाह के समय वर की आयु २३ वर्ष की और वधू की ५ वर्ष की थी। सांसारिक दृष्टि से तो यह विवाह आक्षेपजनक जान पड़ता था पर श्री रामकृष्ण को इसका कुछ ध्यान न था। उनने केवल अपनी माता के आदेश को मानकर विवाह के लिए स्वीकृति दे दी थी। अब इसे आप चाहे संयोग कहें अथवा दैवी विधान कि माता शारदा भी बचपन से ही ईश्वरभक्ति परायण और भजन–साधन की तरफ अनुरक्त थीं। वे आरंभ से ही दीन–दुःखियों की सहायता और घर वालों की सेवा करने में सुख मानती थीं। उनका ऐसा मनोभाव देखकर अभिभावकों ने उनका विवाह एक अध्यात्म–मार्ग के पथिक के साथ करना उचित समझा। वे तेरह वर्ष की उम्र होने तक दो–तीन बार श्री रामकृष्ण के घर कामारपुकुर में जाकर रहीं। वहाँ एक बार परमहंस जी भी तीन महीने तक उनके साथ रहे और उनको लौकिक तथा आध्यात्मिक शिक्षा देते रहे।

इसके कुछ समय बाद जब शारदा माता ने लोगों के मुख से सुना कि परमहंस देव पागल हो गए हैं, तो वे इसका ठीक पता लगाने दक्षिणेश्वर आकर वहीं रहने लगीं। उस समय उनकी आयु १६ वर्ष की थी और परमहंस जी की ३५ वर्ष की। वे कुछ समय तक पति के समीप ही सोती रहीं। पर परमहंस देव रात में चाहे जब उठकर ध्यान करने लगते थे और समाधि की अवस्था में मृतक तुल्य जान पड़ते थे, इससे शारदा माता को भय जान पड़ता था। तब परमहंस देव ने उनके सोने की व्यवस्था अपनी माता चंद्रादेवी जी के साथ कर दी, जो पास में ही एक कुटी में रहती थीं। तब से लेकर परमहंस देव के अंत समय तक वे दक्षिणेश्वर की एक छोटी–सी कोठरी में रहकर जहाँ तक तक बन सकता पति की सेवा करती रहीं।

यह श्री रामकृष्ण की असाधारण आत्मशक्ति का ही प्रभाव था कि वे अपनी युवती पत्नी के साथ एकांत में रहकर भी कामवासना से बचे रहे और कभी उनके हृदय में भोग–विलास का भाव नहीं आया। उलटा वे शारदा माता को जगदंबा का रूप समझकर कभी– कभी उनकी षोडशोपचार पूजा किया करते थे। जब कभी वे बीमार हुईं तो उनकी दवा–दारू और परिचर्या में भी उन्होंने त्रुटि नहीं की। वे स्वयं धातु को छूते न थे पर शारदा माता के लिए उन्होंने कुछ स्वर्ण–आभूषण बनवा दिए थे, जिससे अन्य स्त्रियों को अलंकार धारण किए देखकर उनको दुःख न. हो। पर शारदा माता स्वयं भी ऊँचे दर्जे की आत्मज्ञान–निष्ठ थीं और ऊपरी गहनों, कपड़ों को महत्त्व न देकर ईश्वर भक्ति को ही अपने जीवन का परम लक्ष्य मानती थीं। परमहंस देव के समाधिस्थ हो जाने के पश्चात भी उन्होंने विधवा की तरह रहने का विचार नहीं किया, क्योंकि तब भी वे उनको प्रत्यक्ष दिखाई दिया करते थे और कहते थे कि मैं तो अमर हूँ तुमको विधवा का वेष धारण करने की कोई आवश्यकता नहीं। माता शारदा परमहंस देव के देहांत के पश्चात बहुत समय तक जीवित रहीं और सन् १९२० में बेलूड़ मठ में उन्होंने अपनी इहलीला संवरण की। श्री रामकृष्ण के भक्त उनमें भी दैवी शक्ति के अविर्भाव का विश्वास रखते थे।

6.2.2 कामिनी और कंचन का पूर्ण त्याग–

संसार में मनुष्य को बंधन में डालने वाले दो ही पदार्थ हैं– कामिनी और कंचन, अन्य सब पदार्थ इन्हीं दोनों के अंतर्गत आ जाते हैं। स्त्री द्वारा कामवासना की पूर्ति के अतिरिक्त संतान होती है, उनका विवाह–संबंध होने से परिवार की वृद्धि होती है। कंचन के संबंध में भी ऐसी ही बात है। धन कमाने के लिए विद्याभ्यास करना पड़ता है, दूसरों की सेवा–चाकरी करनी पड़ती है, खुशामद करनी पड़ती है। धन के लिए सदैव शंकाशील और चितित रहना पड़ता है। धन की प्राप्ति के लिए मन इधर–उधर दौड़ा करता है। इसलिए जो मनुष्य अध्यात्म–क्षेत्र में प्रगति करने का अभिलाषी हो उसे कामिनी और कंचन की वासना बिलकुल त्याग देनी होगी। जिस समय श्री रामकृष्ण को दिव्य–ज्ञान हुआ उसी समय उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि सब वस्तुओं का सार ईश्वर ही है और उसी को पाने का प्रयत्न करना चाहिए।

6.2.3 जीवन की अंतिम झाँकी–

सन् १८८६ के आरंभ में परमहंस देव को अपने शरीर में ऐसे लक्षण दिखाई पड़ने लगे जिससे उनको शीघ्र ही अंत होने का ज्ञान हो गया। इसीलिए एक दिन उन्होंने कुछ शिष्यों से बात कहते हुए कहा– 'सुनो, मैं माता से कह रहा था कि अब लोगों के साथ बात नहीं कर सकूँगा, इसलिए महेन्द्र नरेंद्र, गिरीश, विजय, केदार आदि शिष्यों को शक्ति दे, जिससे उपदेश देकर वे सच्चे भक्त तैयार करें।'

इसके कुछ ही दिन बाद उनके गले में दर्द होने लगा और भोजन करना कष्टकर हो गया। धीरे–धीरे यह रोग गण्डमाला के रूप में परिणत हो गया। परमहंस जी डाक्टरी इलाज नहीं कराते थे, इससे होमियोपैथी चिकित्सा शुरू की गई। पर रोग लगातार बढ़ता ही गया। अंत में कलकत्ते के सबसे मशहूर डॉक्टर महेन्द्रनाथ सरकार का भी इलाज कराया। पर उसका अधिक प्रभाव न हुआ। १५ अगस्त १८८६ को उनकी दशा ज्यादा खराब हो गई। तब उन्होंने कहा कि 'जब रोग नहीं मिटता तो इसके लिए तकलीफ सहने की आवश्यकता क्या है ? उसी रात को एक बजे समाधिस्थ हो गए।'

परमहंस देव के पश्चात स्वामी विवेकानंद जी ने उनके कितने ही शिष्यों को संन्यास ग्रहण करके लोकोपचार के लिए सर्वस्व अर्पण करने को तैयार किया। सबसे पहले वे स्वयं इस क्षेत्र में अग्रसर हुए और देश–विदेशों में कई वर्ष तक अथक प्रचार कार्य करके श्री रामकृष्ण मिशन की स्थापना की जो उनके उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आज तक जन–सेवा और जन–जागरण की अनेक योजनाओं को कार्यान्वित कर रहा है।

6.2.4 राम कृष्ण परमहंस जी का यौगिक योगदान–

आधुनिक योग को एक सुव्यवस्थित मार्ग रामकृष्ण जी के जीवन से मिलती है। योग के सैद्धांतिक स्वरूप को भी व्यवहारिक रूप से जी कर एक अनुपम उदाहरण देने वाले श्री राम कृष्ण परमहंस योग साधकों के लिए आदर्श हैं। आज अनेक योग सड़क उन्हें अपना आदर्श मान कर उनके जीवन चर्या से प्रेरित हो रहे है। उनके यौगिक योगदान कुछ इस प्रकार है।

6.2.5 रामकृष्ण परमहंस के दृष्टिकोण से कर्म योग–

कर्मयोग यानी कर्म के द्वारा ईश्वर के साथ योग। अनासक्त होकर किए जाने पर प्राणायाम, ध्यान–धारणादि अष्टांग योग या राजयोग भी कर्मयोग ही है। संसारी लोग अगर अनासक्त होकर ईश्वर पर भक्ति रखकर उन्हें फल (परिणाम) समर्पण करते हुए संसार के कर्म करें तो वह भी कर्मयोग है। फिर ईश्वर को फल समर्पण करते हुए पूजा, जप आदि करना भी कर्मयोग ही है। ईश्वर लाभ ही कर्मयोग का उद्देश्य है। सत्वगुणी व्यक्ति का कर्म स्वभावतरू छूट जाता है, प्रयत्न करने पर भी वह कर्म नहीं कर पाता। जैसे, गृहस्थी में बहू के गर्भवती हो जाने पर सास धीरे–धीरे उसके कामकाज घटाती जाती है और जब उसके बच्चा पैदा हो जाता है, तब तो उसे केवल बच्चे की देखभाल के सिवा और कोई काम नहीं रह जाता।

जो सत्वगुणी नहीं हैं, उन्हें संसार के सभी कर्तव्यों का पालन करना चाहिए। उन्हें ईश्वर के चरणों में अपना सब कुछ समर्पण कर संसार में धनी व्यक्ति के घर की दासी की तरह रहना चाहिए। यही कर्मयोग है। जितना संभव हो, ईश्वर का ध्यान तथा नाम–जप करते हुए, उन पर निर्भर रहकर अनासक्त भाव से अपने कर्तव्यों का पालन करना ही कर्मयोग का रहस्य है।

भगवान को तुम एक गुना जो कुछ अर्पित करोगे, उसका हजार गुना पाओगे। इसीलिए सब कार्य करने के बाद जलांजलि दी जाती है—श्रीकृष्ण को फल—समर्पण किया जाता है। युधिष्ठिर जब सब पाप श्रीकृष्ण को अर्पण करने जा रहे थे, तब भीम ने उन्हें सावधान करते हुए कहा, ऐसा काम मत करें। श्रीकृष्ण को जो कुछ अर्पित करेंगे, उसका हजार गुना आपको प्राप्त होगा।

विशेषकर इस कलियुग में अनासक्त होकर कर्म करना बहुत ही कठिन है। इसलिए इस युग के लिए कर्मयोग, ज्ञानयोग आदि की अपेक्षा भक्तियोग ही अच्छा है, परंतु कर्म कोई छोड़ नहीं सकता। मानसिक क्रियाएं भी कर्म हैं। मैं विचार कर रहा हूं, ध्यान कर रहा हूं– यह भी कर्म ही है। प्रेम–भक्ति के द्वारा कर्ममार्ग सहज हो जाता है।

ईश्वर पर प्रेम–भक्ति बढ़ने से कर्म कम हो जाता है और शेष कर्म अनासक्त होकर किया जा सकता है। भक्ति लाभ होने पर विषय कर्म धन, मान, यश आदि अच्छे नहीं लगते। मिसरी का शरबत पीने के बाद गुड़ का शरबत भला कौन पीना चाहेगा। ईश्वर में भक्ति हुए बिना कर्म बालू की भीत की तरह निराधार है।

6.2.6 रामकृष्ण परमहंस के दृष्टिकोण से भक्ति योग–

भक्ति योग या समर्पण का योग प्रेम, सम्मान और भक्ति के माध्यम से भगवान के साथ मिलन को संदर्भित करता है। यह बताता है कि भगवान हर जगह हैं, और हम प्रेम के एक महीन धागे के माध्यम से उनसे जुड़े हुए हैं। भक्ति योग का अभ्यास करने वाला व्यक्ति भगवान को न केवल अपने चुने हुए देवता के रूप में देखता है, बल्कि किसी प्रियजन – माँ के रूप में भी देखता है। , पिता, मित्र, भाई आदि। इसलिए, एक भक्ति योगी और भगवान के बीच का बंधन इस हद तक मजबूत होता है कि भक्ति योगी सीधे दूसरे से जुड़ने में सक्षम होता है और आत्मा, मन और शरीर की एकता का अनुभव करता है।

6.2.7 भक्ति योग के मुख्य अभ्यास–

भक्ति योग के बारे में एक आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि आप इसका अभ्यास कहीं भी कर सकते हैं (जाहिर तौर पर एक शांत जगह को प्राथमिकता दी जाती है) बिना हिंदू देवताओं की मूर्तियों के पास बैठे। भक्ति योग की प्रमुख प्रथाएँ नीचे सूचीबद्ध हैं जो दुनिया भर में लोकप्रिय हैं –

- भगवान पर प्रवचन सुनना
- पूजन करना
- भगवान के भजन और गीत गाएं
- हर समय ईश्वर का स्मरण (स्मरण) करते रहना

- स्वयं को ईश्वर का सेवक समझकर इस दासत्व भाव से दैनिक कार्य करना
- सब कुछ ईश्वर को समर्पित कर देना, अर्थात् तेरी इच्छा पूरी हो यह भाव रखना

भक्ति के यह अभ्यास आपको ईर्ष्या, अहंकार, अभिमान या घृणा को दूर करने और आनंद, शांति और दिव्य भावनाओं का अनुभव करने में मदद करते हैं। इसके महान लाभों और कठोर अनुष्ठानों पर श्रेष्ठता के कारण, कई प्रसिद्ध ऋषियों और भिक्षुओं ने इसका अभ्यास किया है और दूसरों को इसके वास्तविक सार को समझने में मदद की है।

भक्ति पर रामकृष्ण परमहंस के दर्शन के अनुसार, यह योग मार्ग कलियुग के लोगों के लिए शांति और एकता प्राप्त करने के लिए आदर्श है। दिमाग। वह बताते हैं कि हर कोई जो भगवान में विश्वास करता है, उस पर विश्वास रखता है, वह आसानी से इस योग का अभ्यास कर सकता है और सर्वोच्च शक्ति के साथ एक अटूट बंधन स्थापित कर सकता है।

योग के अन्य रूपों के विपरीत, भक्ति योग भक्ति योगी को सभी इंद्रियों और पूर्ण लचीलेपन का उपयोग करने देता हैः

- भजन गाते हुए नृत्य करें
- भगवान का ध्यान करें
- ईश्वर के साथ विभिन्न प्रकार के संबंध स्थापित करें
- जप करें।

इतना ही नहीं, रामकृष्ण परमहंस यह भी बताते हैं कि यह योग भक्ति योगी पर त्याग का दबाव नहीं डालता। जैसे–जैसे भगवान के प्रति प्रेम गहरा होता है, भक्ति योगी स्वाभाविक रूप से भौतिकवादी चीजों के प्रति अपना लगाव छोड़ देता है।

6.3 स्वामी विवेकानन्द

6.3.1 जीवन परिचय एवं पारिवारिक पृष्ठभूमि–

स्वामी विवेकानंद ने भारत में हिन्दू धर्म का पुनरुद्धार तथा विदेशों में सनातन सत्यों का प्रचार किया। इस कारण वे प्राच्य एवं पाश्चात्य देशो में समान रूप से श्रद्धा एवं सम्मान की दृष्टि से देखे जाते हैं। उनका जन्म 12 जनवरी 1863 ई. सोमवार के दिन प्रातःकाल सूर्योदय के किंचित् काल बाद 6 बजकर 49 मिनट पर हुआ था। मकर संक्रान्ति का वह दिन हिंदू जाति के लिये महान उत्सव का अवसर था और भक्तगण उस दिन

लाखों की संख्या में गंगाजी को पूजा अर्पण करने जा रहे थे। स्वामी विवेकानंद के जन्म के पूर्व उनकी माँ ने वाराणसी में वीरेश्वर भगवान की पुत्र प्राप्ति की इच्छा से पूजा की थी। एक रात उन्होंने स्वप्न में महादेव जी को ध्यान करते देखा, फिर उन्होंने नेत्र खोले और उनके पुत्र के रूप में जन्म लेने का वचन दिया। नींद खुलने के बाद उनके आनन्द की सीमा न रही थी। माता भुवनेश्वरी देवी ने अपने पुत्र को शिवजी का प्रसाद माना और उसे बीरेश्वर नाम दिया। परन्तु परिवार में उनका नाम नरेन्द्रनाथ दत्त और संक्षेप में उन्हें नरेन्द्र तथा दुलार में नरेन कह कर सम्बोधित किया जाता था।

कलकत्ते के जिस दत्त यश में नरेन्द्रनाथ का जन्म हुआ था वह अपनी समृद्धि सह्रदयता, पाण्डित्य एवं स्वाधीन मनोवृत्ति के लिसे सुविख्यात था। उनके दादा श्री दुर्गाचरण ने अपने प्रथम पुत्र का मुख देखने के बाद ही ईश्वरप्राप्ति की अभिलाषा से गृहत्याग कर दिया था। उनके पिता श्री विश्वनाथ दत्त कलकत्ता उच्च न्यायालय में अधिवक्ता थे। उन्होंने अंग्रजी तथा फारसी साहित्य का गहन अध्ययन किया था। धर्म के मामले में वे अज्ञेयवादी थे और सामाजिक रीति–रिवाजों के प्रति उपहास का भाव रखने के बावजूद उनका ह्रदय विशाल था। यहाँ तक कि वे अपने कुछ निर्धन आलसी सम्बन्धियों को अपने घर में रखकर उनकी देखभाल किया करते थे। उनकी माता भुवनेश्वरी देवी देखने में गम्भीर और आचरण में उदार थी तथा प्राचीन हिन्दू परम्परा का प्रतिनिधित्व करती थीं। थे एक भरे पूरे परिवार की मालकिन थीं और अपने अवकाश का समय सिलाई एवं भजन गाने में बिताती थी। रामायण एवं महाभारत में उनकी विशेष रूचि थी तथा इन ग्रन्थों के अनेक अंश उन्हें कण्ठस्थ भी थे। निर्धनों के लिये वे आश्रय थीं।

6.3.2 आरम्भिक शैक्षिक जीवन एवं खेल प्रेम–

जैसा कि सर्वविदित है कि माँ ही बच्चे की प्रथम गुरु होती है, विवेकानंद जी के जीवन में भी माँ के हाथों उनकी प्रारम्भिक शिक्षा का सूत्रपात हुआ। इस प्रकार उन्होंने बंगला की वर्णमाला, कुछ अंग्रजी शब्द तथा रामायण एवं महाभारत की कथाएँ सीखीं।

छः वर्ष की आयु में विवेकानंद को प्राथमिक विद्यालय में अध्ययन हेतु भेजा गया। परन्तु एक बार सहपाठियों से सीखा हुआ अपशब्दों का उच्चारण करने पर उनके लिये घर पर ही अलग शिक्षक की व्यवस्था कर दी गई। शीघ्र ही सूक्ष्म बुद्धि एवं तीव्र स्मरणशक्ति का विकास दिखने लगा। संस्कृत, व्याकरण, रामायण व महाभारत का काफी बड़ा अंश उन्होंने आसानी से कण्ठस्थ कर लिया। 1870 ई. में सातवर्ष की आयु में उनको ईश्वरचन्द्र विद्यासागर द्वारा स्थापित मेट्रोपोलिटन ट्यूशन में प्रवेश कराया गया। आपकी असाधारण बुद्धि ने शीघ्र ही अध्यापकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया।

चौदह वर्ष की उम्र में नरेन्द्रनाथ के पेट में रोग होने के कारण उनका शरीर अस्थिचर्म मात्र रह गया था। उनके पिता श्री विश्वनाथ इन्हें अपने साथ रायपुर ले आये। रायपुर में उस समय स्कूल नहीं थे अतः विश्वनाथ स्वयं पुत्र को शिक्षा देने लगे। पुत्र की प्रतिभा उनसे छिपी न थी, पाठ्य पुस्तकों के अतिरिक्त दर्शन,

इतिहास तथा साहित्य सम्बंधी अनेक पुस्तके पुत्र को पढ़ाने लगे। घर में प्रतिदिन गुणी, ज्ञानी, व्यक्तियों के यादविवाद को नरेन्द्र ध्यान से सुना करता थे और उम्र में छोटे होने के बावजूद अपनी राय प्रकट करते थे इससे सभी आनन्दित भी होते थे। किताबी विद्या के भार से पुत्र की प्रखर स्मृतिशक्ति का क्लान्त न कर उसके साथ अनेकानेक विषयों पर तर्क किया करते और उसे स्वाधीन भाव से अपना मत प्रकट करने का अवसर देते थे। दो वर्ष तक पिता के साथ रहकर नरेन्द्र ने केवल ज्ञानलाभ ही नही किया अपितु उनके किशोर चरित्र पर पिता की महानता की गम्भीर छाप भी पड़ी। दो वर्ष बाद नरेन्द्र शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तन प्राप्त कर रायपुर से कलकत्ता पहुँचे। उनकी प्रतिभा को देखकर कालेज के प्रधानाचार्य डब्लून्ट हेस्टे ने कहा था कि मैने सुदूर देशों का भ्रमण किया है पर अभी तक मुझे कही भी ऐसा लड़का नही मिला जिसमें नरेन्द्र सी प्रतिभा और संभावनाएँ हों। वह जीवन में अवश्वमेव अपनी छाप छोड जायेगा।

नरेन्द्र एक मधुर, प्रफुल्ल एवं चंचल स्वभाव का बालक था। बचपन में नरेन्द्र की अदम्य शक्ति को वश में लाने के लिये दौ नौकरानियों की आवश्यकता होती थी। वह अपनी बहनों को भी चिढ़ा–चिढ़ाकर परेशान किया करता था। उसको शांत करने के लिये माँ उनके ऊपर शिव–शिव कहकर जल डालने लगती थी। पशु–पक्षियों के प्रति उनका प्रेम स्वाभाविक था।

नरेन्द्र और संन्यासी हुए पितामह में काफी साम्यता थी। कइयों का विचार था कि उन्होंने नरेन्द्र के रूप में ही पुनः जन्म लिया है। भ्रमण करने वाले सन्यासियों में नरेन्द्र की बड़ी रूचि थी।

माँ के द्वारा सुनाई गई पौराणिक कथाओं से प्रभावित होकर हिन्दु देवी–देवताओं के प्रति उनकी रूचि बढ़ी। वे राम और सीता की मूर्ति लाकर उसकी श्रद्धा से पूजा करने लगे। लेकिन एक बार विवाह को तीव्र बन्धन कहकर उसकी तीव्र निन्दा की तो उन्होंने इनका परित्याग कर दिया।

बचपन से ही नरेन्द्र शिवजी की मूर्ति के आगे बैठकर ध्यान किया करता था। इसी आयु में उनकी कुछ ऐसे लोगों से मित्रता हुई जो आजीवन उनके मित्र बन रहे। अपने स्कूल के बालकों में वे निर्विरोध नेता थे। राज दरबार का खेल उन्हें बड़ा प्रिय था और उनमें वे राजा का अभिनय करते थे। उनका कर्म ही सूचित करता है कि वे जन्म से ही मानव मात्र के नायक थे।

स्कूल की पढ़ाई के साथ–साथ नाटक, तलवार चलाना, कुश्ती लड़ना, नाव–खेना तथा अन्य वीरतापूर्ण खेल उन्होंने सीखे। उन्होंने भोजन पकाने की विद्या सीखने का भी प्रयास किया। वे इतने चंचल थे कि शीघ्र ही एक खेल से आकर दूसरे खेल ढूंढ निकालते थे। वे अपने मित्रों के संग चिडिया घर, अजायबघर देखने जाया करते थे। खेलों में वे अपने साथियों का आपसी झगड़ा निपटा देते थे और पड़ोस के लोगों के प्रिय थे। सभी उनके साहस, सच्चाई की सराहना करते थे। यह विलक्षण बालक छोटी उम्र से ही भय अथवा अन्धविश्वास न मानता था। पड़ोस के एक घर में चम्पा के पेड़ पर चढ़कर फूल तोड़ना भी उन्हें प्रिय था। एक दिन पेड़ के मालिक द्वारा पेड़ में भूत है कहकर नरेन्द्र के कहा कि किसी की बातों में जाँच किये बिना विश्वास नहीं करना चाहिये। ये शब्द जगत के प्रति उनका भावी संकेत था।

नरेन्द्र को शयन के पूर्व एक अद्भुत दर्शन हुआ करता था, आँखे मूंदते ही उन्हें अपनी भौहों के बीच निरंतर परिवर्तन शील रंगों का एक ज्योति बिन्दु दीखता था, वह बिन्दु क्रमशः बढ़ता हुआ गोले का आकार लेकर फट जाता था और उससे एक सफेद प्रकाश निकलकर उनके सम्पूर्ण शरीर में फैल जाता था। इसके प्श्चात वे धीरे–धीरे निद्रा में डूब जाते थे। इस ज्योति के दर्शन उन्हें जीवन के अन्तिम दिनों तक होते रहे। वास्तव में ये आध्यात्मिक क्षमता एवं ध्यान की स्वाभाविक प्रवृत्ति का होना था।

किशोरावस्था में प्रवेश करने के साथ–साथ नरेन्द्र के स्वभाव में भी परिवर्तन आ रहा था। अब बौद्धिक जीवन की ओर उनका झुकाव ज्यादा था वे साहित्य का अध्ययन करने लगे, समाचान पत्र का पढ़ना, सभाओं में जाना उन्हें प्रिय था। संगीत उनके मनोरंजन का प्रमुख साधन था। उनका मानना था कि संगीत के माध्यम से उदत्त भावों की अभिव्यक्ति होनी चाहिये।

6.3.3 स्वामी रामकृष्ण परमहंस से भेंट तथा आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश–

स्वामी विवेकानंद प्रारंभ से ही जिज्ञासु थे। स्वामी जी के ऊपर ब्रह्म समाज का काफी प्रभाव पड़ा था। उसी समय उनके जीवन में एक महापुरूष का उदय हो गया जिसे संसार रामकृष्ण परमहंस के नाम से जानता है।

एक बार नरेन्द्र (स्वामी विवेकानंद) के प्रधानाचार्य विलियम हेस्टी कथा में एक की कविता को पढ़ा रहे थे। कविता के सार बताते हुए मिस्टर हेस्टी ने बताया कि दक्षिणेश्वर में रामकृष्ण ने अपनी साधना, लगन, त्याग और तपस्या से ईष्वर का साक्षात्कार कर लिया है। युवक नरेन्द्र स्वाभाव से जिज्ञासु थे। अतः उन्होंने निश्चय कर लिया कि वे दक्षिणेश्वर जायेंगे और श्रीरामकृष्ण से साक्षात्कार करेंगे।

1881 में स्वामी जी दक्षिणेश्वर पहुँचे और श्री रामकृष्ण से मिलन हुआ। यह मिलन उनकी जीवन का संक्रान्ति काल था। जब वह नरेन्द्र रामकृष्ण से मिले तो राकृष्ण ने अपने ओज, तप तथा साधना के बल से नरेन्द्र की आध्यात्मिक साधना को तुरन्त पहचान लिया।

नरेन्द्र भी श्री रामकृष्ण का व्यवहार को देखकर आश्चर्य चकित रहे क्योंकि उनके चहरे से ऐसा प्रतीत होता था कि वे विक्षिप्त हैं। नरेन्द्र ने श्रीरामकृष्ण जी से पूछने पर कि क्या आपने ईश्वर को देखा है तब उन्होंने कहा – "God can be realised one can see and talk to him as I am doing with you- But who cares to do so-"

इस उत्तर से सन्तुष्ट रहे और बाद में नरेन्द्र दुबारा दक्षिणेश्वर गए, तब श्रीरामकृष्ण ने उन्हें स्नेह से पुकारा और अपने पास बिठाया। नरेन्द्र को लगा कि परमहंस के स्पर्श–मात्र से उनके भीतर एक नई अनुभूति पैदा हुई है। पिता के देहान्त के बाद घर की सारी जिम्मेदारी नरेन्द्र के ऊपर आ गई लेकिन नरेन्द्र ने अपना धैर्य साहस नहीं छोड़ा। विपत्तियों से जुझते हुए परिवार के दिन बीतने लगे। एक दिन निराश होकर नरेन्द्र

श्रीरामकृष्ण से मिलने दक्षिणेश्वर पहुँचे और असीम विश्वास के साथ कहा महाराज मेरी माँ और भाई बहिनों को कुछ अन्न खाने को मिल सके इसके लिए आप अपनी काली माता से कुछ अनुरोध कर दीजिए।

श्रीरामकृष्ण ने कहा अच्छा आज मंगलवार है। आज रात को काली मंदिर में जाकर माँ को प्रणाम करके तू जो कुछ माँगेगा माँ तुझे वही देगी। नरेन्द्र ने सोचा की श्रीरामकृष्ण की जगमाता क्या चीज है? इसकी भी आज परीक्षा कर देखना चाहिए। रात को एक पहर बीत जाने के बाद वे काली मंदिर को ओर चले और उन्होंने अपने मन में सोचा कि आज श्रीरामकृष्ण की कृपा से मेरे परिवार के कष्टों का अन्त होगा। तभी उन्होंने देखा कि जगदम्बा के प्रताप से मंदिर आलोकित है तथा पत्थर की मूर्ति न होकर जगरम्बा माँ अपने वास्तविक रूप में आकर हाथ फैला दया के साथ स्नेह का वरदान दे रही है। यह अद्भुत दृश्य देखकर नरेन्द्र सब कुछ भूल गया।

नरेन्द्र मंदिर से लौट आये। श्रीरामकृष्ण के पूछने पर क्या माँगा उन्हें अपने पूर्व संकल्प का स्मरण हो आया वे गुरू के आदेश पर तीसरी बाद भी गये और अपने लिये कुछ भी नही माँग सकें, क्योंकि नरेन्द्र का तो जन्म से वैराग्य की ओर झुकाव था। इसी दिन से उनके जीवन में एक नया परिवर्तन आया।

एक दिन रामकृष्ण ने अपने जवान शिष्यों को सन्यास देने का संकल्प किया और शुभदिन देखकर गेरूआ वस्त्र प्रदान किया। एक दिन ध्यान करते हुए ध्यान की उच्च अवस्था में डूब गये। उसी दिन उन्हें लक्ष्य के बारे ज्ञान हुआ।

अपने महाप्रयाण से तीन दिन पूर्व रामकृष्ण परमहंस ने नरेन्द्र को स्पर्श करते हुए कहा कि आज मैने अपना सर्वस्व तुझे दे दिया है। मैं फकीर, बन गया हूँ, रामकृष्ण के स्पर्श मात्र से एक अद्भुत अनुभव हुआ जो समाधि के समान प्रतीत हो रही थी। यह वह अनुभूति थी जिसे नरेन्द्र बरसों से प्राप्त करना चाहता था। अब वह नरेन्द्र न होकर विवेकानंद हो गए।

6.3.4 स्वामी विवेकानन्द एक परिव्राजक के रूप में–

1888 ईसवी में परिव्राजक विवेकानंद जब पहली बार अपनी अस्थाई तीर्थ यात्रा करने के लिए निकले तथा 1890 ईसवीं में वे अपने गुरू भाईयों से विदा लेकर एक अज्ञात परिव्राजक संन्यासी के रूप में भ्रमण करने के लिए निकले तब तक उनके मन में एक विलक्षण परिवर्तन आ गया था।

इस अवधि में एक भारतीय संन्यासी की एकान्तवास की स्वाभाविक इच्छा के स्थान पर इस बात के पूर्वाभास ने उनके मन पर अधिकार कर लिया कि उनका यह जीवन केवल मुक्ति के लिए तपस्यारत किसी साधारण सन्यासी का जीवन नहीं, बल्कि उन्हें एक महान भाग्य का निर्माण करना है। भारत माता का निकट परिचय प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा तथा अपने चतुर्दिक उत्पीडित भारत की मौन पुकार सुनकर वे पहले हिन्दुओं के पवित्रम तीर्थ नगरी वाराणसी गये। वहां से संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान प्रमदा दास मित्र से मिले। हिन्दु धर्म और दर्शन की विविध समस्याओं के संबंध में उनसे स्वामी जी का पत्र व्यवहार चला करता था।

वाराणसी से लखनऊ, आगरा, वृंदावन, हाथरस तथा ऋषिकेष गये तथा कुछ समय के लिए पुनः वराहनगर लौट आये। अपने प्रथम शिष्य श्री शरतचन्द्र गुप्ता (स्वामी सदानंद) से उनकी हाथरस में भेंट हुयी थी। उन्होंने अपने गुरूद्वारा भारत का सम्पूर्ण विश्व के आध्यात्मिक पुनरूत्थान का दायित्व सौंपे जाने के संबंध में से बताया। शरत जो एक रेलवे कर्मचारी थे ने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया तथा इस व्रत में सहायता करने के लिए अपने गुरू के साथ हो लिए।

22 जनवरी सन् 1890 में गाजीपुर के पवाहारी बाबा से भेंट उनके जीवन की इस अवधि की एक महत्वपूर्ण घटना है। उनके मन में पवहारी बाबा की साधुता के प्रति प्रगाढ़ का भाव आजीवन रहा। इस समय उनके मन में परमब्रह्म की शाश्वत शांति में डूबे रहने तथा धर्म जागरण के गुरू आदेष को चरितार्थ करने के कर्तव्य के बीच द्वन्द चल रहा था। उन्हें ऐसी आशा थी कि पवहारी बाबा निर्विकल्प समाधि की उच्चतम अवस्था में विमग्न होने में उनकी सहायता करेंगे। और इसलिए वे उनका शिष्यत्व ग्रहण करने को भी उद्यत थे। इस दुर्दम्य आकर्षण के समक्ष झुकने की बलवती इच्छा उनके मन में 21 दिनों तक बनी रही, किंतु श्रीरामकृष्ण के बार–बार दर्शन तथा पवहारी बाबा की अनिच्छा के कारण उन्होंने अपना यह संकल्प त्याग दिया।

जुलाई 1890 में स्वामी विवेकानंद ने रामकृष्ण देव की लीलासहचरी श्री शारदादेवी से जो उनकी महासमाधि के पश्चात युवासन्यासियों की आध्यात्मिक गुरू थी, विदाई ली। हिमालय के एकान्त में जाकर अकेले रहने की अनिवार्यता का अनुभव कर स्वयं का सभी बँधनों से मुक्त करने के लिए उन्होंने गुरू भाइयों से विदा ली। वे एक गोताखोर की तरह भारत महासागर में डूब गये तथा उस महासागर ने उन्हें ढक लिया उस महासागर में तैरते हजारों सन्यासियों के मध्य वे भी मात्र एक गेरूआधारी अनामि सन्यासी के अतिरिक्त और कुछ नहीं थे।

इस भ्रमण काल में उन्होंने उत्तर प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, कर्नाटक, हैदराबाद और केरल के अनेक धार्मिक तथा ऐतिहासिक स्थानों की यात्रायें की। सभी जगह प्राचीन भारत का धार्मिक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक गौरव उनके समक्ष प्रत्यक्ष होता रहा। दूर करने का उपाय ढूंढ़ते हुये एक राज्य से दूसरे राज्य में घूमते रहे। इस प्रकार अनेक राज्यों के राजाओं तथा प्रमुख व्यक्तियों से उनकी भेंट हुई। इनमें खेतड़ी के राजा अजीत सिंह इनके घनिष्ठ मित्र तथा शिष्य हो गये। 1891 फरवरी को अलवर पहुँचे वहाँ उन्होंने पतंजलि के माहाभाष्य का अध्ययन किया। 1892 सितम्बर में पूना में महान राष्ट्रीय नेता बाल गंगाधर तिलक से उनकी भेंट हुई पहले तो स्वामी जी के प्रति उनका भाव बहुत आदर पूर्ण नहीं था किन्तु बाद में उनके प्रखर विचारों तथा पाण्डित्य से प्रभावित होकर तिलक ने उन्हें अपने घर अतिथि के रूप में रहने का आग्रह किया। पूना से वे बेलगांव आये तथा कुछदिन वे वहां रहकर मैसूर तथा बैंगलोर चले गये। पाश्चात्य देशो में जाकर भारत के लिए सहायता प्राप्त करने के लिए तथा सनातन धर्म का प्रचार करने के लिए इस

कार्य में मैसूर के महाराजा ने उन्हें आर्थिक सहायता देने का आश्वासन दिया। मैसूर से वे त्रिवेन्द्रम तथा कन्याकुमारी गये।

उनकी यात्राओं का विशाल अनुभव चलचित्र की भाँति उनके मानस पटल पर अंकित हो उठा। भारत वर्ष के भूत, भविष्य, वर्तमान, उसके पतन का कारण तथा उत्थान के उपायों पर वे ध्यान करते हैं। तब उन्होंने पाश्चात्य देशों की यात्रा पर जाने का गुरूत्व पूर्ण निर्णय लिया जिससे कि वे भारत के निर्धनों के लिए सहायता प्राप्त कर सके इस प्रकार अपने जीवन लक्ष्य का मूर्त रूप दे सकें।

इस निर्णय के साथ वे रामेश्वरम व मदुरई गये। मदुरई में उनकी भेंट रामनाथ के राजा से हुई। राजा उनके निष्ठावान सहयोगी बन गये तथा उन्हें सहायता देने का आश्वासन दिया उसके बाद वे मद्रास गये जहाँ आलासिंगापेरूमल के नेतृत्व में युवकों का एक दल उनकी प्रतीक्षा कर रहा था उन्होंने इस दल को शिकागों में होने वाले विश्व धर्म महासभा में सम्मिलित होने के लिए अमेरिका जाने का अपना संकल्प बताया उनके युवा शिष्यों ने उनके इस कार्य के लिए धन संग्रह किया किंतु स्वामी जी को इस संबंध में जगन्माता का निश्चित बोध नही हुआ अतः उन्होंने एकत्रित धनराशि को निर्धनों में बंटवा दिया। ठीक इसी समय स्वामी जी ने एक प्रतिकात्मक स्वप्न देखा उन्होंने देखा कि श्रीरामकृष्ण समुद्र पर चल रहे हैं तथा स्वामी जी को अपने पीछे आने का संकेत कर रहें हैं। श्री शारदा देवी को भी ठाकुर ने स्वप्न में इस संबंध में आदेश दिया था। श्रीमाँ की अनुभूति तथा आदेश से स्वामी जी का शंका का निवारण हुआ उनके युवा शिष्यों ने पुनः धन संग्रह किया।

31 मई 1881 भारत के लिए एक स्मरणीय दिन रहा इस दिन विवेकानंद बम्बई से अमेरिका के लिये जहाज पर रवाना हुये।

धर्म महासभा में स्वामी जी बड़ी मुश्किलों के बाद पहुंच पाये और देश–विदेश के कोने–कोने से विद्वान वहाँ इकट्ठे हुये सभी अपने मतों एवं धर्म के अनुकूल बाते बढ़ाचढ़ा कर रहे थे लेकिन स्वामी जी ने सभी धर्मों के विशे सत्व पर प्रकाश डाला और सर्वधर्म समभाव की बात लोगों को सिखाई, समन्वय, सहयोग और सहकारिता आदि मानवीय गुणों का सिखाया।

11 सितम्बर 1893 को स्वामी जी धर्म महासभा में शामिल हुए। आर्ट इंस्टीट्यूट का विशाल सभा भवन लगभग सात हजार लोगों से खचाखच भरा हुआ था। जो उस देश के सर्वश्रेष्ठ संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते थे। स्वामी जी ने इसके पर्व इतनी प्रबुद्ध तथा विशाल सभा को संबोधित नहीं किया था, वे एकदम घबरा गये जब उनकी बारी आयी तो उन्होंने विद्या देवी माँ सरस्वती को सबसे पहले मन ही मन प्रणाम किया तथा अमेरिका वासी भाइयों एवं बहनों इन शब्दों के साथ अपना भाषण शुरू किया तभी विशाल जनसमूह आनंद और उल्लास से बादल गरजने की भांति लगातार कई मिनट तक तालियाँ बजाते रहे और उनका उत्साह वर्धन करते रहे। उनके सरल एवं ज्वलंत शब्दों, महान व्यक्तित्व तथा उज्जवल मुख मंडल ने श्रोताओं पर ऐसा प्रभाव डाला कि दूसरे दिन समाचार पत्रों ने उन्हें धर्म महासभा का सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति घोषित कर दिया। हाथ में भिक्षा पात्र लिए सामान्य सन्यासी आज युग पुरुष हो गया 18 नवम्बर 1894 को स्वामी विवेकानंद न्यूयार्क गये। 1

अगस्त 1895 में इंग्लैण्ड पहुँचे वहाँ उन्हें जैसा कठोर परिश्रम करना पड़ा उसका अनुभव करने से ही बड़ा विस्मय होता है।

6 दिसम्बर 1895 में पुनः न्यूयार्क गये तथा 15 अप्रैल 1896 में स्वामी जी पुनः इंग्लैण्ड गये। 19 दिसम्बर 1896 को सेवियर दंपती के साथ स्वामी जी लंदन से रवाना हुए तथा रोम और इटली के अन्य शहरों की यात्रा कर 30 दिसम्बर को नेपल्स से जहाज के द्वारा भारत के लिए प्रस्थान किया। यहाँ गुडविन भी उनके साथ हो गये। 15 जनवरी 1897 को ये लोग कोलम्बो पहुँचे। स्वामी जी के आगमन का समाचार भारत में पहले ही पहुँच चुका था तथा देश भर में सभी स्थानों पर अत्यंत उत्साहपूर्वक तैयारियाँ उनके स्वागत के लिए होने लगी थी। कोलम्बो के सिटी हॉल में उनका स्वागत हुआ श्रीलंका के नागरिकों के अतिशय उत्साह के कारण उन्हें वहां थल मार्ग से पूरे लंका की यात्रा कर मद्रास जाना पड़ा। रोमारोला ने कहा है कि स्वामी जी ने हर्षोन्मत भारतवासियों की आशा का रूप अपने संदेश रूपी शंखनाद के द्वारा भगवान राम शिव और कृष्ण की भूमि को जगाकर तथा उसकी अमर आत्मा को संघर्ष का आवाहन किया और कहा कि मेरे भारत, जागो ! तुम्हारी संजीवनी शक्ति कहाँ है? तुम्हारी अमर आत्मा हैं।

स्वामी जी ने श्री बलराम बोस के निवास पर श्रीरामकृष्ण के सन्यासी तथा ग्रही शिष्यों की सभा बुलाई और इस प्रकार एक मई 1897 को रामकृष्ण मिशन का गठन हुआ। 1898 में कलको में जब प्लेग की महामारी फैली तब मठ के सन्यासियों तथा ग्रही भक्तों को लेकर स्वामी जी ने अपने पाश्चात्य शिष्यों के साथ नैनीताल और अल्मोड़ा के लिए रवाना हुए। इनके पाश्चात्य शिष्यों में मुख्यतः भगिनी निवेदिता के लिए यह समय कठिन प्रशिक्षण और तैयारी का था। 18 अक्टूबर को जब वे कलकत्ता पहुँचे तब वे बहुत दुर्बल और रोग ग्रस्त हो गये थे। फिर भी उन्होंने स्वयं को अनेक कार्यों में लगा दिया। 1899 में सभी सन्यासी बेलूर में आ गये। इस दौरान स्वामी जी सभी सन्यासियों और ब्रह्मचारियों को आध्यात्मिक साधना को तीव्रता मानवता की सेवा के लिए अनवरत प्रेरित करते रहे जिससे कि श्आत्मनोक्षार्थ जगतहिताय चश का लक्ष्य सिद्ध हो सके। किंतु स्वामी जी का स्वास्थ्य बिगड़ता जा रहा था अतः इस आशा से कि पश्चिम देशों में जाने पर उनके स्वास्थ्य में सुधार होगा, उनके सन्यासी भाइयों ने उनके पुनः विदेश यात्रा के प्रस्ताव का स्वागत किया। 31 जुलाई 1899 को स्वामी जी लंदन पहुँचे, 19 अगस्त को न्यूर्याक चल दिये, 20 जुलाई 1900 तक वे अमेरिका में रहे। 1 अगस्त 1900 से 24 अक्टूबर 1900 तक वे फ्रांस में रहे। इसके बाद विएना, बल्कान देशों, कुस्तुनतुनिया, युनान और मिश्र होते हुए वे दिसम्बर 1900 के के अंत में भारत आ गये।

सन् 1901 के अंत में जापान से दो बोद्ध भिक्षुओं ने स्वामी जी को जापान में होने वाले धर्म सम्मेलन में भाग लेने के लिए निमंत्रण देने आए। स्वामी जी उनका निमंत्रण स्वीकार तो न कर सके किंतु उनके साथ वे बोध गया, वाराणसी गये। वाराणसी में उन्होंने देखा कि कुछ युवक उनकी प्रेरणा से दरिद्रों की सेवा में जुट गये हैं, यह देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। उन युवकों द्वारा प्रारम्भ किया गया यही कार्य भविष्य में रामकृष्ण सेवा आश्रम, वाराणसी के रूप में परिवर्तित हुआ। स्वामी जी को अपने महाप्रयाण का आभास हो गया था

अंतिम दिनों में उनके विशेष अर्थपूर्ण तथा सोदेश्य थे। वे कहा करते थे कि विशाल वृक्ष के तले छोटे पेड़ों को पनपने का अवसर नहीं मिल पाता।

6.3.5 स्वामी विवेकानन्द का महासमाधि में प्रवेश–

स्वामी विवेकानंद दिसम्बर 1900 के अंत में भारत लौट आये। लेकिन वहां से आकर अस्वस्थ रहने लगे। फिर भी वे धर्म प्रचार, समाज सेवा और जन कल्याण के कार्यों में अन्त तक लगे रहे और जब तक विश्व के लोग उनको समझ पाते स्वर्ग से उनके पास एक दिव्य शक्ति का आगमन हुआ जो 4 जुलाई 1902 दिन शुक्रवार को स्वामी जी महासमाधि में प्रविष्ट हो गये। महासमाधि से पूर्व स्वामी जी कहा करते थे–

"If there were anotherVivekananda] He would have understood what Vivekananda has done and yet how many Vivekanada shall be born intime-"

6.3.6 योग सम्बन्धी विचारधारा–

ऊपर की ओर देखना और ऊपर उठना तथा पूर्णता की खोज करना इसे ही मोक्ष कहते हैं। जितनी जल्दी कोई मनुष्य ऊपर उठने लगता है उतनी ही जल्दी वह मोक्ष की ओर उन्मुख होता है। वास्तव में मोक्ष का मार्ग सत्य साधना है। योग साधना है।

जीवन का लक्ष्य है मोक्ष की प्राप्ति। लेकिन जब तक मनुष्य स्वयं में ब्रह्म होने की अनुभूति प्राप्त नहीं कर लेता, वह मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता। इस सिद्धि को प्राप्त करने के अनेक मार्ग हैं। योग को चार वर्गों कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग व ज्ञानयोग में विभक्त किया जा सकता है। इसमें से प्रत्येक ब्रह्म सिद्धि का परोक्ष मार्ग है। ये योग विभिन्न स्वभाव के लोगों के अनुकूल होते हैं। अतः योग की सभी प्रणालियों का लक्ष्य मनुष्य के हृदय में विद्यमान अविद्या को हटाना और आत्मा को उसके वास्तविक स्वरूप में फिर से स्थापित कर देना है।

- **कर्मयोग–** स्वामी विवेकानंद के अनुसार कर्मयोग का अर्थ – मौत के मुँह में बिना तर्क–वितर्क किये सबकी सहायता करना भले ही तुम लाख बार ठगे जाओ पर मुँह से एक बात न निकालो और तुम जो कुछ भला कार्य कर रहे हो उसके संबंध में सोचो तक नहीं।
- **भक्तियोग –** योग का दूसरा तत्व भक्ति अथवा पूजा किसी भी रूप में मनुष्य के लिए सबसे अधिक सरल, सुखद और स्वाभाविक मार्ग है। स्वामी जी कहते है कि भक्ति का अवलम्बन ईश्वर हैं।
- **राजयोग–**राजयोग धर्म की पद्धति हैं इसके मुख्य अंग प्राणायाम, धारणा हैं। स्वामी जी कहते हैं जिस प्रकार हर विज्ञान की अनुसंधान करने की अपनी विशिष्ट पद्धति होती है । उसी प्रकार राजयोग धर्म

की पद्धति है। राजयोग पर स्वामी जी का विचार अत्यंत विशिष्ट और व्यावहारिक है जिसे राजयोग नामक उनकी पुस्तक में देखा जा सकता है।

- **ज्ञानयोग** – योग का चौथा तत्व ज्ञानयोग हैं। ज्ञानयोग तीन अंगों में विभक्त किया जा सकता हैं।

  पहला – इस लक्ष्य का श्रवण कि आत्मा ही एक मात्र वास्तविक हैं और सब माया (सपेक्षता) है।

  दूसरा – इसके दर्शन पर सभी दृष्टिकोणों से मनन।

  तीसरा –यह अनुभूति इतने प्रकार से होती है। –

1. इसके आगे सारे तर्क वितर्क को वर्जित करके सत्य की अनुभूति प्राप्त कि जाती है।
2. इस बात के निश्चय से कि ब्रह्म सत्य है और सब मिथ्या है।

6.3.7 विश्व मानवता को योगदान–

योग के क्षेत्र में स्वामी जी के व्यक्तित्व से मिलने वाली सबसे महत्वपूर्ण जीवन प्रेरणा यह है कि जीवन में शक्ति और सामर्थ्य का जागरण नितांत आवश्यक है। जिसके लिए योग साधना ही सर्वोत्कृष्ट उपाय हैं। भारतीय परम्परा में विकसित विभिन्न योग प्रणालियाँ जैसे ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग आदि को बहुत ही व्यावहारिक ढंग से स्वामीजी ने प्रस्तुत किया।

6.3.8 साहित्यिक योगदान–

स्वामी जी के द्वारा सृजित साहित्य एवं ग्रंथ आज के युग में व्याप्त समस्याओं का निर्विवाद समाधान है। उनके सभी सहित्य पाठक तथा साधक में एक क्रांति ज्योति प्रज्जवलित करता है। भारतीय साहित्य जगत में स्वामी जी से संवाद करना चाहते हैं तो उन्हें उनके साहित्य में डुबकी लगानी ही चाहिए।

6.3.9 आदर्श शिष्य–

स्वामी जी गुरुशिष्य परम्परा के एक आदर्शतम उदाहरण हैं। किस प्रकार एक शिष्य अपने सद्‌गुरू के मार्गदर्शन के अनुरूप उनके कार्य में समर्पित हो सकता है इसका जीवन्त उदाहरण स्वामी विवेकानंद रहे हैं। यह वास्तविकता हमें यह ज्ञात कराती है कि बिना गुरू चरण में समर्पण के जीवन में सार्थक प्रकाश नहीं मिल सकता।

6.3.10 संस्कृति संवाहक

इतने अनन्त सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक संपदाएँ होते हुए भी भारत देश पश्चिमी दुनिया की दृष्टि में एक जादूगर तथा योगी–सन्यासियों का देश माना जाता था। इसके विपरीत भारत की आध्यात्मिक सांस्कृतिक

धरोहर को पश्चिमी देशों तक पहुँचाने में स्वामी विवेकानंद जी का योगदान अत्यंत उल्लेखनीय है। अमेरिका तथा इंग्लैण्ड जैसे देश में परिव्रज्या कर भारत की संस्कृति एवं योग विद्या के संदेश का प्रचार कर उन्होंने एक युग पुरूष का कार्य किया है। आज भी पश्चिमी समाज स्वामी जी से कृतकृत्य है।

6.3.11 युवाओं के परमादर्श

सम्पूर्ण युवा जगत के लिए स्वामी विवेकानंद एक जाज्वल्यमान आदर्श है। युवा के जीवन में लक्ष्य निर्धारण, श्रम, पुरुषार्थ, राष्ट्रप्रेम, आध्यात्म एवं योग के प्रति रूझान एवं संस्कृति के प्रति समर्पण किस प्रकार होना चाहिए आदि के प्रति स्वामी जी के दिशा निर्देश बहुत ही अनुकरणीय हैं। लाखों–करोड़ों युवा हृदय आज भी स्वामी विवेकानंद को आदर्श मानते हैं।

6.3.12 योगी व्यक्तित्व

एक संपूर्णतः आदर्श योगी पुरूष का व्यक्तित्व कैसा होता है ये स्वामी जी में साक्षात प्रतिलक्षित होता है। स्वामी जी को जब भी समय मिलता वे ध्यान समाधि की अतल गहराई में जाते और समसामयिक समस्याओं का निराकरण प्राप्त करते थे। स्वामी जी की यह प्रेरणा बिना योग साधना के मानव जीवन सर्वथा अपूर्ण एवं शक्तिहीन है।

6.4 श्री अरविन्द

6.4.1 आरम्भिक जीवन एवं शिक्षा

श्री अरविन्द, डॉ कृष्णधन घोष एवं श्रीमती स्वर्ण लता देसी के तृतीय पुत्र थे। उनका जन्म 15 अगस्त 1872 को कलकत्ता में उनके पिता के मित्र बैरिस्टर मनमोहन घोष के घर पर हुआ था। श्री अरविन्द की माँ एवं मनमोहन घोष की पत्नी परस्पर अभिन्न मित्र थीं।

श्री कृष्णधन घोष अंग्रजी शिक्षा और रहन–सहन से बहुत ज्यादा प्रभावित थे क्योंकि उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय से चिकित्सा की डिग्री प्राप्त की थी और स्काटलैण्ड के एवरडीन विश्वविद्यालय से एम.डी. की डिग्री प्राप्त करने के लिए विदेश यात्रा की। वह 1879 में डिग्री लेकर वापस लौटे। इस यात्रा के बाद उनका अंग्रजी रहन–सहन के प्रति पहले से ही अनुरक्त मन पूर्णतः विलायती हो गया।

श्री राजनारायण बोस ने अपने जमाता कृष्णधन घोष के बच्चों की पढ़ाई को लेकर काफी समझाया कि वह अपने तीनों बच्चों को दार्लिलिंग के लोरेटो कान्यैण्ट स्कूल में प्रवेश न करायें, पर वह न माने। यह स्कूल भारत में नौकरी करने वाले अंग्रेजी अफसरों के बच्चों की शिक्षा के लिए खोला गया था। उस समय श्री

अरविन्द की आयु सिर्फ पांच वर्ष की थी। इसी उम्र में श्री अरविन्द को अपने परिवार से अलग रहने का अभ्यास होता गया।

सन् 1879 में जो श्री अरविन्द की आयु 7 वर्ष की थी तभी डॉ कृष्णधन घोष अपनी पत्नी स्वर्णलता एवं 4 बच्चों के साथ इंग्लैण्ड गये, विनयभूषण, मनमोहन, अरविन्द एवं सरोजिनी। अपने तीनों पुत्रों एवं पत्नी को एक अंग्रजी पादरी और पत्नी को इस निर्देश के साथ सौंप दिया कि बच्चे किसी भारतीय से कोई परिचय प्राप्त न कर सके और उन पर किसी प्रकार का कोई भारतीय प्रभाव न पड़ने पाये। इन आदेशों को अक्षरशः पालन हुआ और अरविन्द भारत, उसके निवासियों, उसके धर्म और उसकी संस्कृति से सर्वथा अनभिज्ञ होकर पलते रहे।

श्री अरविन्द छोटे होने के कारण दुएट के घर पर ही रहते। मि. दुएट रंगपुर के मजिस्ट्रेट श्री जार्ज ग्लेजियर के सम्बंधी थे। दुएट स्टाकपोर्ट रोड चर्च के पादरी थे, उनकी पत्नी श्री अरविन्द को घर पर ही पढ़ाना–लिखाना शुरू किया। दुएट लैटिन भाषा के अच्छे विद्वान थे। उन्होंने श्री अरविन्द को अंग्रजी एवं लैटिन पढ़ाना शुरू कर दिया। श्रीमती दुएट ने उन्हें इतिहास, भूगोल, गणित एवं फ्रेंच पढ़ाती थीं। श्री अरविन्द ने प्रारम्भिक शिक्षा के पश्चात खाली समय में बायावल तथा शैक्सपियर, शैली, कीट्स आदि की कृतियों का अध्ययन किया।

श्री अरविन्द इंग्लैण्ड में अरविन्दा एक्रायड घोष के नाम से जाने जाते थे। दुएट परिवान को सन् 1885 में आस्ट्रेलिया जाना पड़ा और अरविन्द लन्दन में सेंट पाल में भेज दिये गए। प्रधान अध्यापक डॉ. एफ. डलू वाकर ने अरविन्द को ग्रीक सिखाने का काम स्वयं सम्भाला और जल्दी–जल्दी ऊँची कक्षाओं में चढ़ा दिया। सन् 1884 से 1889 ई. तक पांच वर्ष तक वह सैंटपाल में रहे, जहां उन्होंने प्राचीन भाषाओं में काफी योग्यता प्राप्त की और अनेक पुरस्कार पाये। अपना बहुत सा समय उन्होंने पुस्तकें पढ़ने में बिताया।

डॉ. वाकर की यह स्वभावगत विशेषता थी कि वह प्रतिभाशाली छात्रों को तुरन्त पहचान लेते थे और उन पर अतिरिक्त ध्यान देते रहे। उन्होंने साहित्य में वटरवर्थ तथा इतिहास में वेडफोर्ड पुरस्कार प्राप्त किया। सेन्टपाल साहित्यिक समिति के क्रियाशील सदस्य बन गये। श्री अरविन्द घोष ने 5 नवम्बर 1889 में एक वाद–विवाद प्रतियोगिता में भाग लिया जिसका शीर्षक था श्स्विफ्ट के राजनैतिक विचारों में असंगति विषय पर हुई वाक प्रतियोगिता में उन्हें बहुत प्रशंसा मिली थी।

तीनों भाईयों को आर्थिक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता था क्योंकि पिता से पैसा पहले अनियमित रूप से आता था और बाद में तो आना बिल्कुल बन्द हो गया था। श्री अरविन्द ने लिखा है– एक साल तक हमारा खाना सुबह को एक या दो सैंडविच, दाल रोटी, मक्खन और चाय के प्याले तक सीमित रहा।

सन 1890 में सैंट पाल का अन्तिम परीक्षा में उन्होंने प्राचीन भाषाओं के लिए 80 पौंड का वजीफा पाया और इससे वह कैम्ब्रिज के किंग्स कालेज में भर्ती हो सके। आई.सी. एस. की तैयारी के दिनों में भी अस्सी पौंड

का वजीफा मिलता रहा, पर यह रकम तीनों भाईयों के लिये अपर्याप्त थी। इन कठिनाईयों के बाद भी वह अध्ययन में लगे रहे। साहित्य उनका मनपसन्द विषय था। कैम्ब्रिज में श्री अरविन्द के तीन क्रिया–कलाप थे– ट्राईपोस और आई.सी.एस. परीक्षाओं की तैयारी, इण्डियन मजलिस नामक संस्था के कार्यों में सक्रिय भाग लेना और कवितायें लिखना।

इस प्रकार श्री अरविन्द के बाल्यकाल एवं प्रारम्भिक शिक्षा पर दृष्टिपात करते हैं तो ऐसा प्रतीति होता है कि उनका बाल्यकाल संघर्षों से पूर्ण था क्योंकि जिन परिस्थितियों में उन्होंने अपनी शिक्षा को चलाया था उसमें एक आम व्यक्ति द्वारा एक साथ चलाया जा सकना असम्भव है। अपने वजीफे के द्वारा सिर्फ वह अपना ही खर्च नहीं चलाते थे बल्कि अपने दोनों भाईयों का भी खर्च चलाते थे।

6.4.2 युवावस्था एवं कांतिकारी जीवन–

डॉ. कृष्णधन घोष अपने तीनों पुत्रों को पूर्णतया अभारतीय बनाना चाहते थे, क्योंकि उन पर विदेशी शिक्षा का काफी प्रभाव पड़ा था। इसलिए उन्होंने मि. ड्रिएट को ये निर्देश दे रखे थे कि उनके बच्चें किसी भारतीय से न मिलने पाये। परन्तु शीघ्र ही अंग्रेज कर्मचारियों के व्यवहार से उन्हें यह आभास हो गया कि ब्रिटिश अधिकारी भारतीयों के प्रति वफादार नहीं है। भारत में जो उन्होंने डॉ. के रूप में काम किया था तो उनके मन से अंग्रेजो का सारा मोह दूर हो गया। वास्तव में वह अपने पुत्रों को द बंगाली नामक समाचार पत्र की कतरने भेजने लगे। जिनमें वह ऐसे समाचारा पत्रों पर भी निशान लगा देते थे जिनमें अंग्रजों द्वारा भारतीयों के प्रति किये गये व्यवहार और अपमान के विवरण होते थे।

इन प्रत्रों ने ही पहली बार श्री अरविन्द के ध्यान और रूचि को भारत की राजनीति की ओर मोड़ा। इस रूचि ने आगे बढ़कर उनमें अपने देश की स्वतन्त्रता के लिये प्रयत्न करने का विचार पैदा किया, यद्यपि वह अपने देश के विषय में वस्तुतः अनभिज्ञ ही थे। कैम्ब्रिज पहुँचने पर इण्डियन मजलिस नामक एक संस्था से उनका सम्पर्क हुआ, जिसकी स्थापना 1891 में हुई थी। मजलिस के कार्यक्रमों में उन्होंने सक्रियता से भाग लिया और उसके बाद–विवादों में भाग लिया और ऐसा लगता है कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरूद्ध उन्होंने अनेक क्रांतिकारी भाषण भी दिये। कैम्ब्रिज के कुछ अधिक जोशीले भारतीय युवकों ने एक गुप्त संस्था बनायी थी, जिसका नाम द लोटस एण्ड डैगर (कमल और कटार) रखा गया था। श्री अरविन्द अपने भाईयों सहित इस संस्था में सम्मिलित हो गये। श्री अरविन्द आई.सी.एस. की परीक्षा में दाखिल हुए, जो कि उनके पिता की हार्दिक इच्छा थी। परीक्षा में उन्होनं बिना किसी ट्यूशन के 11 वॉ स्थान प्राप्त किया था प्राचीन भाषाओं में सर्वाधिक अंक प्राप्त किये इन्हें 80 पौंड का छात्रवृत्ति भी मिलने लगी थी। परन्तु ये राशि कैम्ब्रिज में अध्ययन के लिये पर्याप्त नहीं थे।

20 नवम्बर 1892 इंडियन सिविल सर्विसेज में 11 वां स्थान प्राप्त कर उसकी सभी त्रैमासिक परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुए लेकिन घुड़सवारी में पास न होने के कारण नौकरी के योग्य नहीं पाये गये। जैसा कि उन्होंने

कहा है उनका आई.सी.एस. की ओर कोई झुकाव नहीं था और वह इस बन्धन से छुटकारा पाने का उपाय ढूंढ़ रहे थे। अपने आप वह सर्विस खोना नहीं चाहते थे क्योंकि घर वाले ऐसा करने नहीं देते, अतः उन्होंने इससे मुक्ति पाने की तरकीब निकाली और घुड़सवारी में असफल हो गये।

6.4.3 श्री अरविन्द का भारत आगमन

बड़ौदा के महाराजा सायाजी राव गायकवाड़ इंग्लैण्ड गये हुये थे। वह भारत के राजाओं में सर्वाधिक प्रबुद्ध और प्रतिभा सम्पन्न राजा थे और अपने कर्मचारियों का सावधानी और विवेक से चुनाव करने के लिए प्रसिद्ध थे। माहाराजा ने श्री अरविन्द का इन्टरव्यू लिया और परिणामस्वरूप श्री अरविन्द बड़ौदा राजय की सेवा में लिये गये। इस प्रकार भारत आने के पूर्व ही उनकी नियुक्ति हो गयी।

चौदह वर्ष तक विदेश में रहकर 1893 में श्री अरविन्द भारत लौट आये और नौकरी करने बड़ौदा पहुँचे। वह 1907 तक लगातार तेरह वर्ष वहाँ नौकरी करते रहे। जब तक श्री अरविन्द बड़ौदा की नौकरी में रहे, प्रत्यक्ष रूप से राजनीति में भाग नहीं ले सके थे। यद्यपि बाद के वर्षों में राष्ट्रीय गतिविधियों में भाग लेने के लिये वह लम्बी–लम्बी छुट्टियाँ लेते थे। उन्होंने प्रच्छन्न रूप से राजनीतिक गतिविधियों का संचालन करना उचित समझा ताकि प्रकट रूप से उनका नाम भी मालूम न हो सके।

बड़ौदा में दो–तीन सरकारी पदों पर काम करने के पश्चात् उनको वहाँ के कालेज में फ्रांसीसी भाषा का प्रोफेसर बना दिया गया। कॉलेज में भी वे निरन्तर उन्नति करते गये और सन् 1906 में जब राजनैतिक कार्य करने के लिये उन्होंने कॉलेज को छोड़ा तब वे वाइस प्रिंसिपल के पद पर काम कर रहे थे। उन्हें उस समय 750 रू मासिक वेतन मिल रहा था जो आज के सापेक्ष लगभग 95000 (पंचानवे हजार रूपये) था। बड़ौदा पहुंचते ही अरविन्द भारतीय भाषाओं संस्कृति, इतिहास और धर्म के अध्ययन में मग्न हो गये वह पाश्चात्य परम्परा के प्रकाण्ड थे ही। उन्होंने हिन्दी का भी अध्ययन किया। उन्होंने संस्कृत भाषा के माध्यम से बंगला भाषा ही नहीं सीखी बल्कि अंग्रजी भाषा के माध्यम से संस्कृत सीखी। बड़ौदा में सभी साहित्यों का ऐतिहासिक तुलनात्मक अध्ययन करने के उपरान्त उन्होंने बेदों के महत्व को अनुभव करना आरम्भ कर दिया था। पारस्परिक पाष्चात्य बौद्धिक परम्परा में रंगे श्री अरविन्द के मन पर भारतीय दर्षन के मूल स्त्रोत के अध्ययन का गहरा असर पड़ा।

बड़ौदा रहते हुए भी बंगाल के क्रांतिकारी आन्दोलन के बौद्धिक नेता श्री अरविन्द ही थे। बड़ौदा राज्य की नौकरी 8 फरवरी 1893 को स्वीकार की थी और से वहाँ से 18 जून 1907 को त्यागपत्र देकर वह सेवामुक्त हुये। इस तरह बड़ौदा में उनका कुल आवास काल 13 वर्ष 5 महीने और 18 दिनों का रहा जो सम्भवतः उनके इंग्लैण्ड प्रवास के लगभग ही था।

6.4.3 वैवाहिक जीवन

सन् 1907 में श्री अरविंद का विवाह राँची, बिहार के निवासी श्री भूपालचन्द्र बोष की कन्या मृणालिनी देवी से हो गया। यद्यपि अपनी पत्नी के साथ श्री अरविन्द का व्यवहार सदैव प्रेम पूर्ण रहा, पर ऐसे असाधारण व्यक्तित्व वाले महापुरूष की सहधर्मिणी होने से उसे सांसारिक दृष्टि से कभी इच्छानुसार सुख की प्राप्ति नहीं हुई। प्रथम तो राजनीतिक जीवन की हलचल के कारण उन्हें पति के साथ रहने का अवसर कम ही मिल सका फिर आर्थिक दृष्टि से भी श्री अरविन्द का जीवन जैसा सीधा–सादा था, उसमें उसे कभी वैभवपूर्ण जीवन के अनुभव करने का अवसर नहीं मिला, केवल जब तक वे बड़ौदा में रहे, वह कभी–कभी उनके साथ सुखपूर्वक रह सकीं। लेकिन जब समय तथा परिस्थितियों की माँग के अनुसार पॉण्डिचेरी जाकर रहने लगे तो उनकी बढ़ी हुई योग साधना की दृष्टि से पत्नी का साथ निरापद नहीं था तो भी कर्तव्य भावना से उन्होंने पॉण्डिचेरी आने को कह दिया पर उसी अवसर पर इनफ्लुएंजा की महामारी से आक्रमण से उनका देहावसना हो गया।

श्री अरविन्द ने प्रारम्भ में ही मृणालिनी को अपने तीन पागलपन के बारे में बताया था–

1. मुझे जो ईश्वर ने दिया है उसमें से केवल निर्वाह हेतु अपने पास रखकर बाकि सब दुसरों को देना चाहता हूँ यदि ईश्वर का अस्तित्व सत्य है तो।
2. मैं ईश्वर का साक्षात्कार करना चाहता हूँ।
3. मैं भारत को अपनी माँ मानता हूँ और उसे पूजना चाहता हूँ। मेरे पास जो कुछ भी वह भारत माता का ही है।

ये तीन पागलपन अरविन्द के जीवन में अत्यन्त उल्लेखनी प्रसंग है।

6.4.4 राजनैतिक जीवन से अध्यात्मिक जीवन में प्रवेश

श्री अरविन्द की जीवन यात्रा में अब राजनैतिक क्रान्ति की अग्नि प्रज्वलित होने लगी। उनके व्यक्तित्व में भरे हुए साहस, कौशल तथा देशप्रेम की भावना इस घटनाओं से मुखरित होते हैं। वकील ने पैरवी करनी छोड़ दी। ऐसे में चितरंजन दास नामक वकील ने निःशुल्क मुकदमें की पैरवी की।

इस मुकदमें में 206 साक्षियों के बयान लिये गये 4000 दस्तावेज पेश किये गये बम, बन्दूक, गोला आदि विस्फोटक विशैले अम्ल और अन्य प्रस्फोटक मिलाकर 5000 वस्तुऐ साक्ष्य सामग्री के रूप में प्रस्तुत की गई थी मुकदमा सेशन जज की बीच कम्पाट की अदालत में था जो कि कैम्ब्रिज में अरविन्द के सहपाठी थे ग्रीक की परीक्षा में उनके बाद दूसरा स्थान पा सके थे। 136 दिन तक सुनवाई चली 9 दिन तक चितरंजन दास ने भाषण दिया जो कि अद्वितीय था। 6 मई 1909 को अदाल ने अपना निर्णय दिया जिसमें अरविन्द को बरी कर दिया गया।

श्री अरविन्द के जीवन को भी अलीपुर कारागार के आश्रमवास ने एक नयी दिशा दी। जेल में श्री अरविन्द का योगाभ्यास, दैवी अनुभूतियाँ, आत्मचिन्तन और गीता उपनिषद् पर विचार चलता रहा। वहां ध्यानस्थ मुद्रा में उन्हें विवेकानन्द की वाणी भी सुनाई दी। अपने सब अनुभवों का विवरण श्री अरविन्द ने बाद में

पांडिचेरी में साधकों के साथ बातचीत करते हुए समय–समय पर सुनाया था। 14 मई 1909 को उन्होंने देशवासियों के नाम एक पत्र में कृतज्ञता व्यक्त की और लिखा कि जिन लोगों ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में मेरे प्रवास के दौरान मेरी मदद की हैं, मैं उनका अभारी हूँ। यदि देश के प्रति मेरे प्रेम ने मुझे खतरे में डाला था तो देशवासियों के प्रेम ने मुझे उस खतरे से सुरक्षित निकाल लिया है।

30 मई 1909 को श्री अरविन्द में उत्तरपाड़ा अभिभाषण में एक जनसभा को सम्बोधित किया। उनका यह उत्तरपाड़ा अभिभाषण बहुत प्रसिद्ध है। अपने जेल प्रवास की अनुभूतियों का विवरण और भावी कार्यक्रम की रूपरेखा का संकेत करते हुए श्री अरविन्द ने उत्तरपाड़ा में कहा था– भारत का उठना दूसरे देशों की तरह नहीं है। वह अपने लिये नहीं उठ रहा है कि दुर्बलों को कुचले। वह संसार पर उस शाश्वत प्रकाश को फैलाने के लिए उठ रहा है, जो उसे सौंपा गया है। भारत का अस्तित्व सदा से ही मानवता के लिए रहा है, अपने लिए नहीं, अतः यह आवश्यक है कि वह महान बने अपने लिए नहीं मानवता के लिए।

बाद में भारत के वायसराय लार्ड मिन्टों के अरविन्द को देश निकाला दिया जाने का प्रस्ताव ठुकरा दिया गया। अरविन्द ने एक दिन की घटना को बताते हुए कहा है कि– मै आगामी घटनाओं के बारे में अपने मित्रों की जोशपूर्ण टिप्पणियाँ सुन रहा था कि मुझे, ऊपर से मेरे सुपरिचित स्वर में एक आज्ञा मिली, केवल तीन शब्दों में चन्द्रनगर को जाओं । बस, कोई 10 मिनट के अन्दर में चन्द्रनगर जाने वाली नाव में सवार था। उसके बाद उसी आज्ञा के अनुसार मैं चन्द्रनगर भी छोड़कर 4 अप्रैल 1910 को पॉडिचेरी जा पहुँचा, पॉडिचेरी पहुँच कर श्री अरविन्द ने राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेना छोड़ दिया। वह पुनः भार आने के उद्देश्य से गये थे। परन्तु मानव जाति के लिए 19वीं शताब्दी में होने वाली भौतिक क्रान्ति के साथ वह बौद्धिक क्रान्ति की आवश्यकता का अनुभव कर रहे थे। उनकी दृष्टि में भारत अब भी अपने गौरवमय अतीत में मानवता के भविष्य में कुंजी लिये हुए था। अतः उन्होंने अपनी शक्ति को राजनीतिक गतिविधियों से हटाकर इस दूसरी दिशा में लगा दिया।

30 अप्रैल को एक घोड़ा गाड़ी पर यह समझ कर बम फेंका गया कि उसमें किंग्स फोर्ड बैठे हैं जबकि मुजफ्फरपुर नगर कल्ब से दो महिलायें अपने घर जा रही थीं। मि. फोर्ड तो बच गये पर दोनों महिलाओं की मृत्यु हो गई। इस उपद्रव से क्षुब्ध होकर ब्रिटिश सरकार ने 2 मई को कलकत्ता में उन अनेक स्थानों की तलाश करवायी जिन पर पहले से ही निगरानी की जा रही थी। ये विभिन्न स्थान थे 32 मुरारी पुक्कुर गार्डन, 15 गोपी मोहन दत्ता लेन, 33/4 राजानावाक्रिस्ता स्ट्रीट, 430/2 तथा 134 हैरीसन रोड, 48 ग्रे स्टीट रोड इत्यादि। इन सबमें श्री अरविन्द का कलकत्ता का निवास स्थान सबसे ऊँचा था। बाग में श्री अरविन्द घोष सहित 13 षड्यन्त्रकारियों को पकड़ा गया।

8 मई प्रातः 5 बजे अरविन्द को उसके घर से गिरफ्तार कर लिया गया। जिसका वर्णन उन्होंने कारा–कहानी नामक पत्र में किया था। एक दिन हवालात में रहने के पश्चात श्री अरविन्द को अलीपुर जेल

भेजा गया। अरविन्द को जमानत में भी नहीं छोड़ा गया। 19 अगस्त 1908 मुकदमा सेशन के सुपुर्द किया गया पैसा खत्म होने के कारण अरविन्द के

6.4.5 यौगिक एवं साधनात्मक जीवन–

श्री अरविन्द जब भारत आये तब वे आध्यात्मिक विषयों से बिल्कुल अनजान थे। हिन्दू धर्म संस्कति से उन्हें जरा भी परिचय नहीं था। श्री अरविन्द फरवरी 1893 में भारत लौटे। भारत की धरती पर पांव रखते ही श्री अरविन्द ने अनुभव किया के उन पर एक गंभीर शांति का अवतरण हुआ है और वह शांति उन्हें चारों ओर से लपेटे रहती थी। स्वयं उन्होंने एक चर्चा में बताया था भारत में आने के बाद से मेरा जीवन और मेरा योग दोनों ही, एक साथ लौकिक और परलौकिक रहे हैं, अपोलो बंदरगाह पर पैर रखते ही मुझे आध्यात्मिक अनुभूतियां होने लगी थीं लेकिन ये संसार से अलग ले जाने वालीं न थीं। यह 1893 का वर्ष भारतवर्ष के लिए शुभ वर्ष सिद्ध हुआ। क्योंकि इसी वर्ष में श्री अरविन्द ने भारत में पदार्पण किया था, इसी वर्ष में स्वामी विवेकानन्द शिकागों के सर्वधर्म सम्मेलन में भाग लेने के लिए अमेरिका गये और इसी वर्ष गांधीजी भारतीयों के मामले को हाथ में लेकर दक्षिण अफ्रीका गये और इसी वर्ष भगिनी निवेदिता भारतवर्ष आयी।

एक समय श्री अरविन्द घोड़ा गाड़ी में बैठकर कहीं जा रहे थे। घोड़ा–गाड़ी कमाटी बाग के पास आई तब उनके अंतर में अचानक ऐसा लगा कि घोड़ा एक कदम आगे बढ़ा तो दुर्घटना हो जायेगी। उनके अंतर में इस दुर्घटना का दृश्य एक क्षण में स्पष्ट हो गया, परंतु उनके आश्चर्य के बीच, उनके अंदर से तेजोमय पुरूष बाहर आया और घोड़े की लगाम हाथ में लेकर खींच ली, घोड़े पर काबू कर लिया और घोड़ा रूक गया। वह एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सका।

श्री अरविन्द का भारत में आगमन ही आध्यात्मिक अनुभूति से हुआ। इस सपरम शांति के अपने भीतर अवतरण के साथ एक दूसरी अनुभूति भी हुई। दार्जलिंग के स्कूल में जिस तमस ने घेर लिया था और जो पूरे इंग्लैण्ड में निवास के दौरान समया रहा। वह इस शान्ति के आते ही चला गया।

शरीर छोड़कर चली गयी आत्माओं का जगत में से बुलाकर उनके साथ संपर्क हो सकता हैं इसका अनुभव भी श्री अरविन्द को बड़ौदा में हुआ। प्लेन्चेट के प्रयोग द्वारा टेबल पर टकोर करके, उसके द्वारा प्रष्नों के उत्तर प्राप्त करते थे। वे प्लेन्चेट द्वारा आत्माओं को बुलाते थे। एक बार श्रीरामकृष्ण परमहंस की आत्मा को बुलाया गया था। वे कुछ बोले नहीं थे, जाते–जाते उन्होंने मात्र इतना कहा था, श्मन्दिर बनाओ–मन्दिर बनाओ। उस समय भवानी मन्दिर की योजना सबके मन में चल रही थी। इसलिए इन शब्दों का अर्थ भवानी मन्दिर का निर्माण करों ऐसा सबने लिया, परंतु वर्ष बाद यौगिक सिद्धियाँ प्राप्त करने के बाद श्री अरविन्द में इन शब्दों का सही अर्थ करते हुए बताया कि मन्दिर बनाओ, इसका अर्थ है कि तुम अपने अंदर माँ का मन्दिर बनाओ। अपने आप को ऐसा रूपान्तरिक कर दो कि वह माँ के मन्दिर का रूप बन जाये।

अनन्त ब्रह्म के साक्षात्कार की अनुभूति भी उनके जीवन में अनायास उत्तर आयी थी। उस समय वे महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ के साथ कश्मीर गये थे, तब उन्हें निर्वाण या ब्रह्म के विषय कोई ज्ञान नहीं था। उन्होंने शास्त्रों का ऐसा कोई अध्ययन भी नहीं किया था फिर भी तख्त–ए–सुलेमान की टेकरी, जिसे शंकर आचार्य की टेकरी भी कहते हैं उसी पर अनन्त ब्रह्म का अनुभव हुआ। इस अनुभूति के विषय में उन्होंने शिष्यों से वार्तालाप में कहा था, काश्मीर में तख्त–ए–सुलेमान की टेकरी पर शून्य में सभी वस्तुएँ लोप होने लगीं, मैं स्वयं और समग्र विश्व एक सर्व–व्यापी अगम्य शून्य में विलीन हो रहे हैं, ऐसा मुझे लगा था। इस अनुभव का व्यक्त करते हुए उन्होंने अद्वैत नाम की कविता भी लिखी थी।

इसी प्रकार पत्थर की मूर्ति में भगवान हो सकते हैं, ऐसा पहले श्री अरविन्द को स्वीकार नहीं था। परंतु चांदौर करनाली में एक छोटे काली मन्दिर में गये वहाँ उन्होंने माँ काली की पाषाण प्रतिमा की ओर देखा तो वह मात्र पाषाण प्रतिमा न थी, अपितु साक्षात माँ काली थीं। इस आध्यात्मिक अनुभव से मूर्तिपुजा के विषय में उनकी शंका निर्मूल हो गई।

तो इस प्रकार अनायास हुए सब आध्यात्मिक अनुभवों ने श्री अरविन्द के यूरोपियन संस्कार संपन्न मानस में आध्यात्मिक जगत के प्रति आकर्षण जगा दिया। उनके अंतर को मोड़ दी जिसने उन्हें योग के मार्ग पर सहज रूप में अतंतः ला ही दिया।

6.4.6 श्री अरविन्द की मौन साधना–

इस आध्यात्मिक अनुभूतियों ने श्री अरविन्द को योग के गहरे आयामों को जानने के लिए प्रेरित किया, जिससे योग में श्री अरविन्द की रूचि जागी। श्री अरविन्द जगत का त्याग करके योग मार्ग पर जाने के बिलकुल भी इच्छुक न थे। उस समय तो उनका एकमात्र ध्येय भारत की स्वतंत्रता था और इस कार्य के लिए उन्हें आध्यात्मिक शक्ति की आवश्यकता महसूस होने लगी थी। इस बात के लिए तब वे और अधिक प्रेरित हुए, जब उनके छोटे भाई वीरेन्द्र, भवानी मन्दिर की स्थापना के लिए विन्ध्य के जंगल गये थे। वहाँ से विशैला बुखार लेकर बड़ौदा आये। यह बुखार किसी भी प्रकार से उतर नहीं रहा था। उसी समय एक नागा संन्यासी श्री अरविन्द के घर आया। वीरेन्द्र की बिगड़ी स्थिति में वहीं सोये पड़े थे तभी नागा सन्यासी की दृष्टि उन पर पड़ी और श्री अरविन्द से पूछा कौन सोया है। तब श्री अरविन्द ने बताया कि वीरेन्द्र के स्वास्थ्य की स्थिति काफी चिंताजनक है। तब नागा साधु ने एक प्याला भर जल मंगाया तथा उसे मंत्र शक्ति से अभिमंत्रित किया और उसे वीरेन्द्र को पीने के लिए दे दिया, तत्पश्चात वीरेन्द्र का बुखार उतर गया। इस घटना से श्री अरविंद ने अनुभव किया कि योग शक्ति का व्यवहार में उपयोग कर सकते हैं तो क्यों न इस शक्ति का प्रयोग देश की स्वतंत्रता के लिए किया जाये।

श्री अरविन्द ने विधिवत रूप से योग साधना आरंभ करने का संकल्प लिया उस समय प्राणायाम को विशेष योग पद्धति के रूप में जाना जाता था। तो फिर श्री अरविन्द ने अपनी योग साधना का प्रारंभ प्राणायाम

से ही किया। उनके मित्र बाबाजी देवधर इंजीनियर स्वामी ब्रह्मानन्द के शिष्य थे। वे प्राणायाम के सत्त अभ्यासी थे, श्री अरविन्द ने इनसे ही प्राणायाम की विधित पद्धति सीख ली थी। वे प्रतिदिन लगभग पांच घण्टे प्राणायाम करते थे। सुबह तीन घंटे तथा शाम को दो घंटे अभ्यास किया करते थे इस प्राणायाम की शक्ति का अनुभव बताते हुए वे बताये थे— मेरा अनुभव है कि इससे बुद्धि और मस्तिष्क प्रकाशमय बनते हैं। जब मै बड़ौदा में प्राणायाम का अभ्यास करता था तो प्रतिदिन 5–6 घंटे करता था। तब मन में बहुत प्रकाश और शान्ति छा गई हो ऐसा लगता था। मैं उस समय कविता लिखता था पहले रोग 5–6 पंक्तियाँ और महीनें में दो सौ पंक्तियाँ लिखी जाती थी। प्राणायाम के बाद में दो सौ पक्तियाँ आधे घंटे में लिख सकता था। मेरी स्मरण शक्ति पहले मंद थीं प्राणायाम के अभ्यास के बाद जब प्रेरणा होती तब सभी पंक्तियाँ अनुक्रम के अनुसार याद रख लेता था। साथ ही मुझे मस्तिष्क के चारों ओर विद्युतशक्ति का चक्र अनुभव होता था। प्राणायाम के करने के बाद अथक परिश्रम करने की शक्ति भी आ गई थी। पहले बहुत काम करने पर थकान लगती थी प्राणायाम से शरीर स्वस्थ हो गया। एक बात और प्राणायाम करते समय मच्छर बहुत हो तो भी मेरे पास फटकते भी नहीं थे। अब अनुभूतियां इतनी प्रगाढ़ होने लगीं कि विष्वास हो गया कि हिन्दू धर्म का मार्ग सत्यान्वेषण का ही मार्ग है तथा उन्होंने माँसाहार का भी त्याग कर दिया तथा एक माह के भीतर ही सूक्ष्म जगत आंखों के सामने प्रकट होने लगा। अर्न्तदृष्टि जाग्रत होने लगी।

ई.सं. 1910 से 1914 तक का समय श्री अरविन्द की मौन साधना का काल था। श्री अरविन्द ने सन् 1908 में योग में पद्धतिपूर्वक प्रवेश किया था। ई.सं. 1914 तक छः वर्ष के अन्तराल में उनके समझ नई चेतना का अवतरण की साधना का कार्य स्पष्ट हो गया।

उत्कट साधना के लिए श्री अरविन्द 1926 में एकान्त में चले गए थे। 1926 से 1938 तक का बारह वर्ष के उनके जीवन का कालखण्ड अभेद्य था। उनके सेवक श्री चंपकलला और श्री माता जी के सिवाय उस एकांत में किसी का प्रवेश नहीं था। दुर्घटना जिसमें उनके जांघ की हड्डी टूट गई थी, कुछ शिष्यों का उनके करीब जाने का अवसर मिला था। छः माह में वे पूर्ण स्वस्थ हो गए थे किन्तु प्राणपण से सेवा करने वाले शिष्यों को वह विदा नहीं कर सके। 1938 से 1950 दूसरा बारह वर्ष का समय श्री अरविन्द की साधना काल का अनोखा समय था। सुबह नौ, दस बजे तक वे हिन्दू समाचार पत्र पढ़ते थे और फिर दोपहर तीन, चार बजे तक लम्बा विराम होता था, जिसमें वे विशेष योग साधनायें करते थे। वे अक्सर आराम कुर्सी पर या बिस्तर या खुली आँखों से जाग्रत समाधि में करते थे।

6.4.7 श्री माँ का आगमन–

पॉल रिशार फ्रेन्च इण्डिया की काएन्सिल का चुनाव लड़ने के लिए पॉण्डिचेरी आये। उनके साथ उनकी पत्नी थी। स्टीमर जैसे–जैसे पॉण्डिचेरी की ओर गति कर रहा था वैसे–वैसे मीरा के अन्तर से प्रभु की प्रार्थना और अधिक उत्कट होती जा रही थी। उसके हृदय में अवर्णनीथ आनन्द और परमशान्ति का अनुभव हो रहा

था। स्टीमर अब पॉण्डिचेरी से दस समुद्री मील दूर था, तब मीरा को एक हल्के तेजोमय वातावरण का स्पर्श हुआ। इस अनुभव के विषय में श्री माताजी ने बताया था– मैं जब यहां पहली बार आयी थी तब मुझे श्री अरविन्द की साधना का वातावरण का अनुभव स्थूल रूप से दस समुद्री मील दूर से हुआ था।'

वर्षों से जिसकी प्रतीक्षा थी वह धन्य पल आ ही गया। जीवन की इस महत्वपूर्ण घटनाक्रम के बारे में बताते हुए श्री माँ ने बताया– जैसे ही मैंने श्री अरविन्द को देखा कि तुरन्त वहीं सुपरिचित व्यक्ति कि जिसकों मैं श्री कृष्ण कहती थी, यही है, यह मैं पहचान गई। मेरा स्थान और मेरा कार्य उनके साथ भारत में है, इस बात का मुझे विश्वास हो गया। वहाँ किसी प्रकार का बह्मचार नहीं हुआ, इस प्रसंग में स्वयं श्री माँ ने बताया, मैं उनके चरणों के पास बैठ गई। मेरे आगे छोटा सा स्टूल था, वह मेरे कपाल तक आता था। मुझे थोड़ा ढक देता था। मैं उनके पास बैठी रही, जब खड़ी हुई तो बिना माँगे ही उन्होंने मेरे मनन में नीरसमा स्थापित कर दी।

6.4.8 महाप्रयाण–

अब श्री अरविन्द का विदाई दिवस निकट ही था, और 5 दिसम्बर 1950 को 1 बजकर 26 मिनट पर उन्होंने शरीर छोड दिया तथा उनके शरीर छोडने के बाद भी 111 घण्टों तक अपूर्व स्वर्ण आभामय प्रकाश निकलता रहा, इस प्रकाश को डॉ. प्रभात सान्याल तथा नीरोदबरण ने श्री माँ की कृपा से स्पष्ट अपनी आंखों से देखा था। साधारणतः डॉक्टरों ने तो निर्णय दे दिया था कि रुधिर में विषैला द्रव्य पूर्ण रूप से व्याप्त हो चुका है, जिसके प्रभाव से शरीर का रंग थोड़े समय में ही बदलकर काला पड़ने लगता है तथा दुष्प्रभाव को देखा जा सकता है। परंतु श्री अरविन्द के देहत्याग के पांचवे दिन तक (एक सौ ग्यारह घंटे) अतिमानस का प्रकाश घनीभूत होकर उतर रहा था। अंत में 9 दिसम्बर को शाम को पांच बजे सादगी भरे वातावरण में उनकी देह को समाधि दे दी गयी।

6.5 महर्षि रमण जी की जीवनी

6.5.1 महर्षि रमण का बाल्य काल–

माँ अवगम्माल और पिता सुन्दर अय्यर वेंकटरमण के घर इस बालक का जन्म सन् १८७६ में हुआ था । सुन्दर अय्यर वेंकटरमण मदुरा में वकालत करते थे । ये एक धर्मनिष्ठ ब्राह्मण थे, वैसी ही उनकी पत्नी साध्वी एवं धर्मनिष्ठ थी। इनके संस्कारों का बालक के जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ा । माता–पिता बालक के प्रथम गुरु होते हैं। स्वाभाविक है सुसंस्कृत परिवार का बालक सुसंस्कृत होगा ही।

6.5.2 शिक्षा–

पढ़ने के लिए इसे कई पाठशालाओं में भेजा गया पर यह जिस प्रकार की शिक्षा चाहता था, उसे वहाँ नहीं मिलती थी, इस कारण प्रायरू शिक्षा के प्रति उदासीन ही रहा करता था। इसे सन्तों की जीवनियाँ बड़ी अच्छी लगती थीं। उसने तमिल सन्तों का जीवन चरित्र पढ़ा। उसके मन में वैसा ही बनने की अकांक्षा उत्पन्न हुई। यही बालक आगे चलकर महर्षि रमण के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उपनिषद् के आत्मान्वेषी ऋषियों की परम्परा को गौरवान्वित करने का श्रेय महर्षि रमण को ही दिया जा सकता है।

6.5.3 मृत्यु पर चिन्तन और वैराग्य–

ज्यों–ज्यों ये बड़े होते गए इनका चिंतन बढ़ता गया । सत्रह वर्ष की आयु में इन्होंने मृत्यु पर चिन्तन किया। मृत्यु के बाद इस शरीर के नष्ट हो जाने पर क्या चेतना समाप्त हो जाती है ? या कहीं अन्यत्र चली जाती है ? इसका उत्तर पाने के लिये वे चिंतन करते– करते थक गए । पर कोई निष्कर्ष नहीं निकल सका । मैं मर जाऊँगा । क्या यह शरीर ही मैं हूँ, शरीर हूँ तो मरता क्यों हूँ ? आदि प्रश्नों के उत्तर वे नहीं पाते थे।

ज्यों–ज्यों इनकी आयु बढ़ी त्यों–त्यों इनका चिन्तन और भी गहन होता गया। इसका परिणाम यह हुआ कि ये पढ़ाई में पिछड़ गये। उन्हें प्रायः गृह कार्य पूरा करके न लाने के कारण अध्यापक की डॉट सहनी पड़ती थी । इनके बड़े भाई नाग स्वामी इनकी इस दशा को देखकर इन पर कुपित हो जाते थे। इस बालक को इस विद्या से तृप्ति नहीं हो पाती थी । वह तो शाश्वत सत्य को जानने के लिये भटक रहा था । रगे इस प्रकार की विद्या से विराग हो गया । उनका मंदीरों में आना–जाना बढ़ गया । वे घण्टों देव प्रतिमा के सम्मुख बैठकर उनसे अपने वास्तविक शाश्वत सत्य को जानने के लिये भटक रहा था । उसे इस प्रकार की विद्या से विराग हो गया । उनका मन्दिरों में आना–जाना बढ़ गया। वे घण्टों देव प्रतिमा के सम्मुख बैठकर उनसे अपने वास्तविक स्वरूप का दिग्दर्शन कराने की प्रार्थना करते रहते।

6.5.4 घर का त्याग–

उन्हें लगा कि उन्हें श्अरुणाचलश बुला रहा है। वहीं उनकी सारी जिज्ञासा शान्त हो सकती है। इस खोज के लिये प्रयोगशाला वहीं बनाई जा सकती है । सत्रह वर्ष की आयु में वे घर छोड़कर इन प्रश्नों के उत्तर खोजने के लिये अरुणाचल के लिये चल पड़े।

जितना बड़ा उद्देश्य होता है उतना ही साहस और श्रम भी आवश्यक होता है। जिन रहस्यों को वे खोजना चाहते थे वे इतने गूढ़ थे कि उसके लिए सारा जीवन समर्पित करना पड़ता है। इस प्रकार का साहस बिरले ही कर पाते हैं।

6.5.5 गहन साधना–

अरुणाचल पहुँच कर वे अपनी गहन साधना में लीन हो गए। इन्होंने अपनी समस्त चित्तवृत्तियाँ समेट कर एकाग्र करली अपने ध्येय में सफल होने के लिये उन्होने मन्दिर के गर्भ–गृह में प्रवेश किया जहाँ वर्षों से जहरीले कीड़े–मकोड़ों का साम्राज्य तो था ही साथ ही घुप्प अंधेरा भी था । यह विचलित न हुए । इनका एक ही लक्ष्य था कि अपने विषय में चरम सत्य की खोज करनी है। इसके लिये उन्होंने अन्य सब कामनाएँ त्याग दी ।

इनका सारा शरीर काला पड़ गया, केश बढ़कर जटा का रूप धारण कर गए, नाखून बड़े–बड़े हो गये पर इनका चिन्तन क्रम बन्द नहीं हुआ । माता अवगम्माल अपने पुत्र को देखने के लिये आई। उस समय ये मौन धारण किए हुए थे । इनकी यह दशा देख माँ का ह्रदय रुक न सका वे रो पड़ी तथा इन्हें घर चलने का आग्रह करने लगीं। इन्होंने माता को लिखकर बताया कि जो हो रहा है ठीक है आप चिन्ता न करें। अरुणाचल आने पर महर्षि कहीं नहीं गए समस्त प्राणियों में एक ही दिव्य चेतना का अनुभव इन्होंने यहाँ किया । उसी आत्म–तत्त्व को सब में देखकर उसकी सत्यता को अपने जीवन–क्रम के द्वारा सिद्ध किया ।

मौन भी वाणी से अधिक मुखर हो सकता है आँखों की भाषा में भी कहा सुना जा सकता है । महर्षि स्वयं इसके अनुपम उदाहरण थे। कई शंकाएँ लेकर लोग्रे इनके पास आते थे ये इन्हीं भाषाओं में आत्मा की स्फुरणा के द्वारा उनका समाधान कर देते थे । इनसे लाभ उठाने वालों में गणपति शास्त्री, कापालि शास्त्री, शुद्धानन्द भारती, शेषाद्रि स्वामी, योगी रंगनाथ, हम्फ्रीस, पाल ब्रटन आदि व्यक्ति भी थे।

शरीर भाव से महर्षि बिल्कुल शून्य थे वे चिदानन्द आत्मा के जीवित जाग्रत स्वरूप थे । स्कन्दाश्रम में एक बार योगी रंगनाथ ने देखा महर्षि के पावों में अगणित काटे चुभे हुए थे । वे निकालने का आग्रह करने लगे। महर्षि ने कहा ष्काटे तो चुभेगे ही तुम कब तक निकालते रहोगे।

सभी प्राणियों को आत्म रूप समझने वाले महर्षि रमण का आत्म तत्व ऊपर से ओढ़ा हुआ नहीं था । उन्होंने अपने इस सत्य स्वरूप को केवल देखा ही नहीं उसे पा भी लिया था। सभी प्राणियों में एक ही चेतन तत्त्व है इसका उदाहरण रमणाश्रम में उन्होंने प्रस्तुत किया था । आश्रम के बन्दर, गिलहरी, मोर, साँप, गाय और कुत्ते महर्षि रमण की तरह ही महत्त्वपूर्ण अंग थे ।

महर्षि रमण तपस्या करने के लिये पर्वत की एक कन्दरा में गये थे । उस कन्दरा पर कितने ही समय से जीव–जन्तुओं का साम्राज्य था । उन्हें इस नवागन्तुक पर बड़ा क्रोध आया । वर्षों से जो मकान केवल उनकी ही बापौती था अब उसका दूसरा अधिकारी आ पहुंचा, यह जानकर उनकेएकाधिकार में विघ्न आ उपस्थित हुआ । यह प्राणी शरीर में उन्हें बड़ा लम्बा–चौड़ा और भयानक लगा। वे सब अपनी सामर्थ्य के अनुसार इनको कष्ट देने लगे। महर्षि को कोई दुःख नहीं हुआ। वे जानते थे कि यह स्थान तो उन्हीं का है। मैंने तो यहाँ आने की अनधिकार चेष्टा की है। इनके एकान्त में विघ्न उपस्थित किया है। वे नहीं चाहते थे कि अपने एकान्त के लिये इन प्राणियों के अधिकारों का हनन करें, पर विवश थे । अपने को उनका अतिथि मानकर रहने लगे । अतिथि अपनी सब कामनाओं का त्याग कर देता है। उसे कोई दाल–सब्जी या रोटी जैसी

कि गृह स्वामी खिलाता है, अस्वीकार ही नहीं करता वरन् प्रशंसा भी करता है। जहाँ वह सुलाता है। वहीं सोता है जैसा कुछ व्यवहार करता है स्वीकार करता है। यही नीति महर्षि ने अपनाई। इनका स्वागत सत्कार गृहस्वामी करने लगे। जब ये साधना करने बैठते तो कोई छिपकली ऊपर आ कूदती और भाग जाती । मच्छर अपना राग अलापने लगते, यही नहीं तीन बार तो बिच्छुओं ने डंक मारा । इस स्वागत को वे निर्विकार भाव से ग्रहण करने लगे। वे ध्यानस्थ हो जाते उनके क्रिया– कलाप चलते रहते उन्होंने अपने शरीर में पत्थर की– सी दृढ़ता उत्पन्न कर ली। उन्हें न विष व्याप्त हुआ न इन प्राणियों की इन हरकतों का कुछ प्रभाव ही हुआ।

कुछ दिन बाद स्वामी जी को इन लोगों ने अपने परिवार का ही मान लिया । मनुष्य के प्रति जो इन प्राणियों में धारणा थी वह इनके व्यवहार को देखकर समाप्त हो गई । वे मनुष्य को प्रेम हीन प्राणी मानते थे। जो सदा इनकी अकारण हत्या करता था । लेकिन स्वामी जी में उन्होंने ऐसा कुछ भी न पाया, तो परायेपन की दीवार टूट गई। आश्रम जीवों में आपसी प्रेम एक विषधर सर्प उनके स्कन्दाश्रम में आया । उन दिनों महर्षि की माता जी भी वहाँ थीं। वे उसे देखकर डर गईं पर महर्षि ने उसे बड़े स्नेह से देखा। उसे विश्वास हो गया। वह महर्षि के चरणों पर लेट गया । इसके बाद वह प्रायः आया करता व उनके चरण स्पर्श करता ।

एक मादा कौआ तो अपने बच्चों का भार ही महर्षि पर छोड़ देती थी । वह दिन को भोजन की तलाश में जाती तो बच्चे उनके पास छोड़ जाती । वे उनकी देख–भाल करते और जब उन्हें भूख लगती वे चिचियाते तब उन्हें भोजन देते और पानी पिलाते ।

महर्षि के वहाँ निवास से कई प्राणी अपने परम्परागत वैमनस्य को भुलाकर मित्र बन गए । यह साँप आश्रम के एक मोर का मित्र बन गया और जब मोर पंख फैलाकर नाचता तो साप भी अपना फन फैलाकर लहराने लगता । परम्परागत वमनस्य का भुलाकर मित्र बन गए । यह साँप आश्रम के एक मोर का मित्र बन गया और जब मोर पंख फैलाकर नाचता तो साप भी अपना फन फैलाकर लहराने लगता ।

आश्रम के पशु–पक्षी उनके बन्धु–बांधव बन चुके थे वे प्रायः उन्हें प्रेम से सहलाते उनसे बात करते और प्रतिदान में उनसे भी स्नेह पाते थे । प्राणी मात्र में एकात्मता की यह अनुभूति ही उन्हें साधना पथ पर शीघ्रता से आगे बढ़ाने में सहायक हुई थी।

महर्षि रमण एक बार शिलाखण्ड पर बैठे थे । एक सर्प रेंगता हुआ आया और उनके पैर पर चढ़कर चला गया । शिष्यों ने पूछा, सर्प ने काटा क्यों नहीं ? महर्षि ने उत्तर दिया, क्या सर्प भूमि पर फन से प्रहार करता है ? सर्प के लिए भूमि कोई अवरोध, वैषम्य या अहंकार पैदा नहीं करती। सर्प के काटने का कारण जीव का अहंकार, उससे उत्पन्न विषमता, भेद और उससे उत्पन्न अवरोध है। जहाँ अहंकार नहीं वहाँ शत्रुता नहीं है ।

महर्षि मौन रहते थे पर उनके समीप आने वालों और प्रश्न पूछने वालों को मौन भाषा में ही उत्तर मिल जाते थे । उनकी दृष्टि नीची रहती थी । पर कभी किसी को आँख से आँख मिलाकर देखा तो इसका अर्थ होता था, उसकी दीक्षा हो गई। उन्हें ब्रह्मज्ञान का लाभ मिल गया । ऐसे ब्रह्मज्ञानी बढ़भागी थोड़े से ही थे।

आरम्भिक दिनों में वे अरुणाचल के कतिपय अनुकूल स्थानों में निवास करते रहे। पीछे उन्होंने एक स्थान स्थायी रूप से चुन लिया। आरम्भ में उनकी साधना का कोई नियत स्थान और समय नहीं था । पीछे वे नियम–बद्ध हो गये, ताकि दर्शनार्थी आगन्तुकों को यहाँ–वहाँ तलाश में न भटकना पड़े। महर्षि रमण सिद्ध पुरुष थे। मौन ही उनकी भाषा थी । उनके सत्संग में सब को एक जैसे ही सन्देश मिलते थे मानो वे वाणी से दिया हुआ प्रवचन सुन कर उठे थे । सत्संग के स्थान में उस प्रदेश के निवासी कितने ही प्राणी नियत स्थान और नियत समय पर उनका सन्देश सुनने आया करते थे । बन्दर, तोते, साँप, कौए सभी को ऐसा अभ्यास हो गया कि आगन्तुकों की भीड़ से बिना डरे झिझके अपने नियत स्थान पर आ बैठते थे और मौन सत्संग समाप्त होते ही उड़कर अपने–अपने घोंसलों को चले जाया करते थे ।

संस्कृत के कितने ही विद्वान् उनकी सेवा में आये तथा अपनेअपने समाधान लेकर वापस गये । उन्हीं लोगों ने रमण गीता आदि कतिपय संस्कृत पुस्तकें लिखीं जिनमें महर्षि की अनुभूतियों तथा शिक्षाओं का उल्लेख मिलता है।

यद्यपि उत्तर भारत में प्रचलित वैष्णव सम्प्रदायों के सभी आचार्य दक्षिण भारत में ही उत्पन्न हुये थे पर वहाँ के निवासी प्रायः शैव हैं और शिव की पूजा का जितना प्रचार तटाँ है, उतना अन्य प्रांतों में देखने में नहीं आता।वे सिद्ध पुरुष थे पर उन्होंने जान–बूझकर कभी सिद्धियों का प्रदर्शन नहीं किया। भारत में योगियों की खोज करने वाले पाल ब्रटन ने बड़े सम्मानपूर्वक उनकी कितनी ही अलौकिकताओं का उल्लेख किया है।

भारत को स्वतन्त्रता दिलाने में जिन तपस्वियों का उल्लेख किया जाता है उनमें योगीराज अरविन्द, रामकृष्ण परमहंस और महर्षि रमण के नाम प्रमुख हैं।

6.5.6 रमण महर्षि की समदृष्टि–

भारतवर्ष के मद्रास प्रांत में उत्तरी भारत की अपेक्षा एक भिन्न प्रकार की सभ्यता तथा संस्कृति के दर्शन होते हैं, जिसे विद्वान् लोग द्रविड़ के नाम से पुकारते हैं । यद्यपि वहाँ के निवासी भी हिन्दू हैं और वेदों का वहाँ उत्तर भारत की अपेक्षा बहुत अधिक प्रचार है, तो भी उनके रीति–रिवाज, रहन–सहन, पूजा–पाठ, भजन–ध्यान आदि सभी बातों में उत्तरी प्रान्तों की अपेक्षा बहुत विलक्षणता पाई जाती है। यद्यपि उत्तर भारत में प्रचलित वैष्णव सम्प्रदायों के सभी आचार्य दक्षिण भारत में ही उत्पन्न हुये थे पर वहाँ के निवासी प्रायः शैव हैं और शिव की पूजा का जितना प्रचार तटाँ है, उतना अन्य प्रांतों में देखने में नहीं आता। इसी मद्रास या तमिल प्रांत में हाल ही में एक ऐसे महापुरुष का आविर्भाव हुआ था जो आध्यात्मिक दृष्टि से एक दैवी पुरुष थे और जिनके आकर्षण से भारतवर्ष ही नहीं विदेशों के भी अध्यात्म प्रेमी व्यक्ति खिंचकर चले आते थे। इस भौतिकवाद के युग में भी अच्छे–अच्छे आधुनिक शिक्षा प्राप्त व्यक्ति इस जंगल में रहने वाले, अल्पशिक्षित और नंगे व्यक्ति के दर्शन करने और उपदेशों को सुनने के लिये पहुँच जाते थे । वहाँ के धार्मिक व्यक्ति तो उनको शिवजी के पुत्र

स्कन्द जी का अवतार मानने लगे थे और अरुणाचल महादेव के साथ उनकी भी पूजा करते । इनका नाम था महर्षि रमण ।

6.5.7 पूर्व संन्यासी का वह श्राप–

कहते हैं कि महर्षि रमण के पूर्वजों के वहाँ किसी समय एक संन्यासी भिक्षा माँगने आया । उसे वहाँ एक दाना भी नहीं दिया गया, उलटे दो–चार खरी– खोटी बातें सुनाई गईं। इस पर संन्यासी को भी गुस्सा आ गया और उसने श्राप दिया कि तुम्हारे वंश में भी कोई न कोई मेरे समान भीख माँगने वाला होता रहेगा। तब से वास्तव में इनके वंश में ऐसी घटना स्पष्ट दिखलाई पड़ रही थी । रमण के एक बाबा संन्यासी थे । उनके एक चाचा वेंकटेशय्यर भी योगी बन गये थे । महर्षि रमण के पिता एक अच्छी स्थिति के वकील थे और इनकी शिक्षा की व्यवस्था भी उत्तम थी पर ये घर के सब बन्धनों को तोड़ कर और घर वालों के, विशेषतया माता के, आग्रह की भी उपेक्षा करके संन्यासी बन गये ।

6.5.8 संत की करुणा–

घर से निकलने पर साधन करते हुये, रमण को बहुत विघ्नों का सामना करना पड़ा था। वे न तो अधिक बोलते थे और न किसी से कुछ माँगते थे, अधिकांश समय ध्यान में आँखें बन्द किये बैठे ही रहते थे, इसलिये लोगों ने उनको एक पागल समझ लिया था। आस–पास के आवारा लड़के उन पर धूल, मिट्टी, कंकड़, पत्थर फेंकते रहते थे। इससे उनको बड़ा कष्ट होता, तपस्या में बाधा पड़ती और चोट भी लग जाती ।

इनसे बचने के लिये वे मंदिर के नीचे की अंधेरी कोठरी में जा बैठते तो वहाँ तरह–तरह के कीड़े–मकोड़े काटते जिससे बदन में घाव हो जाते । अन्त में कुछ लोगों ने उनकी तपस्या के महत्त्व को समझा और वे उपद्रवकारियों से उनकी रक्षा करने लगे। फिर भीस्वामी जी कभी जीव को हानि नहीं पहुँचाते थे और सबको आत्मवत् समझते थे ।

अरुणाचल पहाड़ की गुफा में रहते समय तीन बार बिच्छुओं ने उनको डंक मारा, पर उन्होंने बिच्छुओं को मारने के बजाय जीवित ही छोड़ दिया। एक बड़ा काला नाग भी प्रायः इनके पास होकर निकल जाना था।

और कभी–कभी तो इनके ऊपर चढ़ने लगता था. पर उससे भी इन्होंने कभी कछ नहीं कहा । आस–पास में रहने वाले गिलहरी, कौए, चिड़िया तो उनसे ऐसे निर्भय हो गये थे कि पास में आकर हाथ से दाना, फल आदि खाते रहते थे । एक बन्दर का बच्चा भी दूसरे बड़े बन्दरों के भय से इनकी शरण में चला आया और इनके पास ही रहने लगा। एकाध बार उसने इनको भ्रमवश मार भी दिया, पर इन्होंने उसे क्षमा प्रदान कर दी ।

इस प्रकार अज्ञान पशु–पक्षी तो स्वामी जी के शुद्ध और अहिंसात्मक मनोभाव को देख कर उनके मित्र बन जाते थे, पर मनुष्य तो इस दृष्टि से पशुओं से भी नीचे गिरा हुआ है ।

6.6 स्वामी कुवलयानंद जी

भारत सरकार का आयुष मंत्रालय स्वामी कुवलयानंदजी के सम्मान में एक डाक टिकट जारी करने जा रहा है। यह लेख, बहुत संक्षेप में, आपको उनके जीवन और उपलब्धियों के बारे में बताता है।
योग के आधुनिक इतिहास में, प्राचीन भारतीय पारंपरिक योगविद्या के लिए वैज्ञानिक पद्धति को पहली बार लागू करने का सम्मान स्वामी कुवलयानंदजी को जाता है। इसलिए स्वामीजी को योग के अग्रणी वैज्ञानिक या वैज्ञानिक यौगिक अनुसंधान अध्ययन के जनक के रूप में जाना जाता है।

6.6.1 स्वामी कुवलयानंद का जीवन–

स्वामी जी का जन्म 30 अगस्त 1883 को गुजरात के एक गाँव में हुआ था। उनके पिता श्री गणेश लक्ष्मण गुने और माता श्रीमती सरस्वती थीं। उन्होंने उसका नाम जगन्नाथ रखा । जब जगन्नाथ मुश्किल से चौदह वर्ष के थे तब उन्होंने अपने माता–पिता को खो दिया। उस समय वह शायद चौथी या पांचवीं कक्षा में पढ़ रहे थे। इसके बाद जगन्नाथ आगे की शिक्षा के लिए पुणे चले गए और नूतन मराठी विद्यालय में शामिल हो गए।

संस्कृत स्वामी जी के पसंदीदा विषयों में से एक थी। उन्होंने वर्ष 1903 में मैट्रिकुलेशन में सर्वोच्च अंक प्राप्त किये जिसके लिए उन्हें प्रतिष्ठित जगन्नाथ शंकरसेठ छात्रवृत्ति से सम्मानित किया गया। इस उपलब्धि ने स्वामीजी को भारतीय साहित्य, अध्यात्म, काव्यशास्त्र, नाटक, पुराण, महाभारत, रामायण आदि का अध्ययन करने का अवसर प्रदान किया और उनके कवि, महान संस्कृत विद्वान और संस्कृत भाषा में सन्निहित योग साहित्य के शोधकर्ता बनने की नींव रखी।

6.6.2 शिक्षा–

मैट्रिकुलेशन के बाद स्वामीजी बड़ौदा चले गए और 1904 में बीए पाठ्यक्रम के लिए बड़ौदा कॉलेज में दाखिला लिया। अपने प्रारंभिक कॉलेज जीवन के दौरान स्वामीजी लोकमान्य तिलक जैसी महान राजनीतिक हस्तियों से प्रभावित हुए, जिससे उन्होंने राजनीतिक और सामाजिक जागृति के लिए सक्रिय रूप से काम करने के लिए कॉलेज की शिक्षा छोड़ दी। यह घटना स्वामीजी की देशभक्ति और अपने देशवासियों के प्रति प्रेम को सामने लाती है जो आगे चलकर व्रतों और आदर्शों के रूप में प्रकट हुई जिनका उन्होंने जीवन भर पालन किया। डीजी वाखरकर द्वारा रखे गए ये आदर्श हैं (कैवल्यदनामा, 1948)रू एक , युवा पीढ़ी को देश सेवा के लिए तैयार करना। दो भारतीय शारीरिक शिक्षा प्रणाली में महारत हासिल करना और इसे सामान्य शिक्षा के

साथ एकीकृत करना। तीन आधुनिक विज्ञान के साथ योग के विज्ञान और आध्यात्मिक पहलुओं को एक साथ लाना। इन आदर्शों को मूर्त रूप देने के लिए उन्होंने जीवन भर ब्रह्मचर्य का पालन किया।

उपर्युक्त तरीके से अपने देश की सेवा करने की दृष्टि से स्वामीजी को शिक्षा के महत्व का एहसास हुआ, इसलिए 1907 में वे बड़ौदा कॉलेज, बड़ौदा में फिर से शामिल हो गए और 27 वर्ष की आयु में 1910 में सफलतापूर्वक बीए की परीक्षा उत्तीर्ण की।इन वर्षों के दौरान स्वामीजी ने भारतीय शिक्षा प्रणाली में प्रशिक्षण प्राप्त किया।बड़ौदा के गुरु राज–रत्न प्रोफेसर माणिक राव के अधीन योग सहित भौतिक संस्कृति।

प्रोफेसर माणिक राव के मार्गदर्शन में, स्वामीजी की देशभक्ति और भारतीय जनता – अज्ञानी, अशिक्षित, अंधविश्वासी और आत्मा और शरीर से बीमार – को शिक्षित करने के लिए काम करने के उत्साह को एक ठोस दिशा मिली।

उन्होंने महसूस किया कि शिक्षा भारतीय जनता और उसके बाद मदर इंडिया को पुनर्जीवित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। अपने आदर्शों को साकार करने के लिए स्वामीजी ने एक शिक्षण का कार्य चुना, और यह उपयुक्त भी है। वह पहले चिमनाबाई हाई स्कूल, बड़ौदा (1913–1915) और बाद में अमलनेर, महाराष्ट्र में तत्कालीन प्रसिद्ध खानदेश एजुकेशन सोसाइटी (केईएस) में शामिल हुए। बाद में उन्होंने वर्ष 1924 में लोनावला में कैवल्यधाम आश्रम की स्थापना के लिए इसे छोड़ दिया। स्वामीजी ने छात्रों के बीच राष्ट्रीय शिक्षा की भावना पैदा करने के लिए केईएस को सही मंच में बदल दिया।

इस अवधि के दौरान उन्होंने संस्कृत और मराठी भाषाओं में देशभक्ति, भक्ति गीत भी लिखे। एक वैज्ञानिक होने के अलावा स्वामीजी एक संस्कृत विद्वान, शिक्षाविद्, आध्यात्मिक व्यक्तित्व, कवि थे जो अपने जीवन के अंत तक गीत लिखते रहे, कभी–कभी उनका पाठ करते रहे। 29 सितंबर 1965 को प्रोफेसर वीबी घाणेकर को लिखे एक पत्र में, जिन्होंने आसन और प्राणायाम पर स्वामीजी की पुस्तकों का हिंदी में अनुवाद किया था, स्वामीजी कहते हैं, लगभग एक पखवाड़े के समय में मैं आपके योग्य पिता को उनके अवलोकन के लिए अपने एक या दो गाने मेल करूंगा और आशीर्वाद का।

गहन संस्कृत कविता में स्वामीजी का आकर्षण और आनंद इतना तीव्र है कि उन्होंने अपने लिए कुवलयानंदष नाम ग्रहण किया, जिसे उन्होंने संस्कृत में अपने भक्ति गीतों में इस्तेमाल किया, **आनंदया सदास्तु मे कुवलयानंदस्य नंदात्मजः** । बाद में वे योग के क्षेत्र में भी इसी नाम से प्रसिद्ध हुए।

केईएस अमलनेर में शिक्षण गतिविधियों के साथ–साथ स्वामीजी योग का अभ्यास कर रहे थे, जिसके बारे में वे स्वयं लिखते हैंरू 1918 के अंत में योग के अभ्यास के बारे में मेरी तीव्रता अपने चरम पर पहुंच गई। परमहंस महाराज से दीक्षा प्राप्त करना मेरी इच्छा थी।

परम पूज्य परमहंस श्री माधवदासजी महाराज , मूल रूप से बंगाल के थे, श्री गौरांग महाप्रभु की परंपरा से थे और एक आदर्श आध्यात्मिक व्यक्तित्व थे, जो अलीबाग के पास कनकेश्वर में गहन तपस्या करने के बाद बड़ौदा (गुजरात) के पास मालसर में नर्मदा के तट पर रहते थे। महाराष्ट्र में उन्हें मिर्चीबाबा के नाम से

भी जाना जाता था क्योंकि वह केवल हरी मिर्च और थोड़ी सी छाछ पर रहते थे। स्वामीजी की तीव्र इच्छा 1918 के अंत में साकार हुई जब वे परमहंसजी के शिष्य बन गये। स्वामीजी को उनके गुरु ने आध्यात्मिक और वैज्ञानिक आधार पर योग प्रशिक्षण का आशीर्वाद दिया था।

इस पहलू पर प्रकाश डालते हुए डॉ. जी. राम कृष्ण कहते हैं, "योग की तकनीकों के अलावा विद्यार्थियों को इसके अर्थ और प्रभावकारिता की जटिलताओं से भी परिचित कराया गया। गुणे में तर्कवादी लगातार प्रश्न किए बिना शायद ही कोई बात स्वीकार कर पाता। जैसा कि हुआ, माधवदास स्वयं योग में किसी भी गहन विश्लेषणात्मक प्रयास के खिलाफ नहीं थे क्योंकि वह इसे सभी जांचों से परे नहीं मानते थे। गुने और माधवदास एक तरह से एक–दूसरे के लिए ही बने थे और समय बीतने के साथ–साथ उन्होंने एक–दूसरे में पूर्णता पाई।

उन दिनों योग रहस्य में डूबा हुआ था और विभिन्न अंध विश्वासों, भ्रांतियों से घिरा हुआ था और आधुनिक वैज्ञानिक दिमाग के लिए इसकी कोई अपील नहीं थी। स्वामीजी को असीमित योगिक क्षमताओं और मानव शरीर और मन पर इसकी प्रभावकारिता के बारे में पूरी तरह से एहसास हो गया था, उन्होंने 1920–1921 में बड़ौदा अस्पताल की प्रयोगशाला में कुछ छात्रों को लेकर मानव शरीर पर कुछ योग प्रथाओं के प्रभावों की जांच शुरू की।

इन वैज्ञानिक प्रयोगों के उत्कृष्ट परिणामों के साथ उनके व्यक्तिपरक अनुभव ने उन्हें आश्वस्त किया कि यदि योग की सदियों पुरानी प्रणाली को आधुनिक वैज्ञानिक प्रयोगात्मक दृष्टिकोण के माध्यम से समझा जाए, तो यह मानव समाज के आध्यात्मिक और भौतिक पुनरुत्थान में बहुत मदद करेगी। यही उनके जीवन का मिशन बन गया।

1920 में तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने नेशनल कॉलेज, जिसके स्वामीजी प्राचार्य थे, की मान्यता इस डर से रद्द कर दी कि इसमें दी जाने वाली राष्ट्रवादी शिक्षा से छात्रों में क्रूर ब्रिटिश शासन के खिलाफ विद्रोह की भावना फैल जाएगी। ऐसी परिस्थितियों में भी स्वामीजी ने केईएस से जुड़े रहने के दौरान 1923 तक योग का अपना प्रायोगिक अध्ययन जारी रखा। इन अध्ययनों के माध्यम से स्वामीजी को एहसास हुआ कि आधुनिक विज्ञान योग से संबंधित समस्याओं से निपटने के लिए पर्याप्त रूप से उन्नत अवस्था में आ गया है और यदि प्रयोगशाला पद्धतियाँ योगिक घटना की जांच में उपयोग किए जाने पर परिणाम न केवल भौतिकी, जीव विज्ञान, शरीर विज्ञान, शरीर रचना विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान आदि जैसे विज्ञानों को समृद्ध करेंगे, बल्कि कम से कम सदियों के श्रम के बाद, इसके कई पहलुओं में दर्शनशास्त्र का पुनर्निर्माण करना भी संभव बनाएंगे

स्वामीजी ने अपने शोध कार्य के परिणाम तत्कालीन प्रमुख अधिकारियों जैसे डॉ. टैगोर, डॉ. बोस और डॉ. नादगीर को दिखाए। उन सभी को काम दिलचस्प और आगे की जांच के योग्य, विधियां वैज्ञानिक रूप से मिलीं। उन सभी ने स्वामी जी से कार्य जारी रखने का आग्रह किया।

स्वामीजी ने स्वयं व्यक्त किया है कि वे इस कार्य के लिए अपने शिक्षक प्रोफेसर माणिक राव और अपने परम दयालु आध्यात्मिक गुरु श्रीमन परमहंस माधवदासजी महाराज के आभारी हैं। इसके अलावा, उन्हें ऊपर से बुलावा के रूप में एक शोध संस्थान स्थापित करने की प्रेरणा मिली, और अगर उन्होंने महसूस नहीं किया होता कि उन्हें काम शुरू करने के लिए ऊपर से बुलावा आया है, तो उन्होंने इस महत्वाकांक्षी रास्ते पर कभी कदम नहीं उठाया होता! उन्हें आह्वान का पालन करना पड़ा और अंततः, इस कार्य के लिए समर्पित एक आश्रम स्थापित करने का प्रस्ताव देकर इस कार्य को करने का मन बनाया।

6.6.3 योग पर वैज्ञानिक शोध–

आधुनिक योग के इतिहास में विजयादशमी, 7 अक्टूबर 1924 को एक नया अध्याय लिखा गया था क्योंकि इसी दिन स्वामीजी ने आधुनिक वैज्ञानिक आधार पर शोध करने के उद्देश्य से पुणे (महाराष्ट्र) के पास लोनावला में कैवल्यधाम आश्रम की स्थापना की थी। कैवल्यधाम की स्थापना के पीछे स्वामीजी का दृ ष्टिकोण है कैवल्यधाम का उद्देश्य था।

एक , मानव अनुभव की उच्चतम अवस्थाओं को वैज्ञानिक ढंग से निपटाकर पश्चिमी दर्शन की जैविक प्रवृत्ति को उसके तार्किक निष्कर्ष तक ले जाना। दो , पश्चिमी प्रयोगशाला की शोध पद्धतियों को आध्यात्मिक चमत्कार प्रकट करने वाला बनाना। तीन , मनुष्य के व्यक्तिगत आध्यात्मिक अनुभवों को प्रयोग के अधीन करके भारतीय दर्शन के वस्तुनिष्ठ चरित्र का विकास करना।

स्वामीजी का मानना था कि पूर्व और पश्चिम दोनों ने अपनी–अपनी विशिष्ट प्रवृत्तियों – आध्यात्मिक और भौतिक – के साथ प्रगति की है। लेकिन शांति और समृद्धि की प्राप्ति के लिए इनके बीच संश्लेषण की आवश्यकता है और कैवल्यधाम न केवल अपने शोध से बल्कि ऐसे लोगों को प्रशिक्षित करके इस आत्मसात करने में मदद करने का प्रस्ताव करता है जो उन आदर्शों के लिए खड़े होंगे जो इस आत्मसात को बढ़ावा देंगे।

इस आत्मसात को मुख्य उद्देश्य के रूप में रखते हुए स्वामीजी ने अनुसंधान, योग मीमांसा (वाईएम) का प्रकाशन, पुस्तकालय की स्थापना, नैदानिक प्रयोगशाला, रूग्ना सेवा मंदिर, योग शारीरिक में प्रशिक्षण के माध्यम से प्रमुख उद्देश्य की प्राप्ति के लिए निम्नलिखित अधीनस्थ आदर्शों को बिल्कुल आवश्यक गतिविधियों के रूप में देखा। संस्कृति, माधवदास आध्यात्मिक संस्कृति अकादमी, बाहरी लोगों के लिए आध्यात्मिक प्रशिक्षण, ग्राम सेवाएँ, शाखाओं की स्थापना आदि। 1924–1930 के दौरान कैवल्यधाम की गतिविधियों की समीक्षा करते हुए, स्वामीजी ने स्वयं इन गतिविधियों की उपलब्धियों का एक संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है एक वैज्ञानिक के रूप में स्वामीजी के जीवन–वृत्त को उजागर करने की दृष्टि से शोध एवं योग मीमांसा की संक्षिप्त रूपरेखा उपयुक्त होगी। कैवल्यधाम आश्रम की स्थापना के साथ ही स्वामीजी ने 1924 में योग मीमांसा (वाईएम) नामक

त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया। यह योग के क्षेत्र में वैज्ञानिक जांच के प्रकाशन के लिए समर्पित अपनी तरह की पहली पत्रिका है।

ऐसी कोई भी चीज जिसका चिकित्सीय या प्रयोगशाला में परीक्षण न किया गया हो, इस पत्रिका के पन्नों में दिखाई नहीं देगी। इन शोधों से कौन–सी सच्चाई सामने आएगी, इसकी कोई भविष्यवाणी नहीं कर सकता? लेकिन यह बहुत संभव है कि आश्रम का शोध कार्य फिजियोलॉजी, साइको–फिजियोलॉजी, थेरेप्यूटिक्स, आध्यात्मिक और भौतिक संस्कृति आदि के क्षेत्र को समृद्ध करेगा – स्वामीजी ने अक्टूबर में योग मीमांसा के पहले अंक में अपने संपादकीय नोट्स में कहा था।

स्वामीजी ने योगिक अनुसंधान के शारीरिक और चिकित्सीय पहलुओं में जिस वैज्ञानिक पद्धति को लागू किया, उसका अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि उन्होंने योग मीमांसा में किस तरह से उप–खंड निर्धारित किए हैं। वे हैं वैज्ञानिक, अर्ध–वैज्ञानिक, लोकप्रिय और विविध।

6.6.4 योग के वैज्ञानिक स्वरूप प्रतिपादन–

"वैज्ञानिक अनुभाग का उद्देश्य आश्रम के शोधकर्ताओं द्वारा एकत्र किए गए वैज्ञानिक डेटा को विज्ञान के लोगों को प्रदान करना है जो अपने स्वयं के निष्कर्ष निकाल सकते हैं और कैवल्यधाम के शोधकर्ताओं द्वारा पहुंचे निष्कर्षों की आलोचनात्मक जांच भी कर सकते हैं। यह कार्य पश्चिम द्वारा मान्यता प्राप्त वैज्ञानिक तरीकों पर सख्ती से संचालित किया जाएगा। दूसरा खंड आश्रम के विद्वानों द्वारा निकाले गए निष्कर्षों को प्रदान करता है और इन शोधों के चिकित्सीय, आध्यात्मिक और भौतिक संस्कृति आदि में अनुप्रयोग को इसमें जगह मिलेगी। किसी अंतिमता का दावा नहीं किया जा सकता. क्लिनिकल टिप्पणियों को तीसरे खंड यानी लोकप्रिय में जगह मिलेगी, जबकि अंतिम खंड में आधिकारिक व्यक्तित्वों की आलोचनाएँ प्रकाशित की जाएंगी। आज योगिक शारीरिक संस्कृति, योग चिकित्सा विज्ञान, निवारक अभ्यास की एक प्रणाली के रूप में योग, मानसिक स्वास्थ्य के विज्ञान के रूप में योग आदि को दुनिया भर में स्वीकृति मिल गई है। आधुनिक युग में योग जगत भारत के प्राचीन योग विज्ञान को यह दर्जा देने के लिए स्वामी जी का ऋणी है। 1930 में ही उन्होंने योग की इन संभावनाओं को कैवल्यधाम के शोध निष्कर्ष के रूप में साकार किया।

स्वामीजी का मानना था कि रोकथाम हमेशा इलाज से बेहतर होता है। योगाभ्यास का उपचारात्मक महत्व बहुत अधिक है। लेकिन उनका निवारक मूल्य उनके उपचारात्मक मूल्य से कहीं अधिक है। योग में ये निवारक अभ्यास शारीरिक संस्कृति की यौगिक प्रणाली का गठन करते हैं।

स्वामीजी के योगदान को जल्द ही प्रतिष्ठित हस्तियों, प्रमुख पत्रिकाओं, सरकारी एजेंसियों आदि द्वारा स्वीकार किया गया। स्वामीजी और महात्मा गांधीजी के बीच पत्राचार से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वामीजी गांधीजी के स्वास्थ्य सलाहकार थे और उन्होंने गांधीजी को योग अभ्यास के बारे में सलाह दी थी। स्वामीजी द्वारा वैज्ञानिक रूप से अध्ययन किए गए योगाभ्यास के निवारक मूल्यों से गांधीजी आश्वस्त थे।

बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति पंडित मदन मोहन मालवीय ने 8 जून, 1928 को कैवल्यधाम का दौरा किया और एक सप्ताह तक रुके। वह वैज्ञानिक तर्ज पर स्वामीजी की योग गतिविधियों से प्रभावित थे और उन्होंने अपने विश्वविद्यालय के साथ कैवल्यधाम के सहयोग की संभावना को समझने की कोशिश की, यदि व्यवस्थित प्रशिक्षण के मामले में योग संस्कृति को वहां पेश किया गया था।

6.6.5 विदेश में योग की अलख–

पंडित नेहरू ने लिखा, योग प्रशिक्षण के वैज्ञानिक पहलू में अब विदेशों में बहुत रुचि है। कुवलयानंद को विदेशी विश्वविद्यालयों ने विशेष रूप से अमेरिका में आमंत्रित किया है। मुझे बहुत खेद होगा यदि उन्होंने भारत छोड़ दिया और अपना काम कहीं और शुरू किया। , क्योंकि मुझे लगता है कि यह काम भारत में किया जाना चाहिए। एक आदमी के रूप में कुवलयानंद सक्षम और आकर्षक और ईमानदार हैं। योगिक भौतिक संस्कृ ति के क्षेत्र में स्वामीजी की शोध गतिविधियों के योगदान से आश्वस्त होकर, 1932 में तत्कालीन यूपी सरकार ने उन्हें योगिक संस्कृति में शारीरिक शिक्षा शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए आमंत्रित किया। इसी वर्ष उन्होंने मुंबई के सांताक्रूज में कैवल्यधाम की शाखा भी स्थापित की। बाद में इस शाखा को मरीन ड्राइव में स्थानांतरित कर दिया गया और अब इसे ईश्वरदास चुन्नीलाल योगिक स्वास्थ्य केंद्र के रूप में जाना जाता है।

कैवल्यधाम गतिविधियों के तेजी से और बड़े पैमाने पर विकास के कारण, स्वामीजी ने आश्रम की सुचारू कार्यप्रणाली और प्रगति को सुविधाजनक बनाने के लिए इसकी गतिविधियों को फिर से व्यवस्थित और नियमित करना आवश्यक समझा। इसके परिणामस्वरूप 1944 में श्रीमान माधव योग मंदिर (एसएमवाईएम) समितिश की स्थापना हुई। इसका नाम स्वामीजी के गुरु परमहंस माधवदासजी महाराज की पवित्र स्मृति में रखा गया है।

समिति के तत्वावधान में किए गए अनुसंधान, प्रशिक्षण और चिकित्सीय गतिविधियाँ आदि स्वामीजी के दृष्टिकोण, आदर्शों और ज्ञान के और अधिक ठोस अवतार के अलावा और कुछ नहीं हैं। स्वामीजी का दृढ़ विश्वास था कि प्रत्येक यौगिक घटना चाहे वह शारीरिक, मानसिक या आध्यात्मिक हो, का एक शारीरिक प्रभाव होता है और इसे वैज्ञानिक रूप से समझाया जा सकता है, तर्कसंगत जांच के माध्यम से समझा और समझाया जा सकता है।

एक पूर्ण योग महाविद्यालय पहली बार 1950 में स्थापित किया गया था। यह युवाओं को बौद्धिक और आध्यात्मिक रूप से विकसित करने में मदद करने के स्वामीजी के उद्देश्य को पूरा करने का एक साधन था ताकि वे मानवता की सेवा कर सकें। स्वामीजी सभी धर्मों और संस्कृतियों की एकता और पूर्व और पश्चिम के समावेश में विश्वास करते थे। उन्होंने संक्षेप में अकादमी का नाम बदलकर कॉलेज ऑफ योग एंड कल्चरल सिंथेसिस कर दिया।

अपनी तरह के पहले योगिक अस्पताल में अग्रणी होने का श्रेय स्वामीजी को जाता है। जैसा कि हमने ऊपर उल्लेख किया है, रुग्ना सेवा मंदिर ने 1961 में स्वामीजी के हाथों श्रीमती अमोलका देवी तीरथरामा गुप्ता योगिक अस्पताल का रूप ले लिया। यह पुरानी और गैर–संक्रामक बीमारियों के इलाज के लिए समर्पित था। स्वामीजी द्वारा किए गए चिकित्सीय शोध, ख्बाद में (1963 में) स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा योग थेरेपी– इसके मूल सिद्धांत और तरीके नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित, को इस योग में और इसके माध्यम से आवश्यक आवेदन प्राप्त हुआ। अस्पताल।

स्वामीजी ने अपनी शोध उपलब्धियों को योग मीमांसा (वाईएम) में प्रकाशित किया। स्वामीजी के शोध पत्रों, पुस्तकों और व्याख्यानों की ग्रंथ सूची इतनी विशाल है कि यहां उसका विवरण देना संभव नहीं है।

6.6.6 स्वामी जी का योग पर लेखन–

यहां यह उल्लेख करना पर्याप्त होगा कि वह न केवल एक महान योग वैज्ञानिक थे, बल्कि संस्कृत योग ग्रंथों के क्षेत्र में एक असाधारण शोधकर्ता भी थे। शोध पत्र – योग सूत्र और व्यासभाष्य में प्राणायाम , बृहदयोगी याज्ञवल्क्य में सिद्धांत और पतंजलि के योग सूत्र का वाचन – क्या यह सटीक है? और आसन, प्राणायाम, डिक्शनरी ऑफ योग, क्रिटिकल एडिशन ऑफ बृहदयोगी याज्ञवल्क्य – स्मृति, गोरक्ष शतक, वशिष्ठ संहिता, हठ प्रदीपिका आदि शीर्षक वाली पुस्तकें कुछ अनुकरणीय कार्य हैं जो इस क्षेत्र में स्वामीजी की विद्वता के बारे में बताते हैं।

इन उपलब्धियों के बावजूद स्वामीजी ने सादा जीवन व्यतीत किया। उन्होंने कभी भी अपनी आध्यात्मिक उपलब्धियों के बारे में बात नहीं की। 1965 में किसी समय प्रोफेसर वाडेकर डीडी (अध्यक्ष, शिक्षा आयोग सेमिनार आयोजन समिति, राज्य शिक्षा संस्थान, पुणे) और अन्य लोगों ने आदरपूर्वक लेकिन आग्रहपूर्वक स्वामीजी से अपने आध्यात्मिक अनुभव के बारे में बोलने का आग्रह किया। स्वामीजी ने एक अनुभव सुनाया जब वे अपने गुरु परमहंसजी के साथ थे। स्वामी जी अपने गुरु से जानना चाहते थे कि क्या समाधिस्थ योगी भी होते हैं। बार–बार अनुरोध करने पर परमहंस एक बार उन्हें नर्मदा नदी के किनारे जंगल में ले गये। उस रात्रि में स्वामी जी ने देखा कि अनेक योगी वृक्षों के नीचे समाधि लगाये बैठे हैं। उस दृश्य को देखकर स्वामीजी स्वयं समाधि में चले गये।

जोशीले उत्साह के साथ स्वामीजी ने योग अनुसंधान, शिक्षा और चिकित्सा विज्ञान के माध्यम से विशेष रूप से भारत माता और पूरे विश्व को शिक्षित और सेवा करने के पोषित आदर्शों को साकार करने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

18 अप्रैल, 1966 को स्वामीजी ग्रेट बियॉन्ड जर्नी पर चले गए और योग के क्षेत्र में अपने काम से अमर हो गए।

6.7 योगी श्यामाचरण लाहिड़ी महाशय जी

6.7.1 जन्म एवं आरम्भिक शिक्षा –

लाहिड़ी महाशय का जन्म 30 सितम्बर, 1828 ई. में नदिया सिले के धुरणी गांव में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री गोरेमोहन लाहिणी था। गोरेमोहन लाहिडी ने अपनी पहली पत्नी के निधन के बाद दूसरा विवाह किया था। पहली पत्नी से दो पुत्र एवं एक पुत्री की प्राप्ती हुई थी। दूसरी पत्नी से श्यामाचरण लाहिड़ी का जन्म हुआ।

लाहिड़ी के पैतृक निवास स्थान में जलगी नामक नदी बहती थी, जिसके अचानक मार्ग बदलने के कारण इनका घर बह गया। अतः इनका परिवार काशी चला गया और वहीं पर बंगाली टोला स्थित एक घर में वे परिवार सहित रहने लगे।

लाहिड़ी जी बचपन से ही अतुलनीय प्रतिभा के धनी थे। महाराजा जयनारायण घोषाल द्वारा स्थापित हाईस्कूल में इन्होंने अंग्रेजी, बंगला, हिन्दी एवं फारसी भाषा का ज्ञान प्राप्त किया। इसके बाद इन्होंने संस्कृ त भाषा का अध्ययन प्रारम्भ किया। संस्कृत साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान नागोली भट्ट से आपने उपनिषद एवं शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया।

6.7.2 विवाह एवं गृहस्थ जीवन–

सन् 1846 में लाहिड़ी जी का विवाह श्री देवनारायण सान्याल की पुत्री काशीमणि देवी के साथ हुआ। लाहिडी महाशय जी के दो पुत्र एवं दो पुत्रियां हुई।

सन् 1851 में लाहिड़ी की नियुक्ति ब्रिटिश सरकार के सैनिक इंजीनियरिंग विभाग में एकाउण्टेट के पद पर हुई। अनेक जगह इनका तबादला होता रहा और अन्ततः आपकी बदली दानापुर में हुई।

कुछ समय बाद सम्पर्क को लेकर इनके परिवार में झगड़ा होने लगा। धन के प्रति लाहिड़ी जी को कोई विशेष मोह नहीं था। इन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति सौतेले भाई को दे दी और गरुडेश्वर में अपने लिये नया घर ले लिया।

कुछ समय बाद दानापुर से इनकी बदली रानीखेत हो गई। अपना परिवार काशी में ही छोडकर ये रानीखेत के लिये रवाना हो गये। वहां अपना कार्य संभाल लेने के बाद ये प्रतिदिन हिमालय की आभा को देखने के लिये कई मील पैदल चले जाया करते थे।

6.7.3 गुरूदीक्षा–

एक दिन हिमालय दर्शन के दौरान ये पैदल चलते हुए द्रोणगिरि तक जा निकले। जैसे ही लाहिड़ी जी वहां पर पहुंचे तो इनको लगा कि जैसे कोई आवाज देकर इन्हें बुला रहा है। पुकारने वाले व्यक्ति ने शायद एक–दो बार ही उनका नाम पुकारा होगा। किन्तु वह पुकार पहाड़ों से टकराकर बार–बार गूंजने लगी। लाहिड़ी अत्यन्त आश्चर्य से पुकारने वाले व्यक्ति को ढूंढने लगे। सहसा उन्होंने पर्वत के शिखर पर एक युवा व्यक्ति को देखा, जो उन्हें अपने पास आने के लिये संकेत कर रहा था।

उस युवक ने उनसे पूछा कि क्या वह उन्हें पहचान पा रहे हैं तथा साथ ही एक गुफा में उन्हें ले जाकर पूछा कि इस कमण्डल और कंबल को पहचान रहे हो।? लाहिड़ी महाशय जी ने प्रत्ययुत्तर में कहा कि वे न तो उन्हें और न ही इन सामग्रियों को पहचान रहे हैं।

उस युवक ने कहा कि मैंने तुम्हें एक विशेष कार्य से तुम्हें यहां बुलाया है और में 40 वर्षों से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। जब वह कार्य पूरा हो जायेगा तो तुम्हें यहां से जाना पड़ेगा।

इतना कहने के बाद उन्होनें लाहिड़ी जी के ललाट को स्पर्श किया। ऐसा करते ही लाहिड़ी जी के शरीर में एक प्रकार की विद्युत दौड़ गई और उन्हें अपने पिछले जन्म की सारी घटनाएँ याद आ गई।

उन्होंने उस युवक को साष्टांग प्रमाण करते हुए कहा कि मैं आपको पहचान गया। आपे मेरे गुरूजी हैं और ये कमंडल और कम्बल मेरी ही है। मैं इसी गुफा में तपस्या करता था।

इसके बाद उनके गुरू ने पूरे विधान से उनके पहले के जन्म के सभी कर्म संस्कारों को हटाते हुए उन्हें क्रिया योग की दीक्षा दी। यह क्रियायोग का अभ्यास कई दिनों तक लगातार चलता रहा।

इसके बाद 8वें दिन उनके गुरू ने कहा कि उनका कार्य समाप्त हो गया है और अब तुम एक सन्यासी के रूप् में नहीं वरन् गृहस्थ के रूप में जनकल्याण का कार्य करो तथा उपयुक्त व्यक्तियों को जो ईश्वर के लिये अपना सब कुछ समर्पित कर सकते हैं, उन्हें क्रियायोग में दीक्षित करना।

जब अपने गुरू से अलग होते हुए लाहिड़ी जी रोने लगे तो उन्होंने कहा कि ष्तुम चिन्ता मत करो। मैं हमेशा तुम्हारे साथ ही रहूंगा।

6.7.4 लाहिड़ी महाशय जी का यौगिक योगदान –

1.लाहिड़ी महाशय जी द्वारा क्रियायोग की साधना का उपदेश

अपने गुरू से क्रियायोग की दीक्षा लेने के बाद लाहिड़ी महाशय जब ऑफिस पहुंचे तो उन्हें ज्ञात हुआ कि ऑफिस की गलती के कारण भूलवश उनका तबादला रानीखेत हो गया था उन्हें पुनः दानापुर भेज दिया गया।

अतः वे पुनः दानापुर में आकर अपना कार्य देखने लगे। इसी के साथ नियमित रूप से उनकी साधना भी चलती रही। लाहिड़ी जी ने सन् 1880 तक सरकार की सेवा में रहने के बाद अवकाश प्राप्त कर लिया था।

अवकाश लेने के बाद लाहिड़ी के सामने धन सम्बन्धी कठिनाई बढ़ गई। पेंशन के रूपयों से उनका घर खर्च ठीक ढंग से नहीं चल पाता था। अतः उन्होंने काशी के राजा ईश्वरीनारायण सिंह के सुपुत्र प्रभुनारायण सिंह को शास्त्रादि का ज्ञान प्रदान करने के लिये तीस रूपये मासिक वेतन के हिसाब से गृह शिक्षक के रूप में पढ़ा प्रारम्भ किया।

लाहिड़ी जी की प्रतिभा और ज्ञान से प्रभावित होकर ईश्वरीनारायण सिंह एवं उनके पुत्र दोनों ने उनसे दीक्षा ली। इस प्रकार लाहिड़ी जी सत्पात्रों को समायानुसार अपने गुरू द्वारा बताये गये विधान के अनुसार क्रियायोग की दीक्षा देने लगे। क्रियायोग वस्तुतः एक विशिष्ट एवं अत्यन्त उच्च स्तरीय योगदाभ्यास है। इसके सन्दर्भ में स्वामी योगानंद का कथन है कि क्रियायोग एक सरल मनःकायिक प्रणाली है जिसके द्वारा मानव रक्त कार्बन से रहित तथा ऑक्सीजन से प्रयूरित हो जाता है। इसके अतिरिक्त ऑक्सीजन के अणु जीवन–प्रवाह में रूपान्तरित होकर मस्तिष्क और मेरूदण्ड के चक्रों को नवशक्ति से पुनः पूरित कर देते हैं।

लाहिड़ी महाशय के गुरु ने उनसे कहा इस 19वीं सदी में जिस क्रियायोग को मैं तुम्हारे द्वारा विश्व को दे रहा हूँ वह उसी विज्ञान का पुनः जीवन है जिसे सहस्राब्दियों पूर्व भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को प्रदान किया था। बाद में जिसका ज्ञान पतंजलि, ईसा मसीह, सेण्ट जान, सैण्ट पाल आदि उनके अनेक शिष्यों को प्राप्त हुआ था। धीरे–धीरे लाहिड़ी महाशय की ख्याति चारों ओर फैलने लगी और उनका घर श्रद्धालुओं के लिये एक तीर्थस्थल बन गया।

6.7.5 लाहिड़ी महाशय का शिष्य समुदाय–

लाहिड़ी की अपने शिष्यों एवं भक्तों पर निरन्तर अपने अनुदानों की वर्षा करते ही रहते थे। लाहिड़ी जी के अनेक शिष्य थे, आपके तीन प्रमुख शिष्य युक्तेश्वर गिरि, केशवानंद और प्रणवानन्द ने, अन्य शिष्य भी थे जिनमें से कुछ के नाम उल्लेखनीय हैं। जैसे कि पंचानन बनर्जी, वरदाचरण, रामदयाल मजूमदार इत्यादि।

लाहिड़ी जी हमेशा अपने शिष्यों को निष्काम भावना कम करते हुए पवित्र जीवन जीवने का उपदेश देते थे। उनका कहना था कि ईश्वर की उपस्थिति का विश्वास ध्यान में रखते हुए अपने आनन्ददायक सम्पर्क से उन्हें जीतो। अगर तुम्हारी कोई समस्या हो तो क्रियायोग से हल करो। क्रियायोग के द्वारा तुम मुक्ति पथ पर अनवरत आगे बढ़ते जाओ। इसकी शक्ति इसके अभ्यास पर निर्भर है। मैं, स्वयं यह मानता हूँ कि मनुष्य के स्वतः प्रयास से मुक्ति पाने की सबसे प्रभावोत्पादक विधि यही है जिसकी उत्पत्ति मनुष्य द्वारा ईश्वर प्राप्ति के लिये अब तक पायी जाती है।

6.8 अभ्यास प्रश्न

सत्य और असत्य बताइए।

क. राम कृष्ण परमहंस जी सन्यासी थे।

ख. विश्वधर्म सम्मेलन की सभा में स्वामी विवेकानंद जी ने संबोधित किया।

ग. श्री अरविंद ने योग को चमत्कार बतलाया।

घ. लाहिडी महाशय ने क्रिया योग को जन जन तक पहुंचाया।

ड़ कुवल्यानंद जी ने योग के वैज्ञानिक पक्ष पर जोर दिया।

6.9 सारांश

ज्ञान योग कर्म योग और भक्ति योग के दर्शन को अपने समूचे जीवन दर्शन में देने वाले श्री राम कृष्ण परमहंस जी का का जीवन ही योग के लिए समर्पित रहा है। उनके दिए योग के ज्ञान को योग साधक सहजता से आत्मसात कर रहे है।

स्वामी विवेकानन्द ने समूची मानव जाति के कल्याण के लिए अपना सर्वस्व सर्मपित कर दिया। वे बहुमुखी प्रतिभा के विलक्षण धनी थे। उनमें एक साथ अनेकों विशेषताएँ देखने को मिलती है। कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है जिससे वे अछूत रहे। साहित्य, संगीत, लेखन, खेलकूद, अध्ययन के क्षेत्र में तो कहना ही क्या। आध्यात्मिक जीवन एवं योग के सन्दर्भ में स्वामी जी ने जो विचार एवं योगदान दिया है। उसके लिऐ युगों युगो तक मानवता उनकी ऋणी रहेगी।

श्री अरविन्द का योगिक जीवन अत्यन्त कठिन एवं विलक्षण था। उन्होंने अध्यात्म जगत में ऐसे—ऐसे प्रयोग किये हैं जिनकी कल्पना तक नहीं की जा सकती।

अतः संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि हमे भी ऐसे महान योगी के जीवन से कुछ प्रेरणा ग्रहण करो अच्छे मार्ग पर चलने का प्रयास करना चाहिए तभी हमारा उनके जीवन एवं उपलब्धियों के बारे में अध्ययन करना सार्थक हो सकता है।

श्री श्यामाचरण लाहिडी जी के जीवन से आपने जाना होगा कि किस प्रकार एक गृहस्थ होते हुए भी लाहिडी जी प्रकृति से एक महान योगी थे। उन्हें गृहस्थ धर्म के कर्तव्यों का निर्वाह करते हुए एक योगमय जीवन व्यतीत किया। जो हम सभी के लिये प्रेरणादायी है।

6.10 शब्दावली

- संदेशवाहक — संदेश को ले जाने वाला अथवा संदेश को पहुँचाने वाला।
- पाश्चात्य विचारधारा — पश्चिमी देशों की विचारधारा। प्राच्य पूर्वी पाण्डित्य विद्वता

- क्रियायोग – प्राण के नियनिन द्वारा किया जाने वाला अत्यन्त उच्चस्तरीय योगभ्यास ।
- अनवरतरू – बिना रुके लगातार।
- मनःकायिक - शारीरिक अर्थात मन एवं शरीर दोनों से सम्बन्ध रखने वाली।
- शोध पत्र– जिसमें वैज्ञानिक अध्ययन के निष्कर्षो को संक्षेप में जन सामान्य की जानकारी में वृद्धि के लिये प्रस्तुत किया जाता है।
- ध्यान – महर्षि पतंजलि के अनुगसार अन्तरंग योग को दूसरा अत्यन्त महत्पूर्ण सोपान, जिसमें साधक की चित्तवृत्ति अपने ध्येय में तल्लीन हो जाती है। निशुल्क – बिना रूपये लिये कोई कार्य करना।

6.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

- भारत के महान योगी–विश्वनाथ मुखर्जी
- कोहली, नरेन्द्र। 2008 तोड़ो कारा तोड़ो। किताघर प्रकाशन, नयी दिल्ली।
- Kumar] Karmakhaya] The super suence of yoga] standard publication Delhi]
- कुमार कामाख्या एवं मूर्ति बी.टी. चिन्दान्नद (2007) योग महाविज्ञान। स्टैण्डर्ड पब्लिशर्स दिल्ली।
- Kumar] Kamakhaya] The super suence of yoga] standard publication Delhi-

6.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. श्री राम कृष्ण परमहंस जी के यौगिक योगदान की विवेचना कीजिए।
2. स्वामी विवेकानन्द के योग संबंधी विचारों का विवेचना कीजिए।
3. विश्व मानवता के कल्याण में स्वामी विवेकानन्द के योगदान को स्पष्ट कीजिए।
4. श्री अरविंद के योग के दर्शन को स्पष्ट कीजिए।
5. लाहिड़ी महाशय जी के व्यक्तित्त्व एवं कृतित्व का विवेचन कीजिए।
6. स्वामी कुवलयानंद जी का जीवन परिचय देते हुए योग के क्षेत्र में उनके योगदान पर प्रकाश डालिये

खण्ड– तृतीय - आधुनिक काल में योग सम्बन्धी परम्परायें
परिचय

परास्नातक योग कार्यक्रम के अन्तर्गत योग के आधारभूत तत्व (MAYO– 101) पाठ्यक्रम का यह तृतीय खण्ड है, जिसका शीर्षक योग के आधारभूत तत्व में– आधुनिक काल में योग सम्बन्धी परम्परायें इस खण्ड के अंतर्गत कुल तीन इकाइयाँ हैं–

इकाई–07 के अंतर्गत श्री आधुनिक काल में योग की परंपरा को आगे बढ़ाने में श्री टी० रामाकृष्णाचार्य, स्वामी शिवानन्द सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द जी का जीवन परिचय और उनके यौगिक योगदान के विषय में जानेंगे।

इकाई–08 के अंतर्गत श्री आधुनिक काल में योग की परंपरा को आगे बढ़ाने में स्वामी राम (हिमालय), महर्षि महेश योगी, पं० श्री रामशर्मा आचार्य, परमहंस योगानन्द जी का जीवन परिचय और उनके यौगिक योगदान के बतलाया गया है।

इकाई–9 के अंतर्गत श्री आधुनिक काल में योग की परंपरा को आगे बढ़ाने में योगगुरु अयंगार, श्री श्री रविशंकर, स्वामी रामदेव, स्वामी निरंजनानंद सरस्वती जी का जीवन परिचय और उनके यौगिक योगदान के विषय।

अतः इन समस्त इकाईयों के माध्यम से आधुनिक काल में योग सम्बन्धी परम्पराओ में आधुनिक योगियों का जीवन परिचय और योग में उनके योगदान के विषय में जान सकेंगे।

इकाई 07— श्री टी0 रामाकृष्णमाचार्य, स्वामी शिवानन्द सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द जी, आचार्य रजनीश ओशो

इका
ई की

रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 तिरुमलाई कृष्णमाचार्य

7.2.1 जन्म

7.2.2 प्रमुख योग शिष्य

7.2.3 प्रारंभिक जीवन

7.2.4 शैक्षिक शिक्षा

7.2.5 योग में शिक्षा

7.2.6 मैसूर वर्ष

7.2.7 मद्रास वर्ष

7.2.8 उपचार का दृष्टिकोण

7.2.9 योग के प्रति दृष्टिकोण

7.2.10 एक विद्वान के रूप में उपलब्धि

7.2.11 यौगिक कार्य

7.3 स्वामी शिवानंद सरस्वती

7.3.1 शिवानंद जी का प्रारंभिक जीवन

7.3.2 गुरु से दीक्षा

7.3.3 प्रमुख यात्राएं

7.3.4 डिवाइन लाइफ सोसाइटी की स्थापना

7.3.5 समाधि

7.3.6 प्रमुख शिष्य

7.3.7 यौगिक कार्य व यौगिक योगदान

7.4 स्वामी सत्यानंद जी

7.4.1 प्रारंभिक जीवन

7.4.2 स्वामी शिवानंद के साथ जीवन

7.4.3 हर कोने और हर घर में योग

7.4.4 सत्यानंद जी का यौगिक योगदान

7.4.5 रिखियापीठ की स्थापना

7.5 आचार्य रजनीश

7.5.1 प्रारंभिक जीवन – ओशो

7.5.2 योग में ओशो के दर्शन एवं मान्यताएँ

7.6 अभ्यास प्रश्न

7.7 सारांश

7.8 शब्दावली

7.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

7.10 निबंधात्मक प्रश्न

7.0 उद्देश्य

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप –

- तिरुमलाई रामाकृष्णाचार्य के व्यक्तित्व का अध्ययन कर सकेंगे।
- टी रामाकृष्णाचार्य जी के व्यक्तित्व का अध्ययन कर सकेंगे।
- टी रामाकृष्णाचार्य जी के उल्लेखनीय योगदान का वर्णन कर सकेंगे।
- स्वामी शिवानन्द के आरम्भिक जीवन एवं योग साधना कर अध्ययन कर सकेंगे।
- विश्व मानवता को स्वामी शिवानन्द जी द्वारा जो अनुदान प्राप्त हुए, उनका अध्ययन कर सकेंगे।
- स्वामी सत्यानंद जी के व्यक्तित्व का अध्ययन कर सकेंगे।
- स्वामी सत्यानंद जी के उल्लेखनीय योगदान का वर्णन कर सकेंगे।
- आचार्य रजनीश आरम्भिक जीवन एवं योग साधना कर अध्ययन कर सकेंगे।
- पूरे विश्व में आचार्य रजनीश जी द्वारा जो अनुदान प्राप्त हुए, उनका अध्ययन कर सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

प्रिय पाठकों, जैसा कि आप सभी जानते हैं कि भारतभूमि सदा ही ऋषियों, संतों एवं महापुरूषों की जननी रही है। इस धरा ने समय–समय पर ऐसे युगावतारों को जन्म दिया है, जिन्होंने अपने जीवन से समूची मानवजाति में ज्ञान का प्रकाश फैलाया और हमेशा के लिये अमर हो गये।

प्रिय पाठकों, इससे पूर्व की इकाइयों में भी आपने अनेक महान योगियों जैसे श्री टी० रामाकृष्णाचार्य, स्वामी शिवानन्द सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द जी, आचार्य रजनीश ओशो के विषय में अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई में योगियों की इसी परम्परा को आगे बढ़ाते हुए हम श्री टी० रामाकृष्णाचार्य, स्वामी शिवानन्द सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द जी, आचार्य रजनीश ओशो जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के विषय में विस्तार से चर्चा करेंगे।

7.2 तिरुमलाई कृष्णमाचार्य

7.2.1 जन्म–

तिरुमलाई कृष्णमाचार्य (18 नवंबर, 1888 – 28 फरवरी, 1989) एक भारतीय योग शिक्षक, आयुर्वेदिक चिकित्सक और विद्वान थे। अक्सर ष्आधुनिक योग के जनकष् के रूप में जाना जाता है, कृष्णमाचार्य को

व्यापक रूप से 20वीं सदी के सबसे प्रभावशाली योग शिक्षकों में से एक माना जाता है और उन्हें हठ योग के पुनरुद्धार का श्रेय दिया जाता है ।

कृष्णमाचार्य के पास सभी छह वैदिक दर्शन या भारतीय दर्शन में डिग्री थी। मैसूर के राजा, कृष्ण राजा वाडियार चतुर्थ के संरक्षण में , कृष्णमाचार्य ने योग को बढ़ावा देने के लिए व्याख्यान और प्रदर्शन देते हुए भारत भर में यात्रा की, जिसमें उनके दिल की धड़कन को रोकने जैसे कारनामे भी शामिल थे। उन्हें व्यापक रूप से विन्यास का वास्तुकार माना जाता है , श्वास को गति के साथ जोड़ने के अर्थ में। कृष्णमाचार्य की सभी शिक्षाओं का मूल सिद्धांत था ष्वह सिखाओ जो किसी व्यक्ति के लिए उपयुक्त हो।ष जबकि दुनिया के अन्य हिस्सों में उन्हें एक योगी के रूप में सम्मानित किया जाता है, भारत में कृष्णमाचार्य को मुख्य रूप से एक उपचारकर्ता के रूप में जाना जाता है, जिन्होंने आयुर्वेदिक और योग दोनों परंपराओं से उन लोगों को स्वास्थ्य और कल्याण प्रदान किया, जिनका उन्होंने इलाज किया था। उन्होंने योग पर चार पुस्तकें लिखीं– योग मकरंद (1934), योगासनगालु (लगभग 1941), योग रहस्य , और योगवल्ली (अध्याय 1 – 1988) – साथ ही कई निबंध और काव्य रचनाएँ भी लिखीं।

7.2.2 प्रमुख योग शिष्य–

कृष्णमाचार्य के कुछ शिष्यो में योग के कई सबसे प्रसिद्ध शिक्षक शामिल हैंरू इंद्रा देवी (1899–2002), के. पट्टाभि जोइस (1915–2009), बीकेएस अयंगर (1918–2014), टीकेवी देसिकाचार (1938–2016), श्रीवत्स रामास्वामी (जन्म) 1939), एजी मोहन (जन्म 1945), अवथुता एचएच गुरु दिलीपजी महाराज (जन्म 1969), और मार्क व्हिटवेल (जन्म 1959)। कृष्णमाचार्य बीकेएस अयंगर (1918–2014) के बहनोई थे , जो अयंगर योग ष नामक योग शैली के संस्थापक थे , जो 1934 में एक युवा व्यक्ति के रूप में योग सीखने के लिए प्रोत्साहित करने का श्रेय कृष्णमाचार्य को देते हैं।

7.2.3 प्रारंभिक जीवन–

कृष्णमाचार्य का जन्म 18 नवंबर, 1888 को दक्षिण भारत में वर्तमान कर्नाटक के चित्रदुर्ग जिले में स्थित मुचुकुंदपुरा में एक रूढ़िवादी अयंगर परिवार में हुआ था। उनके माता–पिता श्री तिरुमलाई श्रीनिवास ताताचार्य, वेदों के प्रसिद्ध शिक्षक और श्रीमती रंगनायकियाम्मा थे। कृष्णमाचार्य छह बच्चों में सबसे बड़े थे। उनके दो भाई और तीन बहनें थीं। छह वर्ष की आयु में उनका उपनयन संस्कार हुआ । इसके बाद उन्होंने अपने पिता के अनुशासित संरक्षण में संस्कृत बोलना और लिखना , अमरकोष जैसे ग्रंथों से और वेदों का जाप करना सीखना शुरू किया।कृष्णमाचार्य के पिता ने उन्हें आसन और प्राणायाम भी सिखाया था।

जब कृष्णमाचार्य दस वर्ष के थे, उनके पिता की मृत्यु हो गई, और परिवार को कर्नाटक के दूसरे सबसे बड़े शहर मैसूर में जाना पड़ा , जहां कृष्णमचार्य के परदादा एचएच श्री श्रीनिवास ब्रह्मतंत्र परकला

स्वामी, परकला मठ के प्रमुख थे (वहां थे) 1835–1873 ई. के बीच इसी नाम से दो)। मैसूर में, कृष्णमाचार्य ने चामराज संस्कृत कॉलेज और मठ में अधिक औपचारिक स्कूली शिक्षा शुरू की। उन्होंने प्रोफेसरों और अतिथि पंडितों के साथ शास्त्रों के विषयों पर शास्त्रार्थ करने का अभ्यास किया । कृष्णमाचार्य ने अपनी विद्वान परीक्षा मैसूर में उत्तीर्ण की, जहां उन्होंने व्याकरण , वेदांत और तर्क का अध्ययन किया था।

सोलह वर्ष की आयु में, कृष्णमाचार्य को एक अजीब सपना आया जिसमें उनके पूर्वज, प्रसिद्ध योगी और श्री वैष्णव संत नाथमुनि ने उन्हें पड़ोसी राज्य तमिलनाडु के अलवर तिरुनगरी शहर में जाने का निर्देश दिया । कृष्णमाचार्य ने स्वप्न का पालन किया और वहां की यात्रा की। जैसा कि कृष्णमाचार्य ने बाद में बताया, जब वह अपने गंतव्य पर पहुंचे, तो वह अचेत हो गए और खुद को तीन संतों की उपस्थिति में पाया। उन्होंने ऋषियों से नाथमुनि द्वारा लंबे समय से लुप्त योग ग्रंथ, योग रहस्य के बारे में निर्देश देने का अनुरोध किया। संतों में से एक, जिसे बाद में उन्होंने स्वयं नाथमुनि के रूप में पहचाना, ने पाठ का पाठ करना शुरू किया। बाद में जब कृष्णमाचार्य समाधि से जागे, तो उन्हें इस पौराणिक ग्रंथ के सभी छंद याद आ गए।

7.2.4 शैक्षिक शिक्षा–

कृष्णमाचार्य ने अपनी युवावस्था का अधिकांश समय भारत की यात्रा करते हुए छह दर्शन या भारतीय दर्शनों का अध्ययन करते हुए बितायारू वैशेषिक, न्याय, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदांत । 1906 में, अठारह साल की उम्र में, कृष्णमाचार्य ने बनारस विश्वविद्यालय में दाखिला लेने के लिए मैसूर छोड़ दिया , जिसे वाराणसी भी कहा जाता है, जो सैकड़ों मंदिरों का शहर है और पारंपरिक शिक्षा का एक उच्च माना जाने वाला उत्तर भारतीय केंद्र है। विश्वविद्यालय में रहते हुए, उन्होंने ष्युग के महानतम व्याकरणविदों में से एकष ब्रह्माश्री शिवकुमार शास्त्री के साथ काम करते हुए, तर्क और संस्कृत पर अपना अध्ययन केंद्रित किया। उन्होंने ब्रह्मश्री त्रिलिंगा राम शास्त्री से मीमांसा भी सीखी। कृष्णमाचार्य ने वामचरण भट्टाचार्य से तर्क सीखा । उन्होंने काशी संस्कृत विद्या पीठ के प्रमुख महामहोपाध्याय गंगानाथ झा के साथ भी गहरी दोस्ती बनाई ।

बनारस छोड़ने के बाद, 1909 में, कृष्णमाचार्य मैसूर लौट आए और परकला मठ के नए पुजारी, एचएच श्री कृष्ण ब्रह्मतंत्र के साथ वेदांत का अध्ययन किया। इस अवधि में कृष्णमाचार्य ने वीणा बजाना सीखा , जो भारत के सबसे प्राचीन तार वाले वाद्ययंत्रों में से एक है। गणित के अलावा, कृष्णमाचार्य ने मैसूर विश्वविद्यालय में भी अध्ययन किया।

1914 में, कृष्णमाचार्य एक बार फिर क्वींस कॉलेज में कक्षाओं में भाग लेने के लिए बनारस चले गए, जहाँ उन्होंने अंततः कई शिक्षण प्रमाणपत्र अर्जित किए। पहले वर्ष के दौरान उन्हें अपने परिवार से बहुत कम या कोई वित्तीय सहायता नहीं मिली। खाने के लिए, उन्होंने भिक्षुओं की तरह निर्धारित नियमों का पालन कियारू उन्हें प्रत्येक दिन केवल सात घरों से संपर्क करना था और रोटी के लिए पानी के लिए प्रार्थना करनी थी। कृष्णमाचार्य ने अंततः पूर्वी भारत के एक राज्य, बिहार में, पटना विश्वविद्यालय में वैदिक दर्शन में

षडदर्शन (छह दर्शन) का अध्ययन करने के लिए क्वींस कॉलेज छोड़ दिया। उन्हें बंगाल के वैद्य कृष्णकुमार के अधीन आयुर्वेद का अध्ययन करने के लिए छात्रवृत्ति भी मिली।

कृष्णमाचार्य को दिक्कनघाट (दरभंगा के भीतर एक रियासत) के राजा के राज्याभिषेक के लिए आमंत्रित किया गया था जहां उन्होंने शास्त्रार्थ में बिहारी लाल नामक विद्वान को हराया और राजा से पुरस्कार और सम्मान प्राप्त किया। बनारस में उनका प्रवास 11 वर्षों तक रहा।

7.2.5 योग में शिक्षा–

इस पूरे समय के दौरान कृष्णमाचार्य ने उस योग का अभ्यास करना जारी रखा जो उनके पिता ने उन्हें एक युवावस्था में सिखाया था। कृष्णमाचार्य ने योग गुरु श्री बाबू भगवान दास के साथ भी अध्ययन किया और पटना की सांख्य योग परीक्षा उत्तीर्ण की। कृष्णमाचार्य के कई प्रशिक्षकों ने योग के अध्ययन और अभ्यास में उनकी उत्कृष्ट क्षमताओं को पहचाना और उनकी प्रगति का समर्थन किया। कुछ ने पूछा कि वह उनके बच्चों को पढ़ायें।

अपनी तीन महीने तक की छुट्टियों में कृष्णमाचार्य ने हिमालय की तीर्थयात्राएँ कीं । गंगानाथ झा के सुझाव पर, कृष्णमाचार्य ने योगेश्वर राममोहन ब्रह्मचारी नामक एक गुरु की तलाश करके अपने योग अध्ययन को आगे बढ़ाने की कोशिश की, जिनके बारे में अफवाह थी कि वे नेपाल से परे पहाड़ों में रहते थे। इस उद्यम के लिए कृष्णमाचार्य को शिमला के वायसराय लॉर्ड इरविन की अनुमति लेनी पड़ी, जो उस समय मधुमेह से पीड़ित थे। वायसराय के अनुरोध पर, कृष्णमाचार्य ने शिमला की यात्रा की और उन्हें छह महीने तक योगाभ्यास सिखाया। वायसराय के स्वास्थ्य में सुधार हुआ और उनके मन में कृष्णमाचार्य के प्रति सम्मान और स्नेह विकसित हुआ। 1919 में, वायसराय ने कृष्णमाचार्य की तिब्बत यात्रा की व्यवस्था की, तीन सहयोगियों की आपूर्ति की और खर्चों का ख्याल रखा।

ढाई महीने की पैदल यात्रा के बाद, कृष्णमाचार्य श्री ब्रह्मचारी के स्कूल में पहुंचे, जो कैलाश पर्वत की तलहटी में एक सुदूर गुफा थी, जहाँ गुरु अपनी पत्नी और तीन बच्चों के साथ रहते थे। ब्रह्मचारी के संरक्षण में, कृष्णमाचार्य ने साढ़े सात साल पतंजलि के योग सूत्र का अध्ययन आसन और प्राणायाम सीखने और योग के चिकित्सीय पहलुओं का अध्ययन करने में बिताए। उन्हें गोरखा भाषा में संपूर्ण योग कुरुन्था याद करवाया गया। जैसा कि परंपरा है, गुरु के साथ अपनी पढ़ाई के अंत में, कृष्णमाचार्य ने पूछा कि उनका भुगतान क्या होगा। गुरु ने उत्तर दिया कि कृष्णमाचार्य को ष्एक पत्नी रखनी होगी, बच्चों का पालन–पोषण करना होगा और योग का शिक्षक बनना होगा।

इसके बाद कृष्णमाचार्य वाराणसी लौट आए । जयपुर के महाराजा ने उन्हें जयपुर में विद्या शाला के प्रमुख के रूप में सेवा करने के लिए बुलायाय लेकिन चूंकि उन्हें कई लोगों के प्रति जवाबदेह होना पसंद नहीं था, इसलिए कृष्णमाचार्य शीघ्र ही वाराणसी लौट आए। अपने गुरु की इच्छा के अनुसार कि वे गृहस्थ जीवन

जियें, कृष्णमाचार्य ने 1925 में नामगिरिअम्मा से शादी की। अपनी शादी के बाद, कृष्णमाचार्य को परिस्थितियों के कारण हसन जिले में एक कॉफी बागान में काम करने के लिए मजबूर होना पड़ा। 1931 में मैसूर टाउन हॉल में उपनिषदों पर एक व्याख्यान के बाद उन्होंने एक विद्वान विद्वान के रूप में ध्यान आकर्षित किया, जिसके कारण अंततः उन्हें महल में नौकरी मिल गई। एक विद्वान के रूप में कृष्णमाचार्य के ज्ञान और योग में उनकी महारत से प्रभावित होकर, गंगानाथ झा के पुत्र अमरनाथ झा ने कृष्णमाचार्य को विभिन्न राजाओं से मिलवाया, और उनके द्वारा उन्हें व्यापक रूप से सम्मानित किया गया।

7.2.6 मैसूर वर्ष –

योग प्रदर्शन में कृष्णमाचार्य–

1926 में, मैसूर के महाराजा, कृष्ण राजा वाडियार चतुर्थ (1884–1940) अपनी मां का 60वां जन्मदिन मनाने के लिए वाराणसी में थे और उन्होंने एक योग चिकित्सक के रूप में कृष्णमाचार्य की शिक्षा और कौशल के बारे में सुना। महाराजा कृष्णमाचार्य से मिले और उस युवक के आचरण, अधिकार और विद्वता से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने कृष्णमाचार्य को उन्हें और उनके परिवार को पढ़ाने के लिए नियुक्त किया। प्रारंभ में, कृष्णमाचार्य को मैसूर पैलेस में योग सिखाने के लिए स्थापित किया गया था । वह जल्द ही महाराजा के भरोसेमंद सलाहकार बन गए, और उन्हें महल के बुद्धिजीवी–अस्थाना विदवान की मान्यता दी गई।

1920 के दशक के दौरान, कृष्णमाचार्य ने योग में लोकप्रिय रुचि को प्रोत्साहित करने के लिए कई प्रदर्शन किए। इनमें अपनी नाड़ी को रोकना, अपने नंगे हाथों से कारों को रोकना, कठिन आसन करना और अपने दांतों से भारी वस्तुओं को उठाना शामिल था। महल के अभिलेखों से पता चलता है कि महाराजा योग के प्रचार–प्रसार में रुचि रखते थे और लगातार कृष्णमाचार्य को व्याख्यान और प्रदर्शन देने के लिए देश भर में भेजते थे।

1931 में, कृष्णमाचार्य को मैसूर के संस्कृत कॉलेज में पढ़ाने के लिए आमंत्रित किया गया था। महाराजा, जिन्होंने महसूस किया कि योग ने उनकी कई बीमारियों को ठीक करने में मदद की है, ने कृष्णमाचार्य को अपने संरक्षण में एक योग विद्यालय खोलने के लिए कहा और बाद में उन्हें योगशाला शुरू करने के लिए पास के महल, जगनमोहन पैलेस का विंग दिया गया । एक स्वतंत्र योग संस्थान, जो 11 अगस्त 1933 को खुला।

1934 में, कृष्णमाचार्य ने योग मकरंद नामक पुस्तक लिखी , जिसे मैसूर विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित किया गया था। योग मकरंद के परिचय में , कृष्णमाचार्य ने अपनी पुस्तक के स्रोतों में से एक के रूप में श्रीतत्वनिधि को सूचीबद्ध किया है , जो 19वीं सदी का एक ग्रंथ है जिसमें मैसूर के महाराजा, कृष्णराज वोडेयार (1794–1868) का योग खंड शामिल है। मैसूर पैलेस की योग परंपरा में , नॉर्मन सोजोमन ने दावा

किया है कि कृष्णमाचार्य श्रीतत्त्वनिधि और व्यायाम दीपिका से प्रभावित थे, जो मैसूर पैलेस के जिमनास्टों द्वारा लिखित एक पश्चिमी–आधारित जिमनास्टिक मैनुअल है।

1940 में, कृष्ण राजा वाडियार चतुर्थ की मृत्यु हो गई और उनके भतीजे और उत्तराधिकारी, जयचामाराजेंद्र वाडियार (1919–1974) ने योग में कम रुचि दिखाई और अब ग्रंथों को प्रकाशित करने और शिक्षकों की टीमों को आसपास के क्षेत्रों में भेजने के लिए सहायता प्रदान नहीं की। 1946 में राजनीतिक परिवर्तनों के बाद, लगभग उसी समय जब भारत को आजादी मिली, महाराजाओं की शक्तियां कम कर दी गईं, एक नई सरकार अस्तित्व में आई। योग स्कूल के लिए फंडिंग में कटौती कर दी गई और कृष्णमाचार्य को स्कूल को बनाए रखने के लिए संघर्ष करना पड़ा। 60 वर्ष की आयु (1948) में, कृष्णमाचार्य को छात्रों को खोजने और अपने परिवार का भरण–पोषण करने के लिए बड़े पैमाने पर यात्रा करने के लिए मजबूर होना पड़ा। मैसूर राज्य के पहले मुख्यमंत्री केसी रेड्डी ने मैसूर में योगशाला को बंद करने का आदेश दिया था और स्कूल अंततः 1950 में बंद हो गया।

7.2.7 मद्रास वर्ष–

मैसूर छोड़ने के बाद, कृष्णमाचार्य कुछ वर्षों के लिए बैंगलोर चले गए 35, और फिर 1952 में एक प्रसिद्ध वकील ने उन्हें मद्रास में स्थानांतरित होने के लिए आमंत्रित किया , जिन्होंने स्ट्रोक से ठीक होने के लिए कृष्णमाचार्य से मदद मांगी। अब तक, कृष्णमाचार्य अपने साठ के दशक में थे, और एक सख्त और डराने वाले शिक्षक के रूप में उनकी प्रतिष्ठा कुछ हद तक कम हो गई थी।

मद्रास में, कृष्णमाचार्य ने विवेकानन्द कॉलेज में व्याख्याता के रूप में नौकरी स्वीकार कर ली। उन्होंने विभिन्न पृष्ठभूमियों और विभिन्न भौतिक स्थितियों से योग के छात्रों को प्राप्त करना भी शुरू किया, जिसके लिए उन्हें प्रत्येक छात्र की क्षमताओं के अनुसार अपने शिक्षण को अनुकूलित करना पड़ा। अपने शिक्षण जीवन के शेष समय में, कृष्णमाचार्य ने इस व्यक्तिगत दृष्टिकोण को परिष्कृत करना जारी रखा, जिसे विनियोग के रूप में जाना जाता है । कई लोग कृष्णमाचार्य को योग गुरु मानते थे, लेकिन उन्होंने खुद को एक छात्र कहना जारी रखा क्योंकि उन्हें लगता था कि वह अभ्यास के साथ हमेशा अध्ययन, अन्वेषण और प्रयोग करते रहते थे। अपने पूरे जीवन में, कृष्णमाचार्य ने अपनी नवीन शिक्षाओं का श्रेय लेने से इनकार कर दिया, बल्कि इसके बजाय अपने गुरु या प्राचीन ग्रंथों को ज्ञान का श्रेय दिया।

96 साल की उम्र में कृष्णमाचार्य के कूल्हे की हड्डी टूट गई। सर्जरी से इनकार करते हुए, उन्होंने खुद का इलाज किया और अभ्यास का एक कोर्स तैयार किया जिसे वह बिस्तर पर भी कर सकते थे। कृष्णमाचार्य कोमा में चले जाने और 1989 में सौ वर्ष की आयु में निधन होने तक चेन्नई में रहे और पढ़ाया। उनकी संज्ञानात्मक क्षमताएं उनकी मृत्यु तक तीव्र रहीं और जब भी स्थिति उत्पन्न हुई, उन्होंने पढ़ाना और उपचार करना जारी रखा।

हालाँकि उनके ज्ञान और शिक्षा ने दुनिया भर में योग को प्रभावित किया है, कृष्णमचार्य ने कभी भी अपना मूल भारत नहीं छोड़ा। योग जर्नल ने कहा कि आपने शायद उनके बारे में कभी नहीं सुना होगा लेकिन तिरुमलाई कृष्णमाचार्य ने आपके योग को प्रभावित किया या शायद उसका आविष्कार भी किया। चाहे आप पट्टाभि जोइस की गतिशील श्रृंखला, बीकेएस अयंगर के परिष्कृत संरेखण, इंद्र देवी की शास्त्रीय मुद्राएं, या विनियोग के अनुकूलित विन्यास का अभ्यास करें, आपका अभ्यास एक स्रोत से उपजा हैरू पांच फुट, दो इंच के ब्राह्मण का जन्म सौ साल पहले एक छोटे से दक्षिण भारतीय गाँव में।

विभिन्न दृष्टिकोणों को विकसित और परिष्कृत करके, कृष्णमाचार्य ने योग को दुनिया भर के लाखों लोगों के लिए सुलभ बनाया।

7.2.8 उपचार का दृष्टिकोण–

कृष्णमाचार्य न केवल योग प्रशिक्षक थे बल्कि आयुर्वेदिक चिकित्सा के चिकित्सक भी थे। उन्हें पोषण, हर्बल चिकित्सा, तेलों के उपयोग और अन्य उपचारों का व्यापक ज्ञान था। एक आयुर्वेदिक चिकित्सक के रूप में कृष्णमाचार्य की परंपरा एक रोगी के लिए अपनाए जाने वाले सबसे कुशल मार्ग का निर्धारण करने के लिए एक विस्तृत परीक्षा आयोजित करने से शुरू होती थी। उदाहरण के लिए, वह रोगी की नाड़ी लेगा, त्वचा के रंग की जांच करेगा और सांस की गुणवत्ता सुनेगा। निदान के समय, कृष्णमाचार्य यह देखेंगे कि शरीर, मन और आत्मा के सामंजस्यपूर्ण मिलन में क्या बाधा या बाधा उत्पन्न हुई। कृष्णमाचार्य के अनुसार, भले ही किसी बीमारी का स्रोत या फोकस शरीर के एक विशेष क्षेत्र में हो, उन्होंने माना कि शरीर की कई अन्य प्रणालियाँ, मानसिक और शारीरिक दोनों, भी प्रभावित होंगी। प्रारंभिक जांच के दौरान या उसके बाद किसी बिंदु पर, कृष्णमाचार्य पूछेंगे कि क्या रोगी उनके मार्गदर्शन का पालन करने को तैयार है। यह प्रश्न रोगी के उपचार के लिए महत्वपूर्ण था, क्योंकि कृष्णमाचार्य को लगता था कि यदि व्यक्ति उन पर पूरा भरोसा नहीं कर सकता है तो उसके ठीक होने की संभावना बहुत कम है।

एक बार जब कोई व्यक्ति कृष्णमाचार्य को देखना शुरू कर देता है, तो वह उनके साथ उनके आहार को समायोजित करने सहित कई स्तरों पर काम करता हैय हर्बल औषधियाँ बनानाय और योग मुद्राओं की एक श्रृंखला स्थापित करना जो सबसे अधिक फायदेमंद होगी। किसी व्यक्ति को योग के अभ्यास का निर्देश देते समय, कृष्णमाचार्य ने विशेष रूप से वांछित लक्ष्य तक पहुंचने के लिए योग और ध्यान (ध्यान) के आसन (आसन) के साथ श्वास कार्य (प्राणायाम) के संयोजन के महत्व पर जोर दिया। जब तक वह ठीक नहीं हो जाता तब तक वह प्रगति की निगरानी के लिए सप्ताह में लगभग एक बार उस व्यक्ति से मिलना जारी रखेगा।

7.2.9 योग के प्रति दृष्टिकोण–

कृष्णमाचार्य योग को दुनिया के लिए भारत का सबसे बड़ा उपहार मानते थे। उनके योग निर्देश ने उनके दृढ़ विश्वास को प्रतिबिंबित किया कि योग एक आध्यात्मिक अभ्यास और शारीरिक उपचार का एक तरीका दोनों हो सकता है। कृष्णमाचार्य ने अपनी शिक्षाओं को पतंजलि के योग सूत्र और योग याज्ञवल्क्य पर आधारित किया । जबकि कृष्णमाचार्य वैष्णववाद के प्रति गहराई से समर्पित थे, वे अपने छात्रों की विभिन्न धार्मिक मान्यताओं, या अविश्वासों का भी सम्मान करते थे। एक पूर्व छात्र याद करते हैं कि ध्यान का नेतृत्व करते समय, कृष्णमाचार्य ने छात्रों को अपनी आँखें बंद करने और भगवान के बारे में सोचने का निर्देश दिया था। भगवान नहीं तो सूरज. यदि सूरज नहीं, तो तुम्हारे माता–पिता। अपने पिता और अन्य प्रशिक्षकों से प्राप्त शिक्षाओं के परिणामस्वरूप, कृष्णमाचार्य ने प्रत्येक छात्र को बिल्कुल अद्वितीय के रूप में देखा, इस विश्वास के साथ कि योग सिखाने का सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह था कि छात्र को उसके अनुसार सिखाया जाए किसी भी समय उसकी व्यक्तिगत क्षमता के अनुसार कृष्णमाचार्य के लिए, इसका मतलब यह था कि योग के मार्ग का अलग–अलग लोगों के लिए अलग–अलग मतलब होगा और प्रत्येक व्यक्ति को इस तरह से सिखाया जाना चाहिए कि वह स्पष्ट रूप से समझ सके।

7.2.10 एक विद्वान के रूप में उपलब्धि–

कृष्णमाचार्य को एक विद्वान के रूप में बहुत माना जाता था। उन्होंने दर्शनशास्त्र, तर्कशास्त्र, देवत्व, भाषाशास्त्र और संगीत में डिग्री हासिल की। उन्हें दो बार श्रीवैष्णव संप्रदाय में आचार्य पद की पेशकश की गई , लेकिन उन्होंने अपने गुरु की इच्छा के अनुसार, अपने परिवार के साथ रहने के लिए मना कर दिया।

उन्हें रूढ़िवादी हिंदू अनुष्ठानों का भी व्यापक ज्ञान था। रूढ़िवादी भारतीय दर्शन के विभिन्न दर्शनों में उनकी विद्वता ने उन्हें सांख्य–योग–शिखामणि , मीमांसा–रत्न , मीमांसा–तीर्थ , न्यायाचार्य , वेदांतवागीश , वेद–केसरी और योगाचार्य जैसी उपाधियाँ प्रदान कीं।

7.2.11 यौगिक कार्य–

योग पर पुस्तकें

- योग मकरंद (1934)
- योगासनगालु (सी. 1941)
- योग रहस्य
- योगवल्ली (अध्याय 1 – 1988)
- अन्य योग रचनाएँ (निबंध और काव्य रचनाएँ)
- योगाञ्जलिसाराम

- योग के अनुशासन
- योगाभ्यास का प्रभाव
- स्वास्थ्य बनाए रखने में भोजन और योग का महत्व
- योगाभ्यास की विधियों पर श्लोक
- आसन और प्राणायाम पर निबंध
- मधुमेहा (मधुमेह)
- एक चिकित्सा के रूप में योग क्यों नहीं बढ़ रहा है
- भगवद गीता एक स्वास्थ्य विज्ञान के रूप में
- आयुर्वेद और योगरू एक परिचय
- योग पर प्रश्न और उत्तरष् (जुलाई 1973 में छात्रों के साथ)
- योगरू आलस्य दूर करने का सर्वोत्तम उपाय
- ध्यान छंद में
- सूत्र क्या है?
- कुंडलिनीरू कुंडलिनी क्या है और कुंडलिनी उत्तेजना (शक्ति कैलाना) पर निबंध हठ योग प्रदीपिका , घेरंडा संहिता और योग याज्ञवल्क्य जैसे ग्रंथों पर आधारित है
- राजयोग रत्नाकर से उद्धरण
- एक शिक्षक की आवश्यकता
- सात्विक मार्ग (सात्विक मार्ग दर्शन आध्यात्मिक योग)
- महिलाओं के लिए वैदिक जप का समर्थन करने के लिए वेदों में संदर्भ (दर्शनध्तकनीकी)

7.3 स्वामी शिवानंद सरस्वती

शिवानंद सरस्वती, जिन्हें स्वामी शिवानंद सरस्वती या स्वामी शिवानंद के नाम से भी जाना जाता है, एक हिंदू आध्यात्मिक शिक्षक और योग और वेदांत के समर्थक थे। उनका जन्म तमिलनाडु के तिरुनेलवेली जिले के पट्टामदाई में कुप्पुस्वामी के रूप में हुआ था। चिकित्सा का अध्ययन करने और ब्रिटिश मलाया में एक चिकित्सक के रूप में काम करने के बाद, वह अंततः एक भिक्षु बन गए। उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश समय ऋषिकेष के निकट मुनि की रेती में बिताया।

वह 1936 में डिवाइन लाइफ सोसाइटी (डीएलएस) और योग–वेदांत फॉरेस्ट स्कूल (1948) के संस्थापक और योग, वेदांत और अन्य विषयों पर 200 से अधिक पुस्तकों के लेखक थे। उन्होंने ऋषिकेश से 3 किलोमीटर (1.9 मील) दूर गंगा के तट पर शिवानंदनगर में डीएलएस का मुख्यालय, शिवानंद आश्रम की स्थापना की। शिवानंद योग, विष्णुदेवानंद द्वारा प्रचारित योग शैली, अब शिवानंद योग वेदांत केंद्रों के माध्यम से दुनिया भर में व्यापक रूप से फैल गई है। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि ये केंद्र शिवानंद के आश्रमों से जुड़े नहीं हैं, क्योंकि इनका प्रबंधन डिवाइन लाइफ सोसाइटी द्वारा किया जाता है।

7.3.1 शिवानंद जी का प्रारंभिक जीवन–

शिवानंद का प्रारंभिक जीवन 8 सितंबर 1887 को भारत के तमिलनाडु में तिरुनेलवेली के पास पट्टमदाई में शुरू हुआ। वह अपने माता–पिता, कुप्पुस्वामी के तीसरे पुत्र थे। अपने बचपन के दौरान, उन्होंने शिक्षा और जिम्नास्टिक में बहुत अच्छी प्रतिभा दिखाई और बहुत सक्रिय थे। उन्होंने तंजावुर के मेडिकल स्कूल में अपनी शिक्षा प्राप्त की, जहाँ उन्होंने उत्कृष्ट प्रदर्शन किया। इस दौरान उन्होंने एम्ब्रोसिया नामक मेडिकल जर्नल का भी प्रबंधन किया। अपनी पढ़ाई पूरी करने के बाद, उन्होंने दस वर्षों तक मलाया में एक डॉक्टर के रूप में काम किया और गरीब मरीजों को मुफ्त इलाज प्रदान करने के लिए ख्याति प्राप्त की। हालाँकि, उन्हें लगने लगा कि दवा केवल सतही स्तर का इलाज करती है और आध्यात्मिक संतुष्टि की तलाश करने लगे। 1923 में, उन्होंने अपने आध्यात्मिक प्रयासों को आगे बढ़ाने के लिए मलाया छोड़ दिया और भारत लौट आए।

7.3.2 गुरु से दीक्षा–

1924 में भारत लौटने के बाद, उन्होंने वाराणसी, नासिक और फिर ऋषिकेश का दौरा किया, जहाँ उनकी मुलाकात अपने गुरु विश्वानंद सरस्वती से हुई। विश्वानंद ही थे जिन्होंने उन्हें संन्यास की दीक्षा दी और उन्हें अपना मठवासी नाम दिया। हालाँकि, चूंकि शिवानंद ने विश्वानंद के साथ केवल कुछ ही घंटे बिताए थे, संपूर्ण विराज होम समारोह बाद की तारीख में श्री कैलाश आश्रम के मंडलेश्वर विष्णुदेवानंद द्वारा आयोजित किए गए थे। अपनी दीक्षा के बाद, शिवानंद ऋषिकेश में बस गए और पूरी तरह से गहन आध्यात्मिक अभ्यास में डूब गए। उन्होंने कई वर्षों तक तपस्या की और बीमारों की देखभाल भी की। अपनी परिपक्व बीमा पॉलिसी से कुछ पैसे का उपयोग करते हुए, उन्होंने तीर्थयात्रियों, पवित्र पुरुषों और वंचितों की सेवा के लिए अपनी चिकित्सा विशेषज्ञता का उपयोग करते हुए, 1927 में लक्ष्मण झूला में एक धर्मार्थ औषधालय की स्थापना की।

7.3.3 प्रमुख यात्राएं–

कुछ वर्षों के बाद, शिवानंद एक व्यापक तीर्थयात्रा पर निकले और पवित्र तीर्थस्थलों पर ध्यान करने के लिए पूरे भारत की यात्रा की। उन्हें आध्यात्मिक गुरुओं से मिलने और दक्षिण में रामेश्वरम सहित महत्वपूर्ण तीर्थ

स्थलों की यात्रा करने का अवसर मिला। अपनी पूरी यात्रा के दौरान, उन्होंने संकीर्तन आयोजित किए, व्याख्यान दिए और श्री अरबिंदो आश्रम का दौरा किया। उन्होंने महर्षि शुद्धानंद भारती से भी मुलाकात की और उन्हें महर्षि की उपाधि प्रदान की। महर्षि के जन्मदिन पर, शिवानंद को रमण आश्रम में रमण महर्षि को देखने का सौभाग्य मिला, जहां उन्होंने खुशी से भजन गाए और भक्तों के साथ नृत्य किया। इसके अलावा, वह उत्तर भारत के विभिन्न स्थानों, जैसे केदारनाथ और बद्रीनाथ, की तीर्थयात्राओं पर गए। 1931 में उन्होंने कैलाश–मानसरोवर की यात्रा भी की।

7.3.4 डिवाइन लाइफ सोसाइटी की स्थापना–

शिवानंद के ऋषिकेश प्रवास के दौरान और पूरे भारत में उनकी यात्रा के दौरान, कई लोग आध्यात्मिक पथ पर मार्गदर्शन के लिए उनके पास आए। उसने उनमें से कुछ को अपने साथ रहने और उनका मार्गदर्शन करने की अनुमति दी। शिवानंद ने अपने छात्रों से अपने निबंधों की फोटोकॉपी करके प्रकाशन के लिए भेजने को कहा। जैसे–जैसे समय बीतता गया लोग बड़ी संख्या में उनके पास आने लगे और उनके अनुयायियों की संख्या भी बढ़ने लगी।

1936 में शिवानंद द्वारा गंगा नदी के तट पर डीएलएस की स्थापना की गई थी। आध्यात्मिक साहित्य को स्वतंत्र रूप से वितरित करने के उनके अभ्यास के परिणामस्वरूप अनुयायियों की एक निरंतर धारा उत्पन्न हुई, जिसमें सत्यानंद सरस्वती भी शामिल थे, जिन्होंने सत्यानंद योग की स्थापना की।

1945 में, शिवानंद द्वारा शिवानंद आयुर्वेदिक फार्मेसी की स्थापना की गई, और उन्होंने फेडरेशन ऑफ ऑल वर्ल्ड रिलीजन की भी स्थापना की। इसके अतिरिक्त, 1947 में उन्होंने अखिल विश्व साधु महासंघ और 1948 में योग–वेदांत वन अकादमी की स्थापना की। उन्होंने अपने योग को संश्लेषण का योग कहा।

7.3.5 समाधि

स्वामी शिवानंद ने 14 जुलाई 1963 को शिवानंदनगर में गंगा के तट पर स्थित अपनी कुटिया में महासमाधि में प्रवेश किया, जो एक आत्म–साक्षात्कारी संत का उनके नश्वर कुंडल से प्रस्थान था।

7.3.6 प्रमुख शिष्य

चिदानंद सरस्वती और कृष्णानंद सरस्वती शिवानंद के दो मुख्य कार्यकारी संगठनात्मक अनुयायी थे। चिदानंद सरस्वती को 1963 में शिवानंद द्वारा डीएलएस के अध्यक्ष के रूप में चुना गया था और 2008 में उनके निधन तक वे इस पद पर रहे। इसी तरह, कृष्णानंद सरस्वती को 1958 में शिवानंद द्वारा महासचिव के रूप में नियुक्त किया गया था और 2001 में उनकी मृत्यु तक उन्होंने इस पद पर कार्य किया।

अन्य उल्लेखनीय अनुयायियों में वेंकटेशानंद सरस्वती शामिल थे, जिन्होंने दक्षिण अफ्रीका, मॉरीशस, मेडागास्कर और ऑस्ट्रेलिया में शिवानंद की शिक्षाओं का प्रसार किया। मलेशिया की रहने वाली प्रणवंदा सरस्वती और कनाडा में रहने वाली शिवानंद राधा सरस्वती भी प्रमुख शिष्य थीं। इसके अतिरिक्त, शिवानंद के मार्गदर्शन में स्वामी सहजानंद सरस्वती को दक्षिण अफ्रीका की डिवाइन लाइफ सोसाइटी की स्थापना का काम सौंपा गया था।

वे शिष्य जो नये संगठन विकसित करते गये

- चिन्मयानंद सरस्वती , चिन्मय मिशन के संस्थापक
- ज्योतिर्मयानंद सरस्वती , योग अनुसंधान फाउंडेशन, मियामी, यूएसए के अध्यक्ष
- ललितानंद सरस्वती , उपाध्यक्ष, योग अनुसंधान फाउंडेशन
- ओंकारानंद सरस्वती , ओंकारानंद आश्रम, हिमालय के संस्थापक
- सच्चिदानंद सरस्वती , दुनिया भर में इंटीग्रल योग संस्थानों के संस्थापक
- सत्यानंद सरस्वती , बिहार स्कूल ऑफ योगा के संस्थापक
- शांतानंद सरस्वती , ललित कला मंदिर (मलेशिया और सिंगापुर) के संस्थापक
- शिवानंद राधा सरस्वती , यशोधरा आश्रम, ब्रिटिश कोलंबिया, कनाडा के संस्थापक
- विष्णुदेवानंद सरस्वती , शिवानंद योग वेदांत केंद्र , मुख्यालय कनाडा के संस्थापक
- वेंकटेशानंद सरस्वती , दक्षिण अफ्रीका में आनंद कुटीर आश्रम के प्रेरक
- सहजानंद सरस्वती , दक्षिण अफ्रीका की डिवाइन लाइफ सोसायटी के आध्यात्मिक प्रमुख
- वेदुला सत्यानंद राव , हाई–टेक योग संस्थान, मैसाचुसेट्स, यूएसए के संस्थापक

7.3.7 यौगिक कार्य व यौगिक योगदान

एक विपुल लेखक, शिवानंद ने विभिन्न विषयों पर 296 किताबें लिखींरू तत्वमीमांसा , योग , धर्म, पश्चिमी दर्शन , मनोविज्ञान , युगांतशास्त्र , ललित कला , नैतिकता, शिक्षा, स्वास्थ्य, कहावतें , कविताएं, संदेश , आत्मकथा, जीवनी, कहानियां, नाटक, संदेश, व्याख्यान, संवाद , निबंध और संकलन। उनकी पुस्तकों में सैद्धांतिक ज्ञान से अधिक योग दर्शन के व्यावहारिक अनुप्रयोग पर जोर दिया गया।

7.4 स्वामी सत्यानंद जी

7.4.1 प्रारंभिक जीवन

श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती का जन्म 1923 में अल्मोडा (उत्तराँचल) में एक किसान परिवार में हुआ था। उनके पूर्वज योद्धा थे और उनके पिता सहित उनके कई रिश्तेदार सेना और पुलिस बल में कार्यरत थे। हालाँकि, यह स्पष्ट हो गया कि श्री स्वामीजी का मन अलग था, क्योंकि उन्हें छह साल की उम्र में आध्यात्मिक अनुभव होने लगे, जब उनकी जागरूकता अनायास ही शरीर से निकल गई और उन्होंने खुद को फर्श पर निश्चल पड़ा हुआ देखा।

कई संतों और साधुओं ने उन्हें आशीर्वाद दिया और उनके माता–पिता को आश्वस्त किया कि उनमें बहुत विकसित जागरूकता है। अशरीरी जागरूकता का यह अनुभव जारी रहा, जिसने उन्हें उस समय के कई संतों जैसे आनंदमयी माँ के पास पहुँचाया। श्री स्वामीजी एक तांत्रिक भैरवी, सुखमन गिरि से भी मिले, जिन्होंने उन्हें शक्तिपात दिया और अपने आध्यात्मिक अनुभवों को स्थिर करने के लिए एक गुरु खोजने का निर्देश दिया।

7.4.2 स्वामी शिवानंद के साथ जीवन

1943 में, 20 वर्ष की आयु में, उन्होंने अपना घर त्याग दिया और गुरु की तलाश में चले गये। यह खोज अंततः उन्हें ऋषिकेश में श्री स्वामी शिवानंद सरस्वती के पास ले गई, जिन्होंने उन्हें 12 सितंबर 1947 को गंगा के तट पर संन्यास के दशनामी संप्रदाय में दीक्षित किया और उन्हें स्वामी सत्यानंद सरस्वती का नाम दिया।

ऋषिकेश में उन शुरुआती वर्षों में, श्री स्वामी सत्यानंद सरस्वती ने खुद को गुरु सेवा में समर्पित कर दिया। उस समय आश्रम अपनी प्रारंभिक अवस्था में था और यहां तक कि भवन और शौचालय जैसी बुनियादी सुविधाएं भी अनुपस्थित थीं। छोटे से आश्रम के आसपास के जंगल सांप, बिच्छू, मच्छर, बंदर और यहां तक कि बाघों से भरे हुए थे। आश्रम का काम भी भारी और कठिन था, जिसके लिए श्री स्वामीजी को एक मजदूर की तरह कड़ी मेहनत करनी पड़ती थी, जो गंगा से बाल्टी में पानी भरकर आश्रम तक ले जाते थे और पानी को संग्रहित करने के लिए कई किलोमीटर दूर आश्रम तक ऊंचे पहाड़ी झरनों से नहरें खोदते थे। आश्रम के निर्माण के लिए.

उस समय ऋषिकेश एक छोटा शहर था और आश्रम की सभी जरूरतें दूर से पैदल चलकर लानी पड़ती थीं। इसके अलावा, विश्वनाथ मंदिर में दैनिक पूजा सहित कई कर्तव्य थे, जिसके लिए श्री स्वामीजी बेल के पत्ते इकट्ठा करने के लिए घने जंगलों में जाते थे।

यदि कोई बीमार पड़ जाता तो न तो कोई चिकित्सा देखभाल होती और न ही कोई उसकी देखभाल करने वाला होता। सभी संन्यासियों को भिक्षा या भिक्षा के लिए बाहर जाना पड़ता था क्योंकि आश्रम में कोई मेस या रसोई नहीं थी।

उस गौरवशाली समय के बारे में जब वे रहते थे और अपने गुरु की सेवा करते थे, श्री स्वामीजी कहते हैं कि वह पूर्ण समागम और गुरु तत्व के प्रति समर्पण का काल था, जिससे उन्हें लगा कि श्री स्वामी शिवानंद सरस्वती को सुनना, बोलना या देखना ही योग था। लेकिन सबसे बढ़कर, अपनी निष्काम सेवा के माध्यम से उन्होंने आध्यात्मिक जीवन के रहस्यों की प्रबुद्ध समझ हासिल की और योग, तंत्र, वेदांत, सांख्य और कुंडलिनी योग पर विशेषज्ञ बन गए। श्री स्वामी शिवानंद ने स्वामी सत्यानंद के बारे में कहा,

"इतनी कम उम्र में इतना तीव्र वैराग्य बहुत कम लोग प्रदर्शित करेंगे। स्वामी सत्यानंद नचिकेता वैराग्य से परिपूर्ण हैं।"

हालाँकि उनके पास फोटोग्राफिक मेमोरी, तीव्र बुद्धि थी और उनके गुरु ने उन्हें एक बहुमुखी प्रतिभा वाला बताया था, श्री स्वामी सत्यानंद सरस्वती की शिक्षा किताबों और आश्रम में अध्ययन से नहीं आई थी। उनका ज्ञान उनकी अथक सेवा के साथ–साथ श्री स्वामी शिवानंद सरस्वती के प्रति उनके अटूट विश्वास और प्रेम के माध्यम से प्रकट हुआ, जिन्होंने उन्हें बताया,

7.4.3 हर कोने और हर घर में योग

1956 में, गुरु सेवा में बारह वर्ष बिताने के बाद, श्री स्वामी सत्यानंद सरस्वती एक पथिक (परिव्राजक) के रूप में निकल पड़े। उनके जाने से पहले श्री स्वामी शिवानंद सरस्वती ने उन्हें क्रिया योग सिखाया और उन्हें ष्घर–घर और किनारे–किनारे योग फैलानेष का मिशन दिया ।

एक घुमंतू संन्यासी के रूप में, श्री स्वामीजी ने पूरे भारत, अफगानिस्तान, बर्मा, नेपाल, तिब्बत, सीलोन और पूरे एशियाई उपमहाद्वीप में पैदल, कार, ट्रेन और कभी–कभी ऊंट द्वारा भी बड़े पैमाने पर यात्रा की। अपने प्रवास के दौरान, उन्होंने समाज के सभी वर्गों के लोगों से मुलाकात की और योग तकनीकों का प्रसार कैसे किया जाए, इस पर अपने विचार तैयार करना शुरू किया। हालाँकि उनकी औपचारिक शिक्षा और आध्यात्मिक परंपरा वेदांत की थी, योग का प्रसार करने का कार्य उनका आंदोलन बन गया।

उनका मिशन 1962 में उनके सामने आया जब उन्होंने योग की वैश्विक बिरादरी बनाने के उद्देश्य से अंतर्राष्ट्रीय योग फेलोशिप आंदोलन की स्थापना की। चूँकि उनका मिशन उन्हें बिहार के मुंगेर में पता चला था, इसलिए उन्होंने मुंगेर में बिहार स्कूल ऑफ योगा की स्थापना की। कुछ ही समय में उनकी शिक्षाएँ तेजी से दुनिया भर में फैल रही थीं।

1963 से 1982 तक, श्री स्वामीजी ने योग को दुनिया के हर कोने, हर जाति, पंथ, धर्म और राष्ट्रीयता के लोगों तक पहुंचाया। उन्होंने सभी महाद्वीपों में लाखों साधकों का मार्गदर्शन किया और विभिन्न देशों में केंद्र और आश्रम स्थापित किये। उनकी लगातार यात्राएं उन्हें ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, जापान, चीन, फिलीपींस, हांगकांग, मलेशिया, थाईलैंड, सिंगापुर, अमेरिका, इंग्लैंड, आयरलैंड, फ्रांस, इटली, जर्मनी, स्विट्जरलैंड, डेनमार्क,

स्वीडन, यूगोस्लाविया, पोलैंड, हंगरी ले गईं।, बुल्गारिया, स्लोवेनिया, रूस, चेकोस्लोवाकिया, ग्रीस, सऊदी अरब, कुवैत, बहरीन, दुबई, इराक, ईरान, पाकिस्तान, अफगानिस्तान, कोलंबिया, ब्राजील, उरुग्वे, चिली, अर्जेंटीना, सैंटो डोमिंगो, प्यूर्टो रिको, सूडान, मिस्र, नैरोबी, घाना, मॉरीशस, अलास्का और आइसलैंड।

कोई भी आसानी से कह सकता है कि श्री स्वामीजी ने दुनिया के कोने–कोने में योग का झंडा फहराया। उन्हें कहीं भी विरोध, विरोध या आलोचना का सामना नहीं करना पड़ा। उनका तरीका अनोखा था. सभी धर्मों और धर्मग्रंथों में पारंगत होने के कारण, उन्होंने उनके ज्ञान को इतनी स्वाभाविक प्रतिभा के साथ शामिल किया कि सभी धर्मों के लोग उनकी ओर आकर्षित हो गए। उनकी शिक्षा केवल योग तक ही सीमित नहीं थी बल्कि कई सहस्राब्दियों के ज्ञान को प्रसारित करती थी।

श्री स्वामीजी ने सभी दर्शनों की जननी तंत्र के ज्ञान, वेदांत, उपनिषदों और पुराणों, बौद्ध धर्म, जैन धर्म, सिख धर्म, पारसी धर्म, इस्लाम और ईसाई धर्म के उत्कृष्ट सत्य को प्रकाश में लाया, जिसमें पदार्थ और सृष्टि का आधुनिक वैज्ञानिक विश्लेषण भी शामिल था। उन्होंने तंत्र और योग की प्राचीन प्रणालियों की व्याख्या, व्याख्या और सटीक, सटीक और व्यवस्थित स्पष्टीकरण दिया, जिससे अब तक अज्ञात प्रथाओं का पता चला।

7.4.4 सत्यानंद जी का यौगिक योगदान

यह कहा जा सकता है कि श्री स्वामीजी योग के क्षेत्र में अग्रणी थे क्योंकि उनकी प्रस्तुति में नवीनता और ताजगी थी। अजपा जप, अंतर मौन, पवनमुक्तासन, क्रिया योग और प्राण विद्या कुछ ऐसे अभ्यास हैं जिन्हें उन्होंने इतने व्यवस्थित और सरल तरीके से पेश किया कि हर किसी के लिए इस मूल्यवान और अब तक दुर्गम विज्ञान में अपनी शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक विकास.

योग निद्रा श्री स्वामीजी की न्यास की तांत्रिक प्रणाली की व्याख्या थी। इस ज्ञान में अपनी गहरी अंतर्दृष्टि के साथ, वह न्यासा के इस अभ्यास की क्षमता को इस तरह से महसूस करने में सक्षम थे, जिसने इसे केवल पूजा के लिए एक पूर्व शर्त के बजाय प्रत्येक व्यक्ति के लिए व्यावहारिक उपयोगिता प्रदान की। योग निद्रा उनकी कुशाग्रता और प्राचीन प्रणालियों में गहरी अंतर्दृष्टि का एक उदाहरण है।

श्री स्वामीजी का दृष्टिकोण प्रेरणादायक, उत्थानकारी होने के साथ–साथ गहन और मर्मज्ञ था। फिर भी उनकी भाषा और व्याख्याएँ हमेशा सरल और समझने में आसान थीं। इस अवधि के दौरान उन्होंने योग और तंत्र पर अस्सी से अधिक पुस्तकें लिखीं, जो अपनी प्रामाणिकता के कारण दुनिया भर के स्कूलों और विश्वविद्यालयों में पाठ्यपुस्तकों के रूप में स्वीकार की जाती हैं। इन पुस्तकों का इतालवी, जर्मन, स्पेनिश, रूसी, यूगोस्लाविया, चीनी, फ्रेंच, ग्रीक, ईरानी और दुनिया की अन्य प्रमुख भाषाओं में अनुवाद किया गया है। लोगों ने उनके विचारों को अपनाया और सभी धर्मों और राष्ट्रीयताओं के आध्यात्मिक साधक उनके पास आने लगे। उन्होंने हजारों लोगों को मंत्र और संन्यास की दीक्षा दी और उनमें दिव्य जीवन जीने का बीज बोया।

उन्होंने योग का प्रकाश फैलाने में जबरदस्त उत्साह और ऊर्जा का प्रदर्शन किया और बीस साल की छोटी सी अवधि में श्री स्वामीजी ने अपने गुरु के आदेश को पूरा किया।

इस प्रकार, 1983 तक, योग के संदेश को फैलाने के श्री स्वामी सत्यानंद सरस्वती के अथक प्रयासों ने पूरी दुनिया को छू लिया था। उन्होंने विभिन्न आवश्यकताओं और संस्कृतियों के लिए योग तकनीकों को प्रसारित करने के लिए संन्यासियों के एक समूह को प्रशिक्षित किया था, और उन्होंने भारत और दुनिया भर में कई सत्यानंद योग आश्रम, स्कूल और केंद्र स्थापित किए थे। बिहार योग स्कूल योग और आध्यात्मिक विज्ञान सीखने के लिए एक प्रतिष्ठित और प्रामाणिक केंद्र के रूप में दुनिया भर में अच्छी तरह से स्थापित और मान्यता प्राप्त था।

इससे भी बड़ी बात यह है कि योग साधु–संन्यासियों की गुफाओं से बाहर निकलकर समाज की मुख्यधारा में आ गया है। चाहे अस्पताल, जेल, स्कूल, कॉलेज, व्यापारिक घराने, खेल और फैशन क्षेत्र, सेना या नौसेना, योग की मांग थी। योग तकनीकों पर वैज्ञानिक अनुसंधान पूरे विश्व में किया जा रहा था। वकील, इंजीनियर, डॉक्टर, कारोबारी दिग्गज और प्रोफेसर जैसे पेशेवर योग को अपने जीवन में शामिल कर रहे थे। जनता भी वैसी ही थी। योग एक घरेलू शब्द बन गया था।

7.4.5 रिखियापीठ की स्थापना

अब, अपनी सिद्धि के चरम पर, श्री स्वामीजी ने वह सब कुछ त्याग दिया जो उन्होंने बनाया था। उन्होंने स्वामी निरंजनानंद को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया और उन्हें काम जारी रखने का आदेश दिया, और फिर धीरे–धीरे योग आंदोलन के शिक्षण और प्रशासन से हटना शुरू कर दिया। 1988 में, श्री स्वामीजी ने शिष्यों, प्रतिष्ठानों और संस्थानों को त्याग दिया और मुंगेर से चले गए, फिर कभी नहीं लौटे।

वह एक भिक्षुक के रूप में भारत के सिद्ध तीर्थों (आध्यात्मिक केंद्रों) की तीर्थयात्रा पर गए , बिना किसी व्यक्तिगत सहायता या अपने द्वारा स्थापित आश्रम या संस्थानों की सहायता के। त्रयंबकेश्वर में, अपने इष्ट देवता, भगवान मृत्युंजय के ज्योतिर्लिंगम के सामने, उन्होंने अपना वेश त्याग दिया और अवधूत के रूप में रहने लगे। और यहीं, नील पर्वत के पास गोदावरी नदी के स्रोत पर, चातुर्मास अनुष्ठान करते समय, उनके भविष्य के निवास स्थान और साधना के बारे में पता चला।

उन्हें हर सांस के साथ भगवान के नाम के अखंड स्मरण और दोहराव के माध्यम से ब्रह्मांडीय आयाम की ओर बढ़ने के लिए एक नए मिशन के लिए जनादेश मिला। 8 सितंबर, 1989 को, अपने गुरु श्री स्वामी शिवानंद सरस्वती के जन्मदिन पर, उन्होंने ऊंची और स्पष्ट आवाज सुनी, चिताभूमि , और उस स्थान का एक दृश्य देखा जहां वे जाने का इरादा रखते थे।

श्री स्वामी सत्यानंद सरस्वती ने रिखिया को नहीं चुना, यह उनके लिए चुना गया था। मुंगेर छोड़ने के बाद, पूरे भारत में घूमते हुए, उन्हें कई खूबसूरत जगहें मिलीं, जहाँ उन्हें निवास करने के लिए आमंत्रित किया गया था। लेकिन समर्पण की अपनी शैली को ध्यान में रखते हुए उन्होंने अपने इष्ट और गुरु के आदेश का इंतजार किया, जिसने उन्हें देवघर (झारखंड) में बाबा बैद्यनाथ धाम के बाहरी इलाके में रिखिया के छोटे से अज्ञात गांव में ले जाया, जो चिताभूमि या श्मशान भूमि है।

स्वामीजी 23 सितंबर 1989 को दोपहर के समय, वसंत विषुव के दिन, रिखिया पहुंचे, जब प्रकृति पूर्ण संतुलन में होती है क्योंकि दिन और रात बराबर होते हैं। इसके तुरंत बाद, उन्होंने एक धुनी या आग जलाई और इसे महाकाल चिता धुनी कहा । धूनी जलाना साधुओं में बहुत प्राचीन परंपरा है। ऐसा माना जाता है कि साधु की धूनी की राख बहुत शक्तिशाली होती है, क्योंकि उसका पूरा दिन धूनी के सामने ही व्यतीत होता है और उसके सभी कार्य अग्नि को साक्षी मानकर किए जाते हैं।

श्री स्वामी सत्यानंद सरस्वती जिस रिखिया पहुंचे, वह अभी भी सोलहवीं शताब्दी में जीवित था। वहां सड़कें, बिजली, टेलीफोन, समाचार पत्र, टेलीविजन या दुकानें नहीं थीं। हालाँकि, इसके कंपन शुद्ध और आध्यात्मिक थे जो एकांत के लिए एक आदर्श माहौल प्रदान करते थे जो उन्होंने खुद पर लगाया था। उन्होंने परमहंसों की जीवनशैली में प्रवेश करते हुए गहन आध्यात्मिक अभ्यास का जीवन शुरू किया, जो अकेले अपने झुंड और मिशन के लिए काम नहीं करते, बल्कि एक सार्वभौमिक दृष्टिकोण रखते हैं। उनका पहला अनुष्ठान 1989 में आश्विन नवरात्रि के दौरान शुरू हुआ – अष्टोत्तर–शत–लक्ष (108 लाख) मंत्र पुरश्चरण का प्रदर्शन, जिसे पूरा करने में उन्हें तीन सौ दिन लगे। उन्होंने गेरु वस्त्र त्याग दिया और कौपीन, लंगोटी धारण कर ली, जो एक साधु के जीवन की एक महत्वपूर्ण पहचान है, जो दर्शाता है कि वैराग्य और वैराग्य उनके अस्तित्व का एक अंतर्निहित हिस्सा है। वे अब किसी भी संस्था से नहीं जुड़े, न ही दीक्षा, उपदेश दिए या दक्षिणा प्राप्त की, बल्कि एकांत और साधना में रहे।

एक निर्णायक संदेश में उन्होंने सभी से कहा,

"मेरे पास किसी से कहने के लिए और कुछ नहीं है और न ही देने के लिए कोई मार्गदर्शन है। बीस वर्षों से अधिक समय से मैं लोगों के साथ रह कर उनके प्रश्नों का उत्तर दे रहा हूँ और उन्हें उनके आध्यात्मिक पथ पर चलने में मदद कर रहा हूँ। अब मैं अपनी जिम्मेदारी वापस लेता हूं. जो लोग ग्रहणशील हैं, उन्हें मैंने जो कहा है उससे निश्चित रूप से लाभ होगा, लेकिन जो नहीं हैं, उन्हें अब अपना रास्ता खुद खोजना होगा।"

1990 में उन्होंने साधना स्थल को श्री पंच दशनाम परमहंस अलख बारा के रूप में नामित किया, इसे एक ऐसे स्थान के रूप में दर्शाया जहां एक संन्यासी जिसने खुद को पूर्ण किया है वह अपनी शिक्षा को समेकित करता है और इसे अधिक आध्यात्मिक ऊंचाइयों को प्राप्त करने के लिए गति देता है। अखाड़े की

इष्ट देवी, इष्ट देवी, को तुलसी माँ के रूप में स्थापित किया गया, जो सभी क्षेत्रों की अध्यक्षता करने वाली परोपकारी शक्ति हैं। अब श्री स्वामीजी ने पंचाग्नि, पाँच–अग्नि तपस्या का व्रत लिया, जिसमें उन्होंने वर्ष के सबसे गर्म महीनों के दौरान बाहर पाँच धधकती आग के सामने बैठकर उच्च साधनाएँ कीं। प्रतिज्ञा 1998 में समाप्त हुई। श्री स्वामीजी द्वारा जलाई गई अग्नि अभी भी रिखियापीठ में जल रही है और प्रतिदिन सूर्योदय और सूर्यास्त के समय वैदिक मंत्रों के उच्चारण के बीच सुगंधित जड़ी–बूटियों से पूजा की जाती है।

पर विशेष जोर देते हुए रिखिया पंचायत के योग्य छात्रों को छात्रवृत्ति दी गई। आश्रम में अंग्रेजी की कक्षाएं भी शुरू की गईं। 2001 तक, रिखिया पंचायत के 6–12 वर्ष की आयु के लगभग सभी पात्र बच्चों को श्री स्वामी सत्यानंद सरस्वती के बढ़ते परिवार में गोद ले लिया गया था। 2003 में कम्प्यूटर प्रशिक्षण प्रारम्भ किया गया। लड़कियों को, जिन्हें कन्या कहा जाता है , संस्कृत स्तोत्र का जाप भी सिखाया जाता था। बालकों, बटुकों को एक साथ गायत्री मंत्र, भगवद गीता, सूर्य नमस्कार और हवन और पूजा के अनुष्ठानों से परिचित कराया गया।

आज ये छोटे बच्चे रिखियापीठ में इन आयोजनों में भाग लेने आने वाले हजारों श्रद्धालुओं के सामने पूरे आत्मविश्वास के साथ सभी समारोहों और अनुष्ठानों का संचालन करते हैं। 2004 में, शिवानंद आश्रम की स्थापना विधवाओं सहित बुजुर्गों और अशक्तों की देखभाल पर मुख्य जोर देकर की गई थी। इसने रिखिया पंचायत के बच्चों और बुजुर्गों को दिन में एक बार पौष्टिक भोजन उपलब्ध कराने की परियोजना भी शुरू की है। इस प्रकार बहुत कम समय में रिखिया में एक मूक क्रांति घटित हो गयी है। यह सब एक संन्यासी द्वारा संभव हुआ जो एकांत में रहने के लिए इस स्थान पर आया था।

2009 में, सत चंडी महायज्ञ और योग पूर्णिमा के दौरान भाग लेने और दर्शन देने के बाद, जहां श्री स्वामीजी ने सभी को धार्मिक जीवन जीने के लिए प्रेरित किया और इन आयोजनों में भाग लेने के लिए एकत्र हुए हजारों लोगों को अंतिम विदाई दी, उन्होंने आधी रात को महासमाधि में प्रवेश किया। 5 दिसंबर और हमारे सद्गुरु श्री स्वामी शिवानंद सरस्वती में विलीन हो गए।

7.5 आचार्य रजनीश

7.5.1 प्रारंभिक जीवन – ओशो

ओशो या भगवान श्री रजनीश का जन्म 1931 में मध्य भारत में हुआ था। वो था एक करिश्माई और प्रतिभाशाली वक्ता जो विश्वव्यापी नए आध्यात्मिक आंदोलन के नेता बने। ऐसा दावा किया जाता है कि 21 वर्ष की आयु में उन्हें ज्ञान या समाधि प्राप्त हुई। उस समय, वह सागर विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र का अध्ययन कर रहे थे। स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त करने के बाद, उन्होंने नौ वर्षों तक जबलपुर विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र पढ़ाया।

दर्शनशास्त्र पढ़ाने के साथ–साथ उन्होंने शिष्यों को दर्शन और धर्म के अपने उदार मिश्रण का पालन करने के लिए आकर्षित करना भी शुरू कर दिया। 1966 में उन्होंने अपना शिक्षण पद छोड़ने और आध्यात्मिक गुरु के रूप में अपनी भूमिका पर पूरा ध्यान देने का निर्णय लिया। 1974 में वह अपने शिष्यों के साथ पुणे, भारत चले आये। यहां उन्होंने छह एकड़ की आरामदायक जगह पर एक नया आश्रम स्थापित किया। 1980 में उन पर एक हिंदू कट्टरपंथी ने हमला किया जो धर्म और आध्यात्मिकता पर ओशो के अपरंपरागत भाव से असहमत था। ऐसा कहा जाता है कि पुलिस की अक्षमता के कारण हमलावर को कभी दोषी नहीं ठहराया गया।

गिरते स्वास्थ्य के कारण ओशो ने भारत छोड़कर अमेरिका जाने का फैसला किया जहां उन्हें बेहतर चिकित्सा उपचार मिल सकेगा। उनके शिष्यों ने एंटेलोप, ओरेगॉन के पास एक बड़ा भूखंड खरीदा। यहां वे एक बड़ा आश्रम और अन्य भवन बनाना चाहते थे। स्थानीय नगरवासियों और आश्रमवासियों के बीच अक्सर मनमुटाव होता रहता था। संस्कृतियों का टकराव हुआ और स्थानीय नगरवासियों को भक्तों की आमद से खतरा महसूस हुआ। इस वजह से कई बिल्डिंग परमिटों को अस्वीकार कर दिया गया। इसके चलते आश्रमवासी सीधे नगर परिषद के लिए निर्वाचित होने की कोशिश करने लगे। ऐसे भी आरोप लगाए गए कि ओशो के अनुयायी एक स्थानीय रेस्तरां में साल्मोनेला फैलाने जैसी अवैध गतिविधियों में शामिल थे। इससे भी गंभीर बात ये है कि ओशो के कुछ अनुयायियों पर हत्या के आरोप भी लगे. अंततः दो को चार्ल्स टर्नर की हत्या का दोषी ठहराया गया जिसने खेत को बंद करने की कोशिश की थी।

1987 में ओशो अधिकारियों की जांच से भयभीत हो गए, इसलिए उन्होंने ओरेगन में परिसर छोड़ने का फैसला किया और दक्षिण कैरोलिना चले गए। यहां वह अमेरिकी आव्रजन कानून के उल्लंघन में फंस गए। उसने झूठी शादियाँ रचाईं और आव्रजन कानूनों का उल्लंघन किया। उन्हें इस शर्त पर निलंबित सजा दी गई कि वह देश छोड़ देंगे। इसलिए उन्होंने अनिच्छा से भारत में पूना जाने का फैसला किया। यही वह समय था जब उन्होंने अपना नाम रजनीश से बदलकर ओशो रखने का फैसला किया। ऐसा कहा जाता है कि यह मास्टर के लिए एक जापानी शब्द है, हालांकि दूसरों का कहना है कि ओशो सामुद्रिक अनुभव शब्द से आया है, ओशो की मृत्यु 1990 में हुई थी, उनके मृत्यु प्रमाण पत्र में हृदय गति रुकने का कारण बताया गया था। हालाँकि कुछ अनुयायियों ने सीबीआई द्वारा जहर देने का आरोप लगाया, हालाँकि इन आरोपों के समर्थन में बहुत कम साक्ष्य थे।

7.5.2 योग में ओशो के दर्शन एवं मान्यताएँ

ओशो का जन्म एक जैन परिवार में हुआ था। हालाँकि उन्होंने कभी भी किसी एक धर्म में विश्वास नहीं किया, लेकिन बौद्ध धर्म, हिंदू धर्म और ईसाई धर्म जैसे कई धर्मों के तत्वों को मिश्रित किया। हालाँकि, उन्होंने नए प्रकार के ध्यान अभ्यास भी जोड़े। उनका दर्शन एक प्रकार का अद्वैतवाद था कि ईश्वर हर चीज में है।

सभी मनुष्य मूलतः दिव्य थेय बात बस इतनी थी कि उस दिव्यता की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ थीं। उन्होंने एक नए प्रकार के ध्यान की शुरुआत की जिसमें अतीत और भविष्य और अहंकार के प्रति सभी लगावों को छोड़ना शामिल था।

यदि कोई साधक ऐसी चेतना प्राप्त कर सके जहाँ न अतीत, न भविष्य, न आसक्ति, न मन, न अहंकार, न स्व। तभी उसे आत्मज्ञान प्राप्त होगा। एक अलग अभ्यास जिसकी उन्होंने वकालत की वह थी ध्यान से ठीक पहले शारीरिक व्यायाम करना। कई भारतीय गुरुओं के विपरीत, ओशो ने सिखाया कि सेक्स आध्यात्मिक प्रगति में बाधा नहीं है। हालाँकि उनके कई शिष्य काफी सरल और मितव्ययी जीवन शैली जीते थे, ओशो कारों के प्रति अपने प्रेम के लिए जाने जाते थे। ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने 20 से अधिक रोल्स रॉयस एकत्रित कर लीं।

ऐसा अनुमान है कि 50,000 से अधिक पश्चिमी लोगों ने गुरु के साथ ज्ञान प्राप्त करने में समय बिताया। अपने चरम पर, दुनिया भर में इसके 200,000 से अधिक सदस्य थे, हालाँकि 1980 के दशक के उत्तरार्ध के घोटालों के बाद इसमें कमी आ गई। ओशो ने कभी भी उत्तराधिकारी नियुक्त करने की इच्छा नहीं की, लेकिन उन्होंने ओशो फाउंडेशन के संचालन के लिए 21 अनुयायियों को नियुक्त किया, जो उनकी शिक्षा के प्रसार के लिए एक आउटलेट प्रदान करता रहा।

7.6 अभ्यास प्रश्न

सत्य / असत्य

1. तिरुमलाई कृष्णमाचार्य का जन्म 15 अगस्त 1975 में हुआ था।
2. शिवानंद के पिता का नाम कुप्पुस्वामी था।
3. सत्यानंद जी के पिता का नाम कृष्णधन घोष था।
4. ओशो का दर्शन अद्वैत वादी था।
5. आचार्य रजनीश की पत्नी का नाम मृणालिनी देवी था।

7.7 सारांश

प्रिय पाठकों उपरोक्त विवरण से आप सभी शिवानंद एवं कुवलयानंद जी के व्यक्ति एवं विश्व मानवता को उनके द्वारा दिये गये अनुदान योगदान के विषय में भली–भांति जान गये होंगे। स्वामी शिवानंद जी एवं कुवलयानंद जी दोनों ही महान आत्माओं ने अपना जीवन स्वार्थ के लिये नहीं वरन् परमार्थ के लिये जिया।

पाठकों कोई भी सन्त और महात्मा वस्तुतः ऐसे ही होते हैं, वे इस धरती पर स्वयं के लिये नहीं वरन् पीड़ितों की सेवा और उद्धार के लिये ही आते हैं।

7.8 शब्दावली

- शोध पत्र– जिसमें वैज्ञाउि नक अध्ययन के निष्कर्षो को संक्षेप में जन सामान्य की जानकारी में वृद्धि के लिये प्रस्तुत किया जाता है।
- ध्यान – महर्षि पतंजलि के अनुसार अन्तरंग योग को दूसरा अत्यन्त महत्पूर्ण सोपान, जिसमें साधक की चित्तवृत्ति अपने ध्येय में तल्लीन हो जाती है।
- निशुल्क – बिना रूपये लिये कोई कार्य करना।
- सार्वभौमिक – सर्वत्र फैला हुआ।
- अनुयायियों – अनुचर, सेवक, दास
- प्रबुद्ध – चौतन्य, सचेत
- प्रतिबिंबित – परछाई

7.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

- कुमार कामाख्या एवं मूर्ति बी.टी. चिन्दान्नद (2007) योग महाविज्ञान। स्टैण्डर्ड पब्लिशर्स दिल्ली।
- अयंगर, बीकेएस (2000)। अस्तदल योगमाला । नई दिल्ली, भारतरू एलाइड पब्लिशर्स।
- कृष्णमाचार्य, तिरुमलाई। योग मकरंद । पी 25. कन्नड़ संस्करण 1934 मदुरै सीएमवी प्रेस
- मनुष्य से ईश्वर–मानव तकरू स्वामी शिवानंद की प्रेरक जीवन–कहानी , एन. अनंतनारायणन द्वारा। इंडियन पब्लिक द्वारा प्रकाशित। ट्रेडिंग कार्पोरेशन, 1970।
- स्वामी शिवानंद और दिव्य जीवन सोसायटीरू पुनरुद्धार आंदोलन का एक चित्रण , एस एन ,1979 द्वारा प्रकाशित।
- अतीत, वर्तमान और भविष्यरू बिहार स्कूल ऑफ योग का समेकित इतिहास , स्वामी योगकांति, स्वामी योगवंदना (संस्करण), 2009, योग प्रकाशन ट्रस्ट
- ग्लप्सेंस ऑफड माई गोल्डन चाइल्डहुड, प्रकाशक त्मइमस च्नइसपीपदह भ्वनेमय छमू संस्करण (1 अप्रैल 1998)

7.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. श्री टी रामकृष्णाचार्य के जन्म से सम्बन्धित कथाओं पर प्रकाश डालिये।
2. श्री टी रामकृष्णाचार्य के आधुनिक योग विचारधारा पर प्रकाश डालिए।
3. स्वामी शिवानंद के जन्म और योग की यात्रा का वर्णन कीजिए।
4. शिवानंद जी की योग साधना का वर्णन कीजिए
5. स्वामी सत्यानंद जी द्वारा दी गई योग साधना का वर्णन कीजिये
6. सत्यानंद जी कृत योग ग्रंथो का वर्णन कीजिये
7. आचार्य रजनीश के जीवन चरित्र का वर्णन कीजिये
8. आचार्य रजनीश के यौगिक योगदान को सूक्ष्म परिचय दीजिए।

इकाई 8 – स्वामी राम (हिमालय), महर्षि महेश योगी, पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, परमहंस योगानंद

इकाई की रूप रेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 स्वामी राम (हिमालय)

- 8.2.1 प्रारंभिक जीवन और शिक्षा
- 8.2.2 योग के गुरु के रूप में
- 8.2.3 भारत में प्रथम आश्रम की स्थापना

8.2.4 अमेरिका में हिमालयन इंस्टीट्यूट

8.2.5 भारत में चिकित्सा सुविधा

8.2.6 योग विषय पर लेखन

8.3 महर्षि महेश योगी

8.3.1 महर्षि महेश योगी की जीवनी

8.3.2 महर्षि महेश योगी यौगिक योगदान

8.3.4 ट्रान्सेंडैंटल मेडिटेशन क्या है?

8.3.5 भावातीत ध्यान

8.3.6 भावातीत ध्यान आंदोलन

8.3.7 महर्षि द्वारा लिखित पुस्तकें

8.4 पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

8.4.1 जन्म और प्रारंभिक जीवन

8.4.2 भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में भागीदारी

8.4.3 आध्यात्मिक प्रवास

8.4.4 युग परिवर्तनकारी साहित्य लेखन

8.4.5 युग निर्माण योजना के सूत्रधार (एक वैश्विक आंदोलन)

8.4.6 शान्तिकुञ्ज एवं ब्रह्मवर्चस् की स्थापना

8.4.7 वैज्ञानिक अध्यात्म के जनक

8.4.8 नये युग की शुरुआत

8.4.9 आचार्य श्री का यौगिक योगदान

8.4.10 प्रज्ञायोग, आत्म बोध तत्वबोध साधना

8.4.11 प्रमुख योग पर आधारित पुस्तके

8.5 परमहंस योगानंद

8.5.1 अमेरिका प्रवास

8.5.2 युक्तेश्वर यात्रा

8.5.3 अमेरिका से वापसी

8.5.4 मृत्यु

8.5.5 शिक्षाएँ

8.5.6 मुख्य लेखरू क्रिया योग

5.5.7 एक योगी की आत्मकथा

8.5.8 भारत का स्मारक टिकट

8.5.9 प्रमुख शिष्य

8.6 अभ्यास प्रश्न

8.7 सारांश

8.8 शब्दा वली

8.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

8.10 निबंधात्मक प्रश्न

8.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में हम जानेंगे

- स्वामी राम के जन्म और व्यक्तित्व का अध्ययन कर सकेंगे।
- स्वामी राम के योग साधना का अध्ययन कर सकेंगे।
- महेश योगी जी के उल्लेखनीय योगदान का वर्णन कर सकेंगे।
- महेश योगी के आरम्भिक जीवन एवं योग साधना कर अध्ययन कर सकेंगे।
- विश्व मानवता को स्वामी पंडित श्री राम शर्मा आचार्य जी द्वारा जो अनुदान प्राप्त हुए, उनका अध्ययन कर सकेंगे।
- पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी के व्यक्तित्व का अध्ययन कर सकेंगे।

- परमहंस योगानंद जी के उल्लेखनीय योगदान का वर्णन कर सकेंगे।
- परमहंस योगानंद के आरम्भिक जीवन एवं योग साधना कर अध्ययन कर सकेंगे।
- पूरे विश्व में परमहंस योगानंद जी द्वारा जो अनुदान प्राप्त हुए, उनका अध्ययन कर सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई हमने विभिन्न महापुरूषों के यौगिक व्यक्तित्व के अध्ययन के पश्चात् अब हम इस इकाई में स्वामी राम (हिमालय), महर्षि महेश योगी, पं० श्री रामशर्मा आचार्य, परमहंस योगानन्द जी के जीवन एवं कृतित्व पर विस्तार से चर्चा करेंगे। इन महापुरुषों के जीवन दर्शन में वस्तुतः एक योगी पुरूष की झलक दिखेगी। और उनके यौगिक व्यक्तित्व के अधिकतम पहलू जो भी ज्ञात व अविज्ञात है वे सभी प्रासंगिक है, अत उन्हें इससे बढ़कर एक धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक चेतना के क्रांतिकारी पुरूष के रूप में प्रतिष्ठा दी जाती है ।

हमारे इस शीर्षक का उद्देश्य इनके यौगिक व्यक्तित्व का परिचय तथा योग साधनाओं की जानकारी प्राप्त करना है। जितनी भी प्राचीन भारतीय योग प्रणाली है। उन सब को सरलीकृत तथा व्यवहारिक स्वरूप देकर जन सामान्य के बीच प्रस्तुत करने में इनका ज्ञान बहुत ही प्रमाणिक है । इनके द्वारा प्रतिपादित मंत्रयोग, कर्मयोग, ज्ञान योग, भक्तियोग आदि के स्वरूप अत्यन्त युगानुकूल हैं । पंडित श्री राम शर्मा आचार्य जी इस युग में विश्वामित्र ऋषि के समान योग तपस्या करने वाले ये युगऋषि भी कहलाते हैं।

8.2 स्वामी राम (हिमालय)

त्यागी और तपस्वियों की भूमि भारत में अनेक तरह के योगी हुए हैं। केवल भारत ही नहीं, तो विश्व के धार्मिक विद्वानों, वैज्ञानिकों एवं चिकित्सकों को अपनी यौगिक क्रियाओं से कई बार चमत्कृत कर देने वाले सिद्धयोगी स्वामी राम का नाम असहज योग की परम्परा में शीर्ष पर माना जाता है।

स्वामी राम का जन्म देवभूमि उत्तरांचल के गढ़वाल क्षेत्र में दो जुलाई, 1925 को हुआ था। उत्तरांचल सदा से दिव्य योगियों एवं सन्तों की भूमि रही है। उन्हें देखकर राम की रुचि बचपन से ही योग की ओर हो गयी। इन्होंने विद्यालयीन शिक्षा कहाँ तक पायी, इसकी जानकारी नहीं मिलतीयपर इतना सत्य है कि लौकिक शिक्षा के बारे में भी इनका ज्ञान अत्यधिक था।

8.2.1 प्रारंभिक जीवन और शिक्षा—

स्वामी राम का जन्म बृज किशोर धस्माना या बृज किशोर कुमार के रूप में हुआ था, गढ़वाल हिमालय के टोली नामक एक छोटे से गाँव में एक उत्तरी भारतीय ब्राह्मण परिवार में। कम उम्र से ही उनका पालन–पोषण उनके गुरु बंगाली बाबा द्वारा हिमालय में किया गया था और, अपने गुरु के मार्गदर्शन में, उन्होंने एक मंदिर से दूसरे मंदिर की यात्रा की और विभिन्न हिमालयी संतों और संतों के साथ अध्ययन किया, जिनमें उनके दादा भी शामिल थे, जो एक दूरदराज के इलाके में रहते थे।

8.2.2 योग के गुरु के रूप में–

जब वे 28 वर्ष के थे, तब वे दक्षिण भारत के करविरपीठम में शंकराचार्य के रूप में विद्वान मठ परंपरा के नेता डॉ. कुर्तकोटि के उत्तराधिकारी बने । स्वामी राम ने अर्हता प्राप्त करने के लिए प्राचीन ग्रंथों के बारे में अपने ज्ञान का प्रदर्शन कियाय वे 1949 से 1952 तक इस पद पर रहे।

1952 में अपने गुरु के पास लौटने और हिमालय की गुफाओं में कई वर्षों तक अभ्यास करने के बाद, स्वामी राम को उनके शिक्षक ने पश्चिम जाने के लिए प्रोत्साहित किया। वहां उन्होंने अपने शिक्षण जीवन का एक बड़ा हिस्सा बिताया।

अपने गहन हिंदू आध्यात्मिक प्रशिक्षण के बाद, स्वामी राम ने भारत और यूरोप में अकादमिक उच्च शिक्षा प्राप्त की। 1969 में वे संयुक्त राज्य अमेरिका आये।

जब वह टोपेका, कैनसस में मेनिंगर फाउंडेशन में एक शोध विषय थे, तब दर्ज की गई घटनाएँ शानदार थीं।

1970 और 1971 में बायोफीडबैक प्रयोगों की एक श्रृंखला के दौरान, डॉ. एल्मर और एलिस ग्रीन ने देखा कि स्वामी राम अपने पर्यावरण के प्रति सचेत रहते हुए, थीटा और डेल्टा (नींद) तरंगों सहित इच्छानुसार विभिन्न मस्तिष्क तरंगें उत्पन्न कर सकते थे। उन्होंने स्वेच्छा से अपने हृदय को 17 सेकंड के लिए रक्त पंप करना बंद कर दिया। प्रयोगकर्ताओं को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि, अपने हृदय को रोकने के बजाय, स्वामी ने वास्तव में इसकी गति को 300 बीट प्रति मिनट की सीमा तक बढ़ा दिया था, क्योंकि निलय बंद हो गया था और अटरिया केवल फड़फड़ा रहा था, इसलिए इसमें कोई रक्त पंप नहीं हो रहा था। इस प्रकार परिसंचरण तंत्र पर प्रभाव वैसा ही था मानो हृदय ने धड़कना पूरी तरह से बंद कर दिया हो।

8.2.3 भारत में प्रथम आश्रम की स्थापना–

स्वामी राम ने अपना पहला आश्रम नेपाल में काठमांडू के पास , तौर पर 1950 के दशक के अंत में बनाया था। यह जनागल पर्वत पर धुलीखेल के रास्ते में स्थित था । 1952 में शंकराचार्य का पद छोड़ने के बाद स्वामी राम सबसे पहले अपने गुरु के पास वापस गये थे। फिर वह कमंडलु और बाघ की चटाई के

अलावा कुछ भी नहीं लेकर नंगे पैर यात्रा करते हुए हिमालय में नेपाल गए । उन्होंने जो आश्रम शुरू किया उसे बाद में स्वामी विशुद्ध देव को हस्तांतरित कर दिया गया। इसे अब हंसदा योग आश्रम के नाम से जाना जाता है, और यह चरित्र विज्ञान आंदोलन का मुख्यालय है। हालाँकि, वहाँ अन्य कार्यक्रम भी आयोजित किये जाते हैं।

1966 में, मूल हिमालयन इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ योग साइंस एंड फिलॉसफी की स्थापना स्वयं स्वामी राम ने भारत के कानपुर में की थी। संस्थान की 50वीं वर्षगांठ 2016 में थी।

8.2.4 अमेरिका में हिमालयन इंस्टीट्यूट–

स्वामी राम ने अमेरिका में हिमालयन इंस्टीट्यूट ऑफ योग साइंस एंड फिलॉसफी की भी स्थापना की। इसका मूल अमेरिकी स्थान ग्लेनव्यू, इलिनोइस था।

इस हिमालयन योग विज्ञान और दर्शन संस्थान का मुख्यालय अब होन्सडेल, पेंसिल्वेनिया में है । इसकी संयुक्त राज्य अमेरिका, यूरोप और भारत में शाखाएँ हैं। स्वामी राम ने अन्य शिक्षण और सेवा संगठनों की भी स्थापना की, जिनमें से कुछ नीचे लिंक किए गए हैं। पंडित राजमणि तिगुनाइत, स्वामी राम के उत्तराधिकारी के रूप में हिमालयन इंस्टीट्यूट के आध्यात्मिक प्रमुख बने।

8.2.5 भारत में चिकित्सा सुविधा–

उनकी महत्वपूर्ण उपलब्धियों में से एक भारत के उत्तरी भाग (देहरादून) में आसपास के पहाड़ों में लाखों गरीब लोगों की सेवा के लिए एक बड़ी चिकित्सा सुविधा की स्थापना करना है। 13, लगभग 1987 तक इस क्षेत्र के ग्रामीण गरीबों को स्वास्थ्य देखभाल, पानी, स्वच्छता और शिक्षा तक पहुंच नहीं थी। स्वामी राम के समर्पित शिष्यों ने गरीबी मुक्त क्षेत्र के उनके सपने को साकार करने में योगदान दिया है। उनकी नेतृत्व शैली और अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के तरीके की कहानियाँ स्वामी राम के बारे में कई पुस्तकों में प्रलेखित हैं।

8.2.6 योग विषय पर लेखन–

स्वामी राम ने दर्जनों पुस्तकें लिखीं, जो भारत और अमेरिका में प्रकाशित हुईं, जो आम तौर पर योगी बनने के लिए उनके द्वारा अपनाए गए मार्ग का वर्णन करती हैं। वह योग और ध्यान जैसी प्रथाओं के दर्शन, अभ्यास और लाभों पर चर्चा करते हैं। प्रारंभिक सह–लिखित पुस्तक, योग और मनोचिकित्सा (1976) में, हठयोग को पश्चिमी मनोविज्ञान के संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है।

एनलाइटेनमेंट विदाउट गॉड और लिविंग विद द हिमालयन मास्टर्स जैसी पुस्तकों में व्यक्त सामान्य विषयों में से एक किसी भी व्यक्ति की संरचित धर्म की आवश्यकता के बिना शांति प्राप्त करने की क्षमता है।

उन्होंने योगियों द्वारा अपने ज्ञान का प्रदर्शन करने के लिए अलौकिक क्रियाकलापो का उपयोग करने की प्रवृत्ति की आलोचना की और तर्क दिया कि ये केवल क्रियाकलापो को दिखाने की क्षमता प्रदर्शित करते हैं।

8.3 महर्षि महेश योगी

महर्षि महेश योगी भारत के सबसे प्रभावशाली योग गुरुओं में से एक थे , एक धार्मिक नेता जिन्होंने ट्रान्सेंडैंटल मेडिटेशन की शिक्षाओं को दुनिया भर में फैलाया। वह ट्रान्सेंडैंटल मेडिटेशन आंदोलन के संस्थापक हैं, जिसे उन्होंने 1950 के दशक के अंत में शुरू किया था

कॉलेज में रहते हुए, उन्होंने जीवन में गहरे अर्थ तलाशने का फैसला किया और स्वामी ब्रह्मानंद सरस्वती (गुरु देव) के शिष्य बन गए जिन्होंने उन्हें योग और ध्यान सिखाया। अपना कॉलेज पूरा करने के बाद, 1953 में गुरु की मृत्यु तक ब्रह्मानंद के छात्र के रूप में उनका प्रशिक्षण जारी रहा।

अपने गुरु की मृत्यु के बाद महर्षि हिमालय चले गए और लगभग दो वर्षों तक तपस्या की। जब वे वापस लौटे तो उन्होंने अपने गुरु की शिक्षाओं को दुनिया भर में फैलाने के लिए खुद को समर्पित कर दिया। महर्षि ने अपनी पहली शिक्षा सुदूर पूर्व में शुरू की। 1959 के वसंत में, उन्होंने ट्रान्सेंडैंटल मेडिटेशन तकनीक को दुनिया में लाने और लोगों को उच्च चेतना प्राप्त करने में मदद करने के लिए समुद्र पार किया।

8.3.1 महर्षि महेश योगी की जीवनी–

महर्षि महेश योगी भारत के सबसे प्रभावशाली योग गुरुओं में से एक थे , एक धार्मिक नेता जिन्होंने ट्रान्सेंडैंटल मेडिटेशन की शिक्षाओं को दुनिया भर में फैलाया। वह ट्रान्सेंडैंटल मेडिटेशन आंदोलन के संस्थापक हैं, जिसे उन्होंने 1950 के दशक के अंत में शुरू किया था।

कॉलेज में रहते हुए, उन्होंने जीवन में गहरे अर्थ तलाशने का फैसला किया और स्वामी ब्रह्मानंद सरस्वती (गुरु देव) के शिष्य बन गए जिन्होंने उन्हें योग और ध्यान सिखाया। अपना कॉलेज पूरा करने के बाद, 1953 में गुरु की मृत्यु तक ब्रह्मानंद के छात्र के रूप में उनका प्रशिक्षण जारी रहा।

अपने गुरु की मृत्यु के बाद महर्षि हिमालय चले गए और लगभग दो वर्षों तक तपस्या की। जब वे वापस लौटे तो उन्होंने अपने गुरु की शिक्षाओं को दुनिया भर में फैलाने के लिए खुद को समर्पित कर दिया। महर्षि ने अपनी पहली शिक्षा सुदूर पूर्व में शुरू की। 1959 के वसंत में, उन्होंने ट्रान्सेंडैंटल मेडिटेशन तकनीक को दुनिया में लाने और लोगों को उच्च चेतना प्राप्त करने में मदद करने के लिए समुद्र पार किया।

उनकी शिक्षा के अनुसार, दैनिक ध्यान से तनाव को कम किया जा सकता है। महर्षि ने 40,000 से अधिक ट्रान्सेंडैंटल मेडिटेशन शिक्षकों, 50 लाख लोगों को प्रशिक्षित किया है और धर्मार्थ संगठनों के साथ–साथ सैकड़ों विश्वविद्यालयों, स्कूलों और शिक्षण केंद्रों की स्थापना की है।

महर्षि के प्रसिद्ध अनुयायियों में बीटल्स भी शामिल थे, जिन्होंने 1968 में भारत के ऋषिकेश की यात्रा की और एक महीने तक उनके आश्रम में रुके, जिसे बीटल्स आश्रम ऋषिकेश के नाम से भी जाना जाता है । रिपोर्टों में कहा गया है कि बीटल्स ने अपनी कुछ सबसे बड़ी हिट फिल्में वहां लिखीं।

महर्षि महेश योगी का प्रारंभिक जीवन जबलपुर में महर्षि महेश योगी (12 जनवरी 1917 – 5 फरवरी 2008) का जन्म भारत के मध्य क्षेत्र में जबलपुर के पास छोटे से गाँव चीचली में हुआ था। उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय में भौतिकी का अध्ययन किया और 1942 में डिग्री हासिल की और कुछ समय के लिए उन्होंने गन कैरिज फैक्ट्री में भी काम किया।

अपने कॉलेज के बाद, वह स्वामी ब्रह्मानंद सरस्वती (गुरु देव) के छात्र बन गए और उन्होंने नया नाम बाल ब्रह्मचारी महेश रख लिया। अपने गुरु से उन्होंने तीव्र और गहन ध्यान का रहस्य सीखा।

8.3.2 महर्षि महेश योगी यौगिक योगदान–

महर्षि महेश योगी भारत के सबसे प्रभावशाली योग गुरुओं में से एक थे , एक धार्मिक नेता जिन्होंने ट्रान्सेंडैंटल मेडिटेशन की शिक्षाओं को दुनिया भर में फैलाया। वह ट्रान्सेंडैंटल मेडिटेशन आंदोलन के संस्थापक हैं, जिसे उन्होंने 1950 के दशक के अंत में शुरू किया था।

कॉलेज में रहते हुए, उन्होंने जीवन में गहरे अर्थ तलाशने का फैसला किया और स्वामी ब्रह्मानंद सरस्वती (गुरु देव) के शिष्य बन गए जिन्होंने उन्हें योग और ध्यान सिखाया। अपना कॉलेज पूरा करने के बाद, 1953 में गुरु की मृत्यु तक ब्रह्मानंद के छात्र के रूप में उनका प्रशिक्षण जारी रहा।

अपने गुरु की मृत्यु के बाद महर्षि हिमालय चले गए और लगभग दो वर्षों तक तपस्या की। जब वे वापस लौटे तो उन्होंने अपने गुरु की शिक्षाओं को दुनिया भर में फैलाने के लिए खुद को समर्पित कर दिया। महर्षि ने अपनी पहली शिक्षा सुदूर पूर्व में शुरू की। 1959 के वसंत में, उन्होंने ट्रान्सेंडैंटल मेडिटेशन तकनीक को दुनिया में लाने और लोगों को उच्च चेतना प्राप्त करने में मदद करने के लिए समुद्र पार किया।

उनकी शिक्षा के अनुसार, दैनिक ध्यान से तनाव को कम किया जा सकता है। महर्षि ने 40,000 से अधिक ट्रान्सेंडैंटल मेडिटेशन शिक्षकों, 50 लाख लोगों को प्रशिक्षित किया है और धर्मार्थ संगठनों के साथ–साथ सैकड़ों विश्वविद्यालयों, स्कूलों और शिक्षण केंद्रों की स्थापना की है।

महर्षि के प्रसिद्ध अनुयायियों में बीटल्स भी शामिल थे, जिन्होंने 1968 में भारत के ऋषिकेश की यात्रा की और एक महीने तक उनके आश्रम में रुके, जिसे बीटल्स आश्रम ऋषिकेश के नाम से भी जाना जाता है । रिपोर्टों में कहा गया है कि बीटल्स ने अपनी कुछ सबसे बड़ी हिट फिल्में वहां लिखीं।

8.3.3 महर्षि महेश योगी का दर्शन–

हम महर्षि महेश योगी के दर्शन को उनके तीन मुख्य जीवन लक्ष्यों और शिक्षाओं के माध्यम से समझ सकते हैं।

1. भारत में आध्यात्मिक परंपरा को पुनर्जीवित करना और दुनिया भर में फैलाना।
2. यह दर्शाने के लिए कि ध्यान केवल साधु–संन्यासियों के लिए नहीं, बल्कि सभी के लिए है।
3. यह दर्शाना कि वेद विज्ञान सम्मत है।

इनके अलावा उन्होंने लोगों को ध्यान के एक नए तरीके से भी परिचित कराया, जिसे उन्होंने ट्रान्सेंडैंटल मेडिटेशन नाम दिया, जिसका वर्णन नीचे लेख में किया है।

8.3.4 ट्रान्सेंडैंटल मेडिटेशन क्या है?

ट्रान्सेंडैंटल मेडिटेशन एक विशेष प्रकार का ध्यान है जिसमें एक अभ्यासकर्ता उच्च चेतना और आंतरिक शांति की स्थिति प्राप्त करने के लिए मानसिक रूप से एक मंत्र या एक विशेष संस्कृत शब्द का उच्चारण करता है। ध्यान की इस टीएम तकनीक का अभ्यास दिन में दो बार कम से कम 20 मिनट के लिए किया जाता है।

टीएम नकारात्मक विचारों से बचने और आरामदायक जागरूकता की स्थिति को बढ़ावा देने की एक तकनीक है। बार–बार दोहराए जाने वाले पवित्र मंत्रों पर ध्यान केंद्रित करने के माध्यम से एक अभ्यासकर्ता का लक्ष्य अपने मानसिक शोर को कम करना और शांति और उच्च चेतना की गहरी स्थिति प्राप्त करना है, जो बदले में मन की रचनात्मकता को बढ़ाता है।

8.3.5 भावातीत ध्यान–

महर्षि महेश योगी जी के दर्शनशास्त्र का सबसे प्रमुख बिंदु है।

महर्षि महेश योगी ट्रान्सेंडैंटल मेडिटेशन के लाभ-

नियमित ध्यान से उच्च रक्तचाप, तनाव, चिंता, पुराने दर्द और कोलेस्ट्रॉल को कम किया जा सकता है। यह नींद में सुधार करने में मदद करता है और स्पष्टता और उत्पादकता की भावना प्रदान करता है। यह मस्तिष्क के कार्यों और याददाश्त को भी बढ़ाता है।

ट्रान्सेंडैंटल मेडिटेशन के कुछ साक्ष्य–आधारित लाभ

- 43 सहकर्मी–समीक्षित शोध अध्ययनों के अनुसार, ट्रान्सेंडैंटल मेडिटेशन हृदय स्वास्थ्य को बढ़ावा देता है और हृदय संबंधी जोखिम को कम करता है।

- 43 सहकर्मी–समीक्षित शोध अध्ययनों के अनुसार, ट्रान्सेंडैंटल मेडिटेशन हृदय स्वास्थ्य को बढ़ावा देता है और हृदय संबंधी जोखिम को कम करता है।

गहरी आंतरिक शांति प्राप्त करने में मदद करता है जो तनाव और चिंता के लिए अत्यधिक प्रभावी है।

8.3.6 भावातीत ध्यान आंदोलन

टीएम आंदोलन की शुरुआत 1950 के दशक में भारत में महर्षि महेश योगी ने की थी। यह आंदोलन ट्रान्सेंडैंटल मेडिटेशन तकनीक से जुड़े कार्यक्रमों और संगठनों को संदर्भित करता है।

1977 में संगठन में 900,000 से अधिक प्रतिभागी थेय 1980 के दशक में दस लाख और 21वीं सदी की शुरुआत तक दुनिया भर में छह करोड़ लोगों ने ध्यान तकनीक की कक्षाएं ली थीं।

कार्यक्रमों में टीएम–सिद्धि कार्यक्रम नामक एक उन्नत ध्यान अभ्यास और महर्षि आयुर्वेद नामक एक स्वास्थ्य देखभाल कार्यक्रम शामिल है।

8.3.7 महर्षि द्वारा लिखित पुस्तकें

उनकी कुछ बेहतरीन किताबें हैं ष्साइंस ऑफ बीइंग एंड आर्ट ऑफ लिविंग, सेलिब्रेटिंग परफेक्शन इन एजुकेशन, ट्रान्सेंडैंटल मेडिटेशन और महर्षि की एब्सोल्यूट थ्योरी ऑफ डिफेंस।

8.4 पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी (20 सितंबर, 1911 – 2 जून, 1990) एक भारतीय समाज सुधारक, एक प्रमुख दार्शनिक, नए स्वर्ण युग के दूरदर्शी और अखिल विश्व गायत्री परिवार के संस्थापक थे , जिसका मुख्यालय शांतिकुंज, हरिद्वार में है।

उन्होंने आध्यात्मिकता के पुनरुद्धार, आधुनिक और प्राचीन विज्ञान के रचनात्मक एकीकरण और वर्तमान समय की चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों में प्रासंगिक धर्म का नेतृत्व किया।

8.4.1 जन्म और प्रारंभिक जीवन–

पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य का जन्म 20 सितंबर 1911 को पंडित के पुत्र के रूप में हुआ था। रूपकिशोर शर्मा और माता दानकुंवरी देवी आंवलखेड़ा (जिला आगरा, भारत) में। ,

बचपन से ही, उन्होंने आम जनता के कल्याण के लिए लालसा और गहरी प्रतिबद्धता दिखाई, जब उन्होंने अपने परिवार की कड़ी अस्वीकृति और नाराजगी के बावजूद कुष्ठ रोग से पीड़ित एक बूढ़ी अछूत

महिला की देखभाल करने का साहसी कदम उठाया। वह उनके घर में काम करती थी और उसे चपको कहा जाता था, जब वह कई दिनों तक घर नहीं आती थी तो बालक श्रीराम को उसकी लंबी अनुपस्थिति के बारे में जानने की जिज्ञासा हुई। इसलिए वह उसकी खोज में गाँव के बाहरी इलाके की ओर निकल पड़ा ("अछूत" बस्तियाँ आमतौर पर गाँवों के बाहरी इलाके में बनाई जाती थीं)। उसने उसे एक भयानक स्थिति में पाया, दर्द और पीड़ा में चिल्ला रही थी, ऊर्जा की कमी और भोजन से वंचित होने के कारण चीखें दब गईं, जानवरों से भी बदतर स्थिति, सभी मानवीय गरिमा छीन ली गई। उसके दया के प्राणी बनने का कारण गाँव के निवासियों और उसके रिश्तेदारों की संयुक्त उदासीनता थी, लेकिन केवल श्रीराम ही थे जिन्हें उसकी परवाह थी। उन्होंने चिकित्सकों और वैद्यों (पारंपरिक हिंदू चिकित्सकों) से बातचीत की, उनके लिए दवाइयां और ड्रेसिंग खरीदी। उसे नहलाने, दवा लगाने, घावों पर पट्टी बांधने और खाना खिलाने के लिए प्रतिदिन समय निकालता। यह उस समय विशेष रूप से उल्लेखनीय था जब छुआ–छूत संकट अपने चरम पर था। उनके जीवन की यह घटना विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि यह जीवन में कर्म के प्रति उनके विश्वास को उजागर करती है।

महान स्वतंत्रता सेनानी और बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के संस्थापक, पंडित मदन मोहन मालवीय ने 8 वर्ष की आयु में उनका यज्ञोपवीत संस्कार समारोह मनाया और उन्हें गायत्री मंत्र की दीक्षा दी ।

पंद्रह वर्ष की आयु में, उनके आध्यात्मिक गुरु, एक हिमालयी योगी, सर्वेश्वरानंदजी सूक्ष्म शरीर में पूजा के दौरान उनके सामने प्रकट हुए थे। सर्वेश्वरानंदजी के निर्देशानुसार, श्रीराम ने चौबीस वर्षों तक गायत्री मंत्र के चौबीस महापुरश्चरण (2.4 मिलियन पाठ) किए। उच्च आध्यात्मिक उपलब्धियों के लिए उन्होंने चार बार हिमालय की यात्रा की। इसी समय उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया और तीन बार जेल गये।

8.4.2 भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में भागीदारी–

युवा श्रीराम ने मात्र 12 वर्ष की उम्र में ही अंग्रेजों का विरोध करने और पीड़ितों की मदद करने के लिए बाल सेना (बच्चों की सेना) बनाई । आंदोलन में उनकी बढ़ती भागीदारी से चिंतित होकर उनके परिवार वालों ने उन्हें रोकने की कोशिश की, लेकिन वे आधी रात को घर से निकल गये और 12 घंटे पैदल चलकर आगरा पहुँच गये। वहां वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के स्वयंसेवक शिविर में शामिल हो गये। उनके समर्पण और भक्ति के कारण साथी स्वतंत्रता सेनानियों ने उन्हें मत्त (नशे में धुत, जुनूनी, स्वतंत्र भारत के विचार के प्रति पूरी तरह से समर्पित) उपनाम दिया था। उनके कई क्रांतिकारी लेख और कविताएं मट्टा उपनाम से हिंदी समाचार पत्र सैनिक में प्रकाशित हुईं।

भगत सिंह की फाँसी के बाद, उन्हें अप्रैल 1931 में आगरा में निषेधाज्ञा तोड़ने के आरोप में गिरफ्तार किया गया, लेकिन जल्द ही रिहा कर दिया गया। इससे न घबराते हुए उन्होंने अपने गृह ग्राम आवलखेड़ा के निकट ग्राम पारखी में झंडा जुलूस निकालने की घोषणा कर दी। सरकार ने फिर जारी किये निषेधाज्ञा. पुलिस

ने जुलूस पर लाठियां बरसाईं. श्रीराम बेहोश हो गए और उन्हें अस्पताल ले जाना पड़ा। डॉक्टर तब हैरान रह गए जब उन्होंने देखा कि झंडे के कपड़े का एक टुकड़ा अभी भी उसके जबड़ों के बीच फंसा हुआ है जिसे उसने पुलिस से बचाने के लिए अपने मुंह में ले लिया है।

1933 में, वह कांग्रेस की महत्वपूर्ण बैठक में भाग लेने के लिए कोलकाता के लिए रवाना हुए, लेकिन उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और महामना मदन मोहन मालवीय, स्वरूपरानी नेहरू, देवदास गांधी, रफी अहमद किदवई आदि जैसे अन्य राष्ट्रीय नेताओं के साथ आसनसोल जेल भेज दिया गया। 25 साल की उम्र में उन्हें सरकारी प्रतिष्ठानों पर झंडा फहराने के आरोप में फिर से गिरफ्तार कर लिया गया और कई जेलों में स्थानांतरित कर दिया गया। करीब एक साल बाद उन्हें रिहा कर दिया गया।

8.4.3 आध्यात्मिक प्रवास–

पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य ने पांडिचेरी में श्री अरबिंदो आश्रम, तिरुवन्नामलाई में रमण महर्षि के आश्रम, रवींद्रनाथ टैगोर के शांतिनिकेतन की यात्रा किया और अहमदाबाद में साबरमती आश्रम में महात्मा गांधी के साथ काम किया। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने के दौरान वे प्रख्यात राष्ट्रीय नेताओं के निकट संपर्क में आये। 1935 में, उन्होंने महात्मा गांधी के आशीर्वाद से आध्यात्मिक माध्यम से सामाजिक उत्थान का कार्य शुरू किया। 1946 में, उन्होंने भगवती देवी शर्मा से शादी की, और तब से, संत दंपति ने समर्पित रूप से मानव जाति के आध्यात्मिक उत्थान के लक्ष्य का पीछा किया।

पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य (अपने शिष्यों द्वारा गुरुदेव के रूप में सम्मानित) देवी गायत्री के एक महान भक्त थे। उन्होंने हिंदू धर्म में वर्णित उच्चतम प्रकार की साधनाओं का सफलतापूर्वक अभ्यास किया और उनमें महारत हासिल की। उन्होंने तंत्र के गूढ़ विज्ञान को समझ लिया था। उन्हें गायत्री मंत्र और योग के दर्शन और विज्ञान का सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त हुआ था। उन्होंने सरल साधनाओं पर प्रयोगों की शुरुआत की, जिन्हें आम जनता आसानी से अपना सकती थी।

8.4.4 युग परिवर्तनकारी साहित्य लेखन–

लोगों की मदद करने के लिए उनका उद्देश्य आज दुनिया की खराब स्थिति के मूल कारण का निदान करना और समाज के उत्थान को सक्षम बनाना था। उन्होंने विश्वास के संकट, लोगों की आंतरिक शक्तियों की अज्ञानता और धार्मिक दृष्टिकोण और आचरण की कमी को पहचाना।

प्रेरक साहित्य की क्षमता और बौद्धिक विकास को जगाने में इसके महत्व को महसूस करते हुए, उन्होंने लोगों के मन से बुरी प्रवृत्तियों और अंध विश्वास को उखाड़ने और अंतर्निहित ज्ञान, शक्ति और आध्यात्मिक आनंद को जगाने के लिए लेखन को प्रमुख माध्यम के रूप में चुना था।

पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य ने अखंड ज्योति के पहले अंक से विचार क्रांति आंदोलन की शुरुआत की । 1960 तक, उन्होंने 4 वेदों, 108 उपनिषदों, 6 दर्शनों, 18 पुराणों, योगवासिष्ठ और विभिन्न अरण्यकों और ब्राह्मणों को संकलित और अनुवाद किया था, ताकि जनता को उनमें निहित ज्ञान को समझने में सक्षम बनाया जा सके। अनुवाद का उद्देश्य गलत धारणाओं, अंधविश्वासों और अंध रीति–रिवाजों को खत्म करना भी था, जो वेदों और अन्य धर्मग्रंथों की गलत व्याख्याओं द्वारा मध्यकालीन युग में प्रचारित किए गए थे। ज्ञान और मानव संस्कृति की दुनिया में इस योगदान को डॉ. एस राधाकृष्णन, आचार्य विनोबा भावे जैसे विद्वानों द्वारा अत्यधिक प्रशंसित और सराहा गयाय इसकी मान्यता में उन्हें वेदमूर्ति की विशिष्ट उपाधि प्रदान की गई।

लोगों के आधुनिक मनोविज्ञान को समझते हुए, और वर्तमान समय में, पुराणों में चित्रित पौराणिक पात्रों और जीवन की पृष्ठभूमि की गैर–प्रासंगिकता को पहचानते हुए, उन्होंने कथा और संवाद शैली में प्रज्ञा पुराण लिखा। प्राचीन पुराण आधुनिक युग के लिए प्रासंगिक व्यावहारिक मार्गदर्शन के साथ सुखी, प्रगतिशील और आदर्श जीवन के शाश्वत सिद्धांतों का उपदेश देते हैं।

उन्होंने मानव जीवन के लगभग सभी पहलुओं पर लगभग 3200 किताबें लिखीं, चाहे वह आध्यात्मिकता के सूक्ष्म विज्ञान के गूढ़ पहलुओं की व्याख्या हो, मस्तिष्क और चेतना पर शोध निर्देश हों, बाल मनोविज्ञान और पारिवारिक संस्थानों पर चर्चा हो, मानसिक, भावनात्मक और शारीरिक पर दिशानिर्देश हों। स्वास्थ्य, और दैनिक जीवन में प्रसन्नचित्त रवैया।

उनके प्रवचनों में वाक्पटुता की ऐसी ही पूर्णता प्रकट होती थी। कहा जाता है कि उनके भाषणों में भाषा की सरलता और श्रोताओं के साथ संबंध स्थापित करने की उनकी क्षमता का श्रोता के मन पर सम्मोहक प्रभाव पड़ता था। उनके चरित्र की आध्यात्मिक चमक और अखंडता, उनके द्वारा प्रचारित सिद्धांतों के साथ उनके कार्यों की दोषरहित समकालिकता और उनकी भावनाओं की पवित्रता ने उनकी कलम और आवाज की प्रेरक शक्ति को बढ़ा दिया।

8.4.5 युग निर्माण योजना के सूत्रधार (एक वैश्विक आंदोलन)–

24 महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर पं. श्रीराम शर्मा ने 1953 में मथुरा, उत्तर प्रदेश, भारत में गायत्री तपोभूमि की स्थापना की। उन्होंने 1958 में एक भव्य 1008 कुंडी यज्ञ का आयोजन किया, जिसने नैतिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक शोधन के लिए एक वैश्विक आंदोलन, युग निर्माण योजना शुरू करने के लिए आधार के रूप में कार्य किया। पुनर्निर्माण. इस आंदोलन का उद्देश्य मानव जाति के व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक मूल्यों में सुधार करना और बेहतर कल के लिए नैतिकता और सामाजिक संरचना की वर्तमान विचारधाराओं और अवधारणाओं को बदलना है।

मथुरा में बड़े पैमाने पर यज्ञों के प्रदर्शन सहित विभिन्न गतिविधियों के माध्यम से, आचार्यजी ने समर्पित पुरुषों और महिलाओं की एक टीम इकट्ठा की। इस प्रकार गायत्री परिवार नामक संगठन का जन्म हुआ।

युग निर्माण योजना के तहत प्रक्षेपित योजनाओं के अनुसार, मिशन ने मानव जीवन के व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक पहलुओं के उत्थान में योगदान दिया है। इसकी प्रमुख गतिविधियों में छोटे और बड़े पैमाने पर गायत्री योजनाओं और लोगों की स्वैच्छिक भागीदारी के साथ सामाजिक परिवर्तन की सामूहिक परियोजनाओं के माध्यम से सांस्कृतिक मूल्यों पर जन जागरूकता और शिक्षा शामिल है। दहेज और फिजूलखर्ची के बिना आदर्श विवाहों का प्रचार, विशेषकर भारतीय संदर्भ में, एक महत्वपूर्ण और चलन स्थापित करने वाली उपलब्धि रही है। अन्य उपलब्धियों में महिलाओं की सामाजिक स्थिति का उत्थान और गांवों का एकीकृत और आत्मनिर्भर विकास शामिल है।

8.4.6 शान्तिकुञ्ज एवं ब्रह्मवर्चस् की स्थापना–

वर्तमान समय की महती आवश्यकता के अनुरूप उन्होंने ऋषियों की शिक्षाओं को व्यवहार में लाने हेतु शान्तिकुञ्ज को आध्यात्मिक केन्द्र के रूप में विकसित किया। उन्होंने हरिद्वार में ब्रह्मवर्चस् अनुसंधान संस्थान की स्थापना की, जो विज्ञान और धर्म के अंतर–साम्य का केंद्र था। ब्रह्मवर्चस अनुसंधान संस्थान की स्थापना का मुख्य उद्देश्य प्राचीन भारतीय योग दर्शन को विज्ञान और जीवन जीने की कला के रूप में स्थापित करना है।

आचार्यजी ने वैदिक युग के अग्रणी ऋषियों के सुधारात्मक और रचनात्मक प्रयासों के एक साथ पुनर्जागरण और विस्तार के माध्यम से ऋषि संस्कृति के पुनरुत्थान का बीड़ा उठाया। उन्होंने शेष विश्व के लिए भारत की दैवीय संस्कृति के अमर योगदान की समीक्षा की और गायत्री परिवार की अनेक गतिविधियों के माध्यम से भारतीय संस्कृति के मूलभूत तत्वों और इसके दैवीय स्वरूप की जड़ों को नई वैज्ञानिक रोशनी में पोषित और पुनरू स्थापित करने का प्रयास किया।

भारतीय संस्कृति और धार्मिक दर्शन के अपने गहन अध्ययन के एक भाग के रूप में, उन्होंने तीर्थयात्रा के सामाजिक और मनोवैज्ञानिक महत्व को फिर से खोजा। उन्होंने सिखाया कि कैसे प्राचीन गौरव और तीर्थों (तीर्थयात्रा के पवित्र स्थानों) के वास्तविक उद्देश्य को वर्तमान समय में जनता के कल्याण के लिए पुनर्जीवित किया जा सकता है।

शांतिकुंज के तत्वावधान में 2002 में शुरू की गई देव संस्कृति विश्वविद्यालय की स्थापना उनकी दृष्टि के अनुसार दिव्य भारतीय संस्कृति के पुनरुद्धार का एक साधन है।

8.4.7 वैज्ञानिक अध्यात्म के जनक–

पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य का मानना था कि आधुनिक मनुष्य को प्राचीन आध्यात्मिकता द्वारा संरक्षित जीवन मूल्यों को स्वीकार करने के लिए तब तक राजी नहीं किया जा सकता जब तक कि ये व्यक्ति और समाज के कल्याण के लिए वैज्ञानिक रूप से व्यवहार्य साबित न हो जाएं। पिछली सहस्राब्दी में बौद्धिक और वैज्ञानिक विकास की प्रवृत्तियों और धर्म और संस्कृति में लगभग एक साथ गिरावट को देखते हुए, यह वास्तव में एक कठिन कार्य था, जिसके परिणामस्वरूप मानव जीवन में आध्यात्मिकता की लगभग पूरी तरह से उपेक्षा हुई और अंध विश्वास, गलत धारणाएं पैदा हुईं। और पूर्वाग्रह. 1979 में शांतिकुंज के पास उनके द्वारा स्थापित ब्रह्मवर्चस् अनुसंधान संस्थान इस बात का जीवंत उदाहरण है कि वैज्ञानिक आध्यात्मिकता के विचार को आधुनिक प्रयोगशालाओं में कैसे कार्यान्वित और शोधित किया जा सकता है।

8.4.8 नये युग की शुरुआत–

1984–1986 के दौरान, उन्होंने सूक्ष्मीकरण का अनूठा आध्यात्मिक प्रयोग किया, जिसका अर्थ है महत्वपूर्ण शक्ति और शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक ऊर्जा का उच्चीकरण। उन्होंने दुनिया के भविष्य पर प्रकाश डालने और 21वीं सदी के दौरान सत्य के नए युग की शुरुआत का संदेश देने वाली 40 पुस्तकों का एक विशेष सेट लिखा (जिसे क्रांतिकारी साहित्य या क्रांतिधर्मी साहित्य कहा जाता है)।

आचार्यजी का निधन गायत्री जयंती (2 जून) 1990 को हुआ। 1991 में भारत ने उनके सम्मान में श्री राम शर्मा आचार्य अंकित एक डाक टिकट जारी किया।

गुरुदेव के बाद पूज्य माता भगवती देवी ने अश्वमेध यज्ञों की शृंखला का मार्गदर्शन किया, जिसने एक सहस्राब्दी के परिवर्तन और एक युग के परिवर्तन के दशक के महत्वपूर्ण परिवर्तन के समय में मिशन के वैश्विक विस्तार की गति को तेज कर दिया। 19 सितंबर 1994 को उनकी उन्होंने सांसारिक देह का त्याग कर सूक्ष्म में विलय हो गए।

8.4.9 आचार्य श्री का यौगिक योगदान–

श्रीराम शर्मा आचार्य भक्तियोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग आदि सभी योग पद्धितियों को सम्मिलित रूप प्रदान करते हुए समग्र योग के माध्यम से आने वाले सभी साधकों को यौगिक जीवन जीने की ओर अग्रसर करते रहे। माँ गायत्री की भक्ति के माध्यम से भक्ति योग, प्रवचनों एवं गोष्ठियों के माध्यम से ज्ञान योग की अविरल धारा इनके माध्यम से बहती रही जो आज भी किसी न किसी रूप में सुनी सुनाई जाती है।

8.4.10 प्रज्ञायोग, आत्म बोध तत्वबोध साधना–

समाज को भगवान मानकर उसकी सेवा में निष्काम भाव से साधकों को जुटाने का उनका प्रयास कर्मयोग का ही व्यावहारिक स्वरूप है। शारीरिक मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य हेतु प्रज्ञा योग नामक योग

पद्धति की शुरुआत इनके माध्यम से हुई। इसके अन्तर्गत शारीरिक स्वास्थ्य हेतु सोलह आसनों का समावेश है, साथ ही मानसिक आध्यात्मिक स्वास्थ्य हेतु आत्मबोध एवं तत्व बोध की साधना आती है। सूर्य ध्यान प्राणायाम, प्राणाकर्षण प्राणायाम और मंत्रयोग इनके माध्यम से बताई गई सर्वश्रेष्ठ साधना पद्धति है।

8.4.11 प्रमुख योग पर आधारित पुस्तकें–

4 वेदों, 108 उपनिषदों, 6 दर्शनों, 18 पुराणों, योगवासिष्ठ और विभिन्न अरण्यकों और ब्राह्मणों के साथ 3200 पुस्तको में अनेक पुस्तके योग साधना पर लिखी गई जिनमे से प्रमुख पुस्तके निम्न लिखित है। योग वाशिष्ठ, सांख्य योग दर्शन, यम और नियम, प्राणायाम प्रत्याहार, धारणा ध्यान समाधि, प्रज्ञा योग व्यायाम, आसन प्राणायाम बंध मुद्रा, पंचकोश ध्यान ,प्रज्ञायोग की सुगम साधना,साकार और निराकार ध्यान, तप और योग का मार्मिक पक्ष, ध्यान योग की साधना, प्राणायाम से आधी व्याधि निवारण, कुंडलनी शक्ति और उसकी संसिद्धि, नांद ब्रह्म की साधना नादयोग, प्राण चिकित्सा विज्ञान

अखंड ज्योति और युगनिर्माण योजना मासिक पत्रिका में योग के लेख–

2 जून 1990 (गायत्री जंयती) को महाप्रयाण से पूर्व उन्होंने विश्व भर में योग अध्यात्म की एक विलक्षण एवं अद्‌भुत धारा का संचार कर गये। आचार्य के निर्देशन एवं सूक्ष्म संरक्षण में विनिर्मित देव संस्कृति विश्वविद्यालय एवं ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान के माध्यम से योग अध्यात्म के क्षेत्र में अध्ययन एवं अनुसंधान का क्रम बड़े ही आकर्षक तरीके से चल रहा है। देश भर से एवं भारत के बाहर के देशों से आए छात्र–छात्राएं एवं अनुसंधान कर्ता यहाँ अपने अध्ययन एवं शोध के साथ नैतिक चारित्रिक निर्माण के रहस्य भी जानते हैं तथा यहाँ एक अलौकिक वातावरण में वास कर राष्ट्र सेवा– समाज सेवा हेतु संकल्पित होकर जाते हैं। वेद, दर्शण, भारतीय संस्कृति योग विज्ञान, एवं वैज्ञानिक अध्यात्मवाद के साथ–साथ आयुर्वेद, ज्योतिष एवं प्रबंधन जैसे व्यावहारिक विषयों में रुचि रखने वालों के लिए यह विश्वविद्यालय आज भी नालंदा– तक्षशिला जैसे विश्वविद्यालयों की कमी पूरा करने को कृत्संकल्प है।

8.5 परमहंस योगानंद

योगानंद का जन्म भारत के उत्तर प्रदेश के गोरखपुर में एक धर्मनिष्ठ परिवार में हुआ था। उनके छोटे भाई सानंद के अनुसार, शुरुआती वर्षों से ही मुकुंद की आध्यात्मिकता के प्रति जागरूकता और अनुभव सामान्य से कहीं अधिक था। अपनी युवावस्था में उन्होंने भारत के कई हिंदू साधु–संतों से संपर्क किया , इस उम्मीद में कि उन्हें अपनी आध्यात्मिक खोज में मार्गदर्शन करने के लिए एक प्रबुद्ध शिक्षक मिलेगा।

विभिन्न संतों के प्रति योगानंद की खोज अधिकतर तब समाप्त हुई जब वे 1910 में 17 वर्ष की आयु में अपने गुरु , स्वामी युक्तेश्वर गिरि से मिले । उन्होंने युक्तेश्वर के साथ अपनी पहली मुलाकात को कई जन्मों तक चले रिश्ते की पुनः जागृति के रूप में वर्णित किया।

हमने मौन की एकता में प्रवेश किया शब्द अत्यंत तुच्छ अतिश्योक्ति लग रहे थे। गुरु के हृदय से शिष्य तक ध्वनिरहित मंत्रोच्चारण में वाक्पटुता प्रवाहित होती थी। अचूक अंतर्दृष्टि के साथ मैंने महसूस किया कि मेरे गुरु भगवान को जानते थे, और मुझे उनके पास ले जाएंगे। इस जीवन का अंधकार जन्मपूर्व यादों की एक न सुबह में गायब हो गया। नाटकीय समय! अतीत, वर्तमान और भविष्य इसके साइकिलिंग दृश्य हैं। यह पहला सूरज नहीं था जिसने मुझे इन पवित्र चरणों में पाया। बाद में युक्तेश्वर ने योगानंद को सूचित किया कि उन्हें महावतार बाबाजी ने एक विशेष उद्देश्य के लिए उनके पास भेजा था।

जून 1915 में स्कॉटिश चर्च कॉलेज, कलकत्ता से कला में इंटरमीडिएट परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद, उन्होंने सेरामपुर कॉलेज से वर्तमान बैचलर ऑफ आर्ट्स या बीए (जिसे उस समय एबी कहा जाता था) के समान डिग्री के साथ स्नातक की उपाधि प्राप्त की। कॉलेज में दो संस्थाएँ हैं, एक सेरामपुर कॉलेज (विश्वविद्यालय) के सीनेट के एक घटक कॉलेज के रूप में और दूसरा कलकत्ता विश्वविद्यालय के एक संबद्ध कॉलेज के रूप में। इससे उन्हें सेरामपुर में युक्तेश्वर के आश्रम में समय बिताने की अनुमति मिल गई। 1915 में, उन्होंने मठवासी स्वामी संप्रदाय में औपचारिक प्रतिज्ञा ली और स्वामी योगानंद गिरि बन गए। 1917 में, योगानंद ने पश्चिम बंगाल के दिहिका में लड़कों के लिए एक स्कूल की स्थापना की, जिसमें आधुनिक शैक्षिक तकनीकों को योग प्रशिक्षण और आध्यात्मिक आदर्शों के साथ जोड़ा गया। एक साल बाद, स्कूल रांची में स्थानांतरित हो गया। यह स्कूल बाद में योगदा सत्संग सोसाइटी ऑफ इंडिया बन गया, जो योगानंद के अमेरिकी संगठन, सेल्फ–रियलाइजेशन फेलोशिप की भारतीय शाखा है ।

8.5.1 अमेरिका प्रवास–

1920 में, योगानंद बोस्टन में आयोजित धार्मिक उदारवादियों की अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस में भारत के प्रतिनिधि के रूप में सिटी ऑफ स्पार्टा जहाज पर सवार होकर संयुक्त राज्य अमेरिका गए। उसी वर्ष उन्होंने भारत की प्राचीन प्रथाओं और योग के दर्शन और ध्यान की परंपरा पर अपनी शिक्षाओं को दुनिया भर में प्रसारित करने के लिए सेल्फ–रियलाइजेशन फेलोशिप (एसआरएफ) की स्थापना की।अगले कई वर्षों तक, उन्होंने पूर्वी तट पर व्याख्यान दिया और पढ़ाया और 1924 में एक क्रॉस–कॉन्टिनेंटल भाषण यात्रा पर निकले। उनके व्याख्यानों में हजारों लोग आते थे। इस दौरान उन्होंने कई सेलिब्रिटी अनुयायियों को आकर्षित किया, जिनमें सोप्रानो अमेलिटा गैली–कर्सी , टेनर व्लादिमीर रोजिंग और मार्क ट्वेन की बेटी क्लारा क्लेमेंस गैब्रिलोवित्च शामिल थे। अगले वर्ष, उन्होंने लॉस एंजिल्स, कैलिफोर्निया में सेल्फ–रियलाइजेशन फेलोशिप के लिए एक अंतर्राष्ट्रीय केंद्र की स्थापना की, जो उनके बढ़ते काम का आध्यात्मिक और प्रशासनिक केंद्र बन

गया। योगानंद योग के पहले आध्यात्मिक गुरु थे जिन्होंने अपने जीवन का एक बड़ा हिस्सा अमेरिका में बिताया। वह 1920–1952 तक वहां रहे, 1935–1936 में उनकी लंबी विदेश यात्रा बाधित हुई, जो मुख्य रूप से भारत में अपने गुरु से मिलने के लिए थी, हालांकि उन्होंने अन्य जीवित पश्चिमी संतों जैसे थेरेसी न्यूमैन , कोनेर्सरेथ के कैथोलिक कलंकवादी और आध्यात्मिक स्थानों की यात्राएं की।

8.5.2 युक्तेश्वर यात्रा–

1935 में, वह युक्तेश्वर की यात्रा करने और भारत में अपने योगदा सत्संग कार्य को स्थापित करने में मदद करने के लिए भारत लौट आये । इस यात्रा के दौरान, जैसा कि उनकी आत्मकथा में बताया गया है, उनकी मुलाकात महात्मा गांधी से हुई, और उन्होंने उन्हें क्रिया योग की मुक्ति तकनीक में दीक्षित किया क्योंकि गांधी ने लाहिड़ी महाशय के क्रिया योग को प्राप्त करने में रुचि व्यक्त की थीय आनंदमयी माँ य प्रसिद्ध भौतिक विज्ञानी चन्द्रशेखर वेंकट रमन और युक्तेश्वर के गुरु लाहिड़ी महाशय के कई शिष्य । भारत में रहते हुए, युक्तेश्वर ने योगानंद को परमहंस की मठवासी उपाधि दी । परमहंस का अर्थ है ष्सर्वोच्च हंसष और यह सर्वोच्च आध्यात्मिक उपलब्धि का संकेत देने वाली उपाधि है। 1936 में, जब योगानंद कलकत्ता के दौरे पर थे, युक्तेश्वर ने पुरी शहर में महासमाधि प्राप्त की।

8.5.3 अमेरिका से वापसी, 1936–

अमेरिका लौटने के बाद, योगानंद ने दक्षिणी कैलिफोर्निया में व्याख्यान देना, लिखना और चर्च स्थापित करना जारी रखा। उन्होंने कैलिफोर्निया के एनसिनिटास में एसआरएफ आश्रम में निवास किया , जो उनके शिष्य राजर्षि जनकानंद की ओर से एक आश्चर्यजनक उपहार था । इसी आश्रम में योगानंद ने अपनी प्रसिद्ध योगी आत्मकथा और अन्य रचनाएँ लिखीं। साथ ही इस समय उन्होंने सेल्फ–रियलाइजेशन फेलोशिपध्योगदा सत्संग सोसाइटी ऑफ इंडिया के आध्यात्मिक और मानवीय कार्यों के लिए एक स्थायी आधार बनाया।

उनके जीवन के अंतिम चार वर्ष मुख्य रूप से उनके लेखन को समाप्त करने और पिछले वर्षों में लिखी गई पुस्तकों, लेखों और पाठों को संशोधित करने के लिए कैलिफोर्निया के ट्वेंटिनाइन पाम्स में उनके रेगिस्तानी आश्रम में उनके कुछ आंतरिक शिष्यों के साथ एकांत में बिताए गए थे । इस अवधि के दौरान उन्होंने कुछ साक्षात्कार और सार्वजनिक व्याख्यान दिये। उन्होंने अपने करीबी शिष्यों से कहा, मैं अपनी कलम को दूसरों तक पहुंचाने के लिए अब और भी बहुत कुछ कर सकता हूं।

8.5.4 मृत्यु–

अपनी मृत्यु से पहले के दिनों में, योगानंद ने संकेत देना शुरू कर दिया था कि अब उनके दुनिया छोड़ने का समय आ गया है।

7 मार्च 1952 को, उन्होंने अमेरिका में भारत के राजदूत बिनय रंजन सेन और उनकी पत्नी के लिए लॉस एंजिल्स के बिल्टमोर होटल में रात्रिभोज में भाग लिया। भोज के समापन पर, योगानंद ने भारत और अमेरिका, विश्व शांति और मानव प्रगति में उनके योगदान और उनके भविष्य के सहयोग के बारे में बात की, एक संयुक्त विश्व के लिए अपनी आशा व्यक्त की जिसमें सर्वोत्तम गुणों का संयोजन होगा। कुशल अमेरिकाष और आध्यात्मिक भारत। एक प्रत्यक्षदर्शी के अनुसार – दया माता , योगानंद की प्रत्यक्ष शिष्या, जो 1955–2010 तक सेल्फ–रियलाइजेशन फेलोशिप की प्रमुख थीं – जैसे ही योगानंद ने अपना भाषण समाप्त किया, उन्होंने अपनी कविता माई इंडिया पढ़ी, इन शब्दों के साथ समापन जहां गंगा, जंगल, हिमालय की गुफाएं और मनुष्य भगवान का सपना देखते हैं – मैं पवित्र हूं मेरे शरीर ने उस घास को छू लिया। जैसे ही उन्होंने ये शब्द बोले, उन्होंने अपनी आँखें कूटस्थ केंद्र (अजना चक्र) की ओर उठाईं, और उनका शरीर फर्श पर गिर गया। अनुयायियों का कहना है कि उन्होंने महासमाधि में प्रवेश किया।

उनकी अंत्येष्टि सेवा, जिसमें सैकड़ों लोग उपस्थित थे, लॉस एंजिल्स में माउंट वाशिंगटन के ऊपर एसआरएफ मुख्यालय में आयोजित की गई थी। सेल्फ–रियलाइजेशन फेलोशिप के नए अध्यक्ष, राजर्षि जनकानंद ने , शरीर को भगवान को सौंपने का एक पवित्र अनुष्ठान किया। योगानंद के अवशेष कैलिफोर्निया के ग्लेनडेल में ग्रेट मकबरे के फॉरेस्ट लॉन मेमोरियल पार्क में रखे गए हैं (आमतौर पर यह आगंतुकों के लिए बंद रहता है लेकिन योगानंद की समाधि तक पहुंचा जा सकता है)।

8.5.5 शिक्षाएँ –

1917 में परमहंस योगानंद ने लड़कों के लिए कैसे रहें स्कूल की स्थापना के साथ अपने जीवन का काम शुरू किया, जहां आधुनिक शैक्षिक तरीकों को योग प्रशिक्षण और आध्यात्मिक आदर्शों की शिक्षा के साथ जोड़ा गया था। 1920 में उन्हें बोस्टन में आयोजित धार्मिक उदारवादियों की अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस में भारत के प्रतिनिधि के रूप में सेवा करने के लिए आमंत्रित किया गया था। धर्म के विज्ञान पर कांग्रेस में उनके संबोधन का उत्साहपूर्वक स्वागत किया गया। अगले कई वर्षों तक उन्होंने संयुक्त राज्य भर में व्याख्यान दिया और पढ़ाया। उनके प्रवचनों ने यीशु मसीह की मूल शिक्षाओं और भगवान कृष्ण द्वारा सिखाए गए मूलयोग की एकता की शिक्षा दी।

1920 में उन्होंने सेल्फ–रियलाइजेशन फेलोशिप की स्थापना की और 1925 में लॉस एंजिल्स, कैलिफोर्निया, अमेरिका में एसआरएफ का अंतर्राष्ट्रीय मुख्यालय स्थापित किया।

अपने प्रकाशित कार्य, द सेल्फ–रियलाइजेशन फेलोशिप लेसन्स में, योगानंद ईश्वर–प्राप्ति के उच्चतम योग विज्ञान के अभ्यास में अपना गहन निर्देश देते हैं। वह प्राचीन विज्ञान क्रिया योग के विशिष्ट सिद्धांतों और ध्यान तकनीकों में सन्निहित है। योगानंद ने अपने छात्रों को अंध विश्वास के विपरीत सत्य के प्रत्यक्ष अनुभव की आवश्यकता बताई। उन्होंने कहा कि धर्म का सच्चा आधार विश्वास नहीं है, बल्कि सहज अनुभव है।

अंतर्ज्ञान आत्मा की ईश्वर को जानने की शक्ति है। यह जानने के लिए कि वास्तव में धर्म क्या है, व्यक्ति को ईश्वर को जानना चाहिए।

पारंपरिक हिंदू शिक्षाओं को दोहराते हुए, उन्होंने सिखाया कि संपूर्ण ब्रह्मांड ईश्वर की ब्रह्मांडीय चलचित्र है, और व्यक्ति दैवीय नाटक में केवल अभिनेता हैं जो पुनर्जन्म के माध्यम से भूमिकाएँ बदलते हैं । उन्होंने सिखाया कि मानव जाति की गहरी पीड़ा फिल्म के निर्देशक या भगवान के बजाय किसी की वर्तमान भूमिका के साथ बहुत निकटता से जुड़ने में निहित है।

उन्होंने लोगों को उस समझ को प्राप्त करने में मदद करने के लिए क्रिया योग और अन्य ध्यान अभ्यास सिखाए , जिसे उन्होंने आत्म–साक्षात्कार कहा।

आत्म–बोध यह जानना है – शरीर, मन और आत्मा में – कि हम ईश्वर की सर्वव्यापकता के साथ एक हैंय कि हमें यह प्रार्थना करने की आवश्यकता नहीं है कि यह हमारे पास आए, कि हम हर समय केवल इसके निकट न रहें, बल्कि यह कि ईश्वर की सर्वव्यापकता ही हमारी सर्वव्यापकता हैय और यह कि हम अब भी उतने ही उसके अंश हैं जितना कभी होंगे। हमें बस अपनी जानकारी में सुधार करना है।

क्रिया योग

8.5.6 मुख्य लेखरू क्रिया योग–

क्रिया योग का विज्ञान योगानंद की शिक्षाओं का आधार है। क्रिया योग एक निश्चित क्रिया या संस्कार (क्रिया) के माध्यम से अनंत के साथ मिलन (योग) है। क्रिया की संस्कृत धातु क्रिया है , करना, कार्य करना और प्रतिक्रिया करना। क्रिया योग योगानंद के गुरु वंश के माध्यम से पारित हुआ – महावतार बाबाजी ने लाहिड़ी महाशय को क्रिया योग सिखाया , जिन्होंने इसे अपने शिष्य, योगानंद के गुरु, युक्तेश्वर गिरि को सिखाया।

5.5.7 एक योगी की आत्मकथा–

योगी की आत्मकथा के पहले संस्करण

1946 में, योगानंद ने अपनी जीवन कहानी, एक योगी की आत्मकथा प्रकाशित की । तब से इसका 45 भाषाओं में अनुवाद किया जा चुका है। 1999 में, फिलिप जलेस्की और हार्पर कॉलिन्स प्रकाशकों द्वारा बुलाए गए आध्यात्मिक लेखकों के एक पैनल द्वारा इसे 20वीं सदी की 100 सबसे महत्वपूर्ण आध्यात्मिक पुस्तकों में से एक नामित किया गया था।योगानंद की किताबों में ऑटोबायोग्राफी ऑफ ए योगी सबसे लोकप्रिय है। अमेरिकन वेदा लिखने वाले फिलिप गोल्डबर्ग के अनुसार, सेल्फ–रियलाइजेशन फेलोशिप, जो योगानंद की विरासत का प्रतिनिधित्व करती है, का नारा द बुक दैट चेंज्ड द लाइव्स ऑफ मिलियंस का उपयोग करना उचित है। इसकी चार मिलियन से अधिक प्रतियां बिक चुकी हैं। और गिनती। 2006 में, प्रकाशक, सेल्फ–रियलाइजेशन

फेलोशिप ने योगी की आत्मकथा की 60वीं वर्षगांठ को उस व्यक्ति की विरासत को बढ़ावा देने के लिए डिजाइन की गई परियोजनाओं की एक श्रृंखला के साथ सम्मानित किया, जिसे हजारों शिष्य अभी भी मास्टर के रूप में संदर्भित करते हैं।

योगी की आत्मकथा में आत्मज्ञान के लिए योगानंद की आध्यात्मिक खोज का वर्णन किया गया है, इसके अलावा थेरेसी न्यूमैन , आनंदमयी मां , विशुद्धानंद परमहंस , मोहनदास गांधी , साहित्य में नोबेल पुरस्कार विजेता रवींद्रनाथ टैगोर , प्रसिद्ध पादप वैज्ञानिक लूथर बरबैंक (पुस्तक है) जैसी उल्लेखनीय आध्यात्मिक हस्तियों के साथ मुठभेड़ का वर्णन किया गया है। लूथर बरबैंक, एक अमेरिकी संत), प्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक सर जगदीश चंद्र बोस और भौतिकी में नोबेल पुरस्कार विजेता सर सीवी रमन की स्मृति को समर्पित । इस पुस्तक का एक उल्लेखनीय अध्याय द लॉ ऑफ मिरेकल्स है, जहां वह प्रतीत होने वाले चमत्कारी कारनामों के लिए वैज्ञानिक स्पष्टीकरण देता है। वह लिखते हैं मनुष्य की शब्दावली में असंभव शब्द कम प्रमुख होता जा रहा है।

आत्मकथा स्टीव जॉब्स (1955–2011), सह–संस्थापक, पूर्व अध्यक्ष और ऐप्पल इंक के मुख्य कार्यकारी अधिकारी सहित कई लोगों के लिए प्रेरणा रही है। स्टीव जॉब्स ए बायोग्राफी पुस्तक में लेखक लिखते हैं कि एक यात्रा की तैयारी में , श्री जॉब्स ने अपने iPad2 पर, एक योगी की आत्मकथा , ध्यान और आध्यात्मिकता की मार्गदर्शिका डाउनलोड की, जिसे उन्होंने पहली बार एक किशोर के रूप में पढ़ा था, फिर भारत में दोबारा पढ़ा और तब से वर्ष में एक बार पढ़ा।

8.5.8 भारत का स्मारक टिकट 1977–

भारत ने 1977 में परमहंस योगानंद के सम्मान में एक स्मारक डाक टिकट जारी किया। डाक विभाग ने योगानंद के आध्यात्मिक उत्थान में उनके दूरगामी योगदान के सम्मान में उनके निधन की पच्चीसवीं वर्षगांठ के अवसर पर एक स्मारक डाक टिकट जारी किया। मानवता। भगवान के प्रति प्रेम और मानवता की सेवा के आदर्श को परमहंस योगानंद के जीवन में पूर्ण अभिव्यक्ति मिली। हालांकि उनके जीवन का अधिकांश हिस्सा भारत के बाहर बीता, फिर भी वह हमारे महान संतों के बीच अपना स्थान रखते हैं। उनका काम लगातार बढ़ रहा है और अधिक से अधिक चमकते हुए, हर जगह लोगों को आत्मा की तीर्थयात्रा के मार्ग पर आकर्षित करते हुए।

8.5.9 प्रमुख शिष्य–

योगमाता, तारा माता, ज्ञान माता, मिल्ड्रेड (मदर) हैमिल्टन, दुर्गा मातामिल्ड्रेड (मदर) हैमिल्टन , कमला सिल्वा, आनंद माता दया माता, भक्तानंद, श्रद्धा माता, मुक्ति माता, मिनोट और मिल्ड्रेड लुईस

8.6 अभ्यास प्रश्न

- सही विकल्प चुनिये –

क. महेश योगी जी का जन्म माना जाता है।

1. 1920
2. 1930
3. 1927
4. 1917

ख. पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी का जन्म स्थान

1. मथुरा
2. आवलखेड़ा (आगरा)
3. वाराणसी
4. लखनऊ

ग. स्वामी राम हिमालय जी ने अमेरिका में स्थापना की

1. हिमालयन इंस्टीट्यूट
2. शांति निकेतन
3. पतंजलि योगपीठ
4. शांतिकुंज

घ. महेश योगी ने किस ध्यान प्रक्रिया को विस्तारित किया

1. हैप्पीनेस मेडिटेशन
2. ट्रान्सेंडैंटल मेडिटेशन
3. स्प्रिचुअल मेडिटेशन
4. इनारसोल मेडिटेशन

ड. परमहंस योगानंद जी द्वारा लिखी आत्मकथा

1. योगी की यात्रा

2. योगी कथामृत

3. योगी का जीवन

4. योगी की जीवन लीला

8.7 सारांश

प्रिय पाठको हमने इस इकाई में स्वामी राम (हिमालय), महर्षि महेश योगी, पं० श्री रामशर्मा आचार्य, परमहंस योगानन्द आदि योगियों के जीवन परिचय और उनके यौगिक योगदान का अध्यन किया योग के अत्यन्त गूढ़ रहस्यों को हम सभी तक सरल रूप में प्रस्तुत करने वाले योगियों का जीवन कैसा था? किस प्रकार से उन्हें योग का ज्ञान प्राप्त हुआ? उनकी साधना कैसी थी? किस प्रकार की घटना से उनके जीवन में परिवर्तन आया? किस योगी को कितने वर्षों में सिद्धि प्राप्त हुई? समकालीन होते हुए भी उनकी साधना में किस प्रकार के भेद थे? किस योगी की साधना आधुनिक युग में सबसे ज्यादा प्रचलित है? आदि प्रश्नों के सही उत्तर आपने इस इकाई में प्राप्त किया होगा।

8.8 शब्दावली

- महाप्रयाण – परलोक गमनय मृत्यु मौत।
- प्रासंगिक – किसी घटना या प्रसंग से संबंध रखने वाला
- प्रतिबद्धता– वचन बद्ध
- पुनरुद्धार – दोबारा निर्मित किया गया
- विशुद्ध – शुद्ध, खरा
- संकलित – एकत्रित किया हुआ
- अतिश्योक्ति – बात को बढ़ा चढ़ा कर बताना
- आत्म – साक्षात्कार स्वयं के बारे में जानना
- अंतर्ज्ञान – अपने अंदर का ज्ञान , आध्यात्मिक ज्ञान

8.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

- हिमालय के सिद्ध योगीरू योग सिद्धियाँ और विज्ञान श्री स्वामी राम,हिमालय संस्थान

- महर्षि महेश योगी (एक वैज्ञानिक संत) महर्षि महेश योगी (एक वैज्ञानिक संत) , स्टैंडर्ड पब्लिशर्स इंडिया
- चेतना की शिखर यात्रा, श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट, शांतिकुंज, हरिद्वार, उत्तराखंड
- सुनसान के सहचर, युग निर्माण योजना ,मथुरा
- योगी कथामृत,योगदा सत्संग सोसाइटी ऑफ इण्डिया द्वारा प्रकाशित

8.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. स्वामी राम हिमालयन जी के यौगिक योगदान की विवचना कीजिए।
2. श्री महेश योगी के योग संबंधी विचारों का विवेचना कीजिए।
3. विश्व मानवता के कल्याण में स्वामी पंडित श्रीराम शर्मा जी के योगदान को स्पष्ट कीजिए।
4. पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य के योग के दर्शन को स्पष्ट कीजिए।
5. परमहंस योगानंद जी के व्यक्तित्त्व एवं कृतित्व का विवेचन कीजिए।
6. परमहंस योगानंद जी का जीवन परिचय देते हुए योग के क्षेत्र में उनके योगदान पर प्रकाश डालिये

इकाई 9 – योगगुरु अयंगर, श्री श्री रवि शंकर, स्वामी रामदेव, स्वामी निरंजनानंद सरस्वती

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 बेल्लूर कृष्णमचारी सुंदरराज अयंगर

- 9.2.1 प्रारंभिक जीवन
- 9.2.2 कृष्णमाचार्य के साथ प्रशिक्षण
- 9.2.3 योगगुरु बी के एस अयंगर का यौगिक योगदान
- 9.2.4 नैतिक और ईमानदार अभ्यास
- 9.2.5 एक विश्व स्तरीय योग शिक्षक
- 9.2.6 एक क्रांतिकारी योग शिक्षक
- 9.2.7 योग पर प्रकाश
- 9.2.8 बेल्लूर ट्रस्ट
- 9.2.9 जीवनकाल उपलब्धियां
- 9.2.10 योग के विज्ञान और कला को पश्चिम में लाना
- 9.2.11 उपचारात्मक एवं चिकित्सीय योग
- 9.2.12 अंत तक योग का विद्यार्थी

9.3 श्री श्री रवि शंकर

- 9.3.1 जीवन
- 9.3.2 दर्शन और शिक्षाएँ
- 9.3.3 विश्व शांति और मानवीय कार्य

9.3.4 अंतरधार्मिक संवाद

9.3.5 सुदर्शन क्रिया

9.3.6 जेल कार्यक्रम

9.3.7 प्राकृतिक आपदाएँ

9.3.8 सामाजिक पहल

9.3.9 नॉनविओ आंदोलन

9.3.10 इंडिया अगेंस्ट करप्शन

9.3.11 व्यवसाय में नैतिकता के लिए विश्व मंच

9.3.12 पुरस्कार और मान्यता

9.3.13 प्रमुख पुस्तकें

9.4 स्वामी रामदेव

9.4.1 बाबा रामदेव की जीवनी

9.4.2 बाबा रामदेव का सेवानिवृत्त जीवन

9.4.3 स्वामी रामदेव का सार्वजनिक जीवन

9.4.4 पतंजलि योगपीठ की स्थापना

9.4.5 भ्रष्टाचार के खिलाफ बाबा रामदेव की लड़ाई

9.4.6 प्रमुख प्रकल्पों की स्थापना

9.4.7 स्वामी रामदेव जी का यौगिक योगदान

9.4.8 आधुनिक युग में सम्पूर्ण विश्व में योग को प्रसार

9.4.9 बाबा रामदेव और अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस

9.4.10 विभिन्न पुरस्कार एवं मान्यतायें

9.5 स्वामी निरंजनानंद सरस्वती

9.5.1 योगाभ्यास में योगदान

9.5.2 योग को सरल सहज स्वरूप के प्रणेता

9.5.3 योग कैप्सूल

9.5.4 पद्मभूषण पुरुस्कार

9.5.5 प्रमुख पुस्तके

9.6 अभ्यास प्रश्न

9.7 सारांश

9.8 शब्दा वली

9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

9.10 निबंधात्मक प्रश्न

9.0 उद्देश्य

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप –

- बेल्लूर कृष्णमचारी सुंदरराज अयंगर के व्यक्तित्व का अध्ययन कर सकेंगे।
- बेल्लूर कृष्णमचारी सुंदरराज अयंगर के व्यक्तित्व का अध्ययन कर सकेंगे।
- श्री श्री रवि शंकर जी के उल्लेखनीय योगदान का वर्णन कर सकेंगे।
- स्वामी रामदेव के आरम्भिक जीवन एवं योग साधना कर अध्ययन सकेंगे।
- विश्व मानवता के लिए श्री श्री रवि शंकर जी द्वारा जो अनुदान प्राप्त हुए, उनका अध्ययन कर सकेंगे।
- स्वामी रामदेव जी के व्यक्तित्व का अध्ययन कर सकेंगे।
- स्वामी निरंजनानंद जी के उल्लेखनीय योगदान का वर्णन कर सकेंगे।
- स्वामी निरंजनानंद के आरम्भिक जीवन एवं योग साधना कर अध्ययन कर सकेंगे।
- पूरे विश्व में श्री श्री रवि शंकर जी द्वारा जो अनुदान प्राप्त हुए, उनका अध्ययन कर सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

प्रिय पाठकों, जैसा कि आप सभी जानते हैं कि भारतभूमि सदा ही ऋषियों, संतों एवं महापुरूषों की जननी रही है। इस धरा ने समय–समय पर ऐसे युगावतारों को जन्म दिया है, जिन्होंने अपने जीवन से समूची मानवजाति में ज्ञान का प्रकाश फैलाया और हमेशा के लिये अमर हो गये।

प्रिय पाठकों, इससे पूर्व की इकाइयों में भी आपने अनेक महान योगियों जैसे योगगुरु अयंगार, श्री श्री रविशंकर, स्वामी रामदेव, स्वामी निरंजनानंद सरस्वती के विषय में अध्ययन करेंगे । प्रस्तुत इकाई में योगियों

की इसी परम्परा को आगे बढ़ाते हुए हम योगगुरु अयंगार, श्री श्री रविशंकर, स्वामी रामदेव, स्वामी निरंजनानंद सरस्वती जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के विषय में विस्तार से चर्चा करेंगे।

9.2 बेल्लूर कृष्णमचारी सुंदरराज अयंगर

पूरे इतिहास में कभी–कभी ऐसे व्यक्ति हुए हैं जिनकी उपलब्धियाँ पूरी दुनिया पर सकारात्मक छाप छोड़ती हैं। बीकेएस अयंगर (1918–2014) ऐसे ही व्यक्ति थे. 2004 में उन्हें टाइम मैगजीन द्वारा दुनिया के सौ सबसे प्रभावशाली लोगों में से एक के रूप में नामित किया गया था। उनके साथी भारतीय, महात्मा गांधी ने घोषणा की, हमें खुद वह बदलाव लाना चाहिए जो हम दुनिया में देखना चाहते हैं और अयंगर अपने आजीवन अभ्यास, अध्ययन और योग के शिक्षण के माध्यम से इसी सिद्धांत के अनुसार जिए। योग के प्रति उनके दृ ष्टिकोण का केवल शारीरिक लचीलेपन या नए युग के अध्यात्मवाद से कोई लेना–देना नहीं था।

9.2.1 प्रारंभिक जीवन–

14 दिसंबर 1918 को दक्षिण भारत के कर्नाटक के छोटे से गांव बेल्लूर में एक गरीब ब्राह्मण परिवार में जन्मे अयंगर की शुरुआत अच्छी नहीं रही। तेरह बच्चों में से ग्यारहवें बच्चे का जन्म उस समय दुनिया भर में फैले इन्फ्लूएंजा से पीड़ित माँ की बीमारी से हुआ था। टाइफाइड, मलेरिया और तपेदिक सहित बचपन की कई बीमारियों के कारण उनकी स्कूली शिक्षा सीमित थी। जब वह नौ वर्ष के थे, तब उनके पिता की मृत्यु हो गई और लगातार खराब स्वास्थ्य, कुपोषण और गरीबी के कारण चौदह वर्ष की आयु में उनकी जीवन प्रत्याशा कम हो गई। वह इतना कठोर था कि जब वह अपने पैर की उंगलियों को छूने के लिए झुकता था, तो उसकी बीच की उंगलियां केवल उसके घुटनों तक पहुंचती थीं। जीवन के अंत में एक आकार और एक प्रक्षेपवक्र थोपना आसान होता है जो उसकी जीवित वास्तविकता को झुठला देता है। संभावनाएँ अयंगर के वयस्क होने तक पहुँचने की थीं, नब्बे की असाधारण उम्र में योग के सबसे महान प्रतिपादक बनने की बात तो छोड़ ही दें जिसे दुनिया ने अभी तक नहीं देखा है।

9.2.2 कृष्णमाचार्य के साथ प्रशिक्षण–

मैसूर में अपने बहनोई और गुरु आदरणीय योगी श्री तिरुमलाई कृष्णमाचार्य के संरक्षण में, युवा अयंगर के पास अपने तत्काल शारीरिक स्वास्थ्य के लिए योग अपनाने के अलावा कोई विकल्प नहीं था। शुरुआत में यह केवल जीवित रहने का सवाल था क्योंकि उनकी प्रशिक्षुता कठोर, समझौता न करने वाली और उग्र थी। 1937 में 18 साल की उम्र में उन्हें अपने परिवार से बहुत दूर पुणे, बंबई के पास, जैसा कि तब कहा जाता था,

भेज दिया गया था। इस समय तक खुद को योग के प्रति समर्पित करने के दृढ़ संकल्प के साथ, अयंगर ने एक व्यक्तिगत दांव लगायाय उन्होंने योग के विषय को समझने या प्रयास में मर जाने की कसम खाई। फिर भी उन्होंने संन्यासी बनने से इनकार कर दिया। इसके बजाय उन्होंने एक साधारण गृहस्थ बने रहना चुना, बाद में शादी की और परिवार का पालन–पोषण किया। दिन में दस घंटे तक अभ्यास करने के कारण उन्हें अपने शिक्षण से बहुत कम आजीविका मिलती थी और अक्सर भूखे रहना पड़ता था। 1938 में उनके अभ्यास की एक फिल्म में पोज के बीच तरल और असाधारण तेज गति को दिखाया गया है।

धीरे–धीरे उन्हें एहसास हुआ कि ऐसा अभ्यास केवल युवा फिट लोगों के लिए ही संभव था और अशुद्धि की ओर प्रवृत्त हुए। इसलिए अयंगर ने प्रत्येक आसन के हर पहलू का पता लगाने के लिए अपने अभ्यास को धीमा करना शुरू कर दिया। यह एक व्यापक जांच की शुरुआत थी जिससे इस विषय में विश्वव्यापी परिवर्तन आएगा।

येहुदी मेनुहिन के साथ दोस्ती और पश्चिम की पहली यात्रा उनके सबसे प्रसिद्ध शिष्यों में से एक विश्व प्रसिद्ध वायलिन वादक येहुदी मेनुहिन थे , जो 1952 में अयंगर के साथ अध्ययन करने आए थे क्योंकि उनका वादन संकट में आ गया था। वे आजीवन मित्र बने रहे और मेनुहिन ने उन्हें पश्चिम में पढ़ाने के लिए आमंत्रित किया। योग के अभ्यास से मिले गहन लाभों की मान्यता में, मेनुहिन ने बाद में अयंगर को ष्मेरे सबसे बड़े वायलिन शिक्षक के रूप में वर्णित किया। 1960 के दशक में एक प्रबुद्ध शिक्षक ने अयंगर को तत्कालीन लंदन शिक्षा प्राधिकरण के लिए योग सिखाने के लिए कहा। यह एक अत्यधिक प्रभावशाली कार्यक्रम साबित हुआ और यूके को भारत के बाहर अयंगर योग के पहले और अभी भी प्रमुख आधार के रूप में स्थापित किया गया।

9.2.3 योगगुरु बी के एस अयंगर का यौगिक योगदान–

राममणि अयंगर मेमोरियल योग संस्थान –

1975 तक अयंगर पुणे में राममणि अयंगर मेमोरियल योग इंस्टीट्यूट (आरआईएमवाईआई) को डिजाइन करने में सक्षम हो गए और उन्होंने अपना खुद का शिक्षण स्थल बनाया, जिसका नाम उनकी पत्नी राममणि के नाम पर रखा गया, जिनकी 1973 में अचानक मृत्यु हो गई थी। तब से लेकर अपनी मृत्यु तक वे यहीं रहे और पढ़ाया। वहां अपने दो बच्चों गीता और प्रशांत के साथ। हाल ही में उनकी पोती अभिजाता ने भी वहां पढ़ाया है, और रिमवाई उस योग के केंद्र में रही है जिसे अयंगर योग के नाम से जाना जाता है। इसके संस्थापक के रूप में, उन्होंने व्यक्तिगत रूप से कठोर और लंबे शिक्षण कार्यक्रम को तैयार किया और उसका निरीक्षण किया, जिसे उनके नाम पर पढ़ाने के इच्छुक छात्रों द्वारा किया जाना था। अब अयंगर योग के कई हजार शिक्षक व्यक्तिगत रूप से और 40 देशों में 1800 से अधिक संस्थानों में काम कर रहे हैं। जब दुनिया भर से मान्यता मिलनी शुरू हुई तो अयंगर को खुशी हुई। विशिष्ट बुद्धि के साथ उन्होंने योग की आकाशीय पहुंच की ओर इशारा किया जब 2001 में एक सितारे का नाम उनके नाम पर रखा गया था।

9.2.4 नैतिक और ईमानदार अभ्यास–

लेकिन उन्होंने कभी किसी सेलिब्रिटी से प्रेम–प्रसंग नहीं किया और न ही किसी प्रकार का पंथ बनाने में उनकी रुचि थी। योग मेरे जीवन का तरीका है, उन्होंने समझाया और जब लोग उनसे सीखने आए, तो उन्होंने उन्हें अपने शिष्य के रूप में स्वीकार किया। उन्होंने हजारों छात्रों और विशेष रूप से उनके नाम पर पढ़ाने वालों से जो मांग की वह एक नैतिक और ईमानदार अभ्यास था। उन्होंने घोषणा की, योग की लोकप्रियता और इसकी शिक्षाओं को फैलाने में मेरी भूमिका मेरे लिए संतुष्टि का एक बड़ा स्रोत है। लेकिन मैं नहीं चाहता कि व्यापक लोकप्रियता अभ्यासकर्ता को जो कुछ देती है उसकी गहराई को ग्रहण कर ले। उन्होंने हमेशा इस बात पर जोर दिया कि योग कठिन परिश्रम होना चाहिए। उनका शिक्षण सटीक और केंद्रित था क्योंकि उन्होंने अपने छात्रों से सर्वश्रेष्ठ प्राप्त किया था।

9.2.5 एक विश्व स्तरीय योग शिक्षक–

लेकिन अयंगर में शरारती हास्य की भावना भी थी, उन्होंने अपने एक मुख्य भाषण में घोषणा की थी कि कैसे लोगों ने सोचा था कि उनके शुरुआती अक्षर बीकेएस (बेल्लूर कृष्णमाकार्य सुंदरजा) वास्तव में उनकी व्यावहारिक शिक्षण पद्धति के कारण बीट, किक और शाउट के लिए हैं। उनके करिश्माई, विश्व स्तरीय शिक्षण को विभिन्न प्रसिद्ध व्यक्तियों से लेकर नियमित छोटे समूहों से लेकर सम्मेलनों तक अच्छी तरह से प्रलेखित किया गया है, जहां उन्होंने मास्टरक्लास में 1000 लोगों को पढ़ाया। उन्होंने अपने बाद के जीवन में 1993 में क्रिस्टल पैलेस, 2005 में एस्टेस पार्क, कोलोराडो में 86 साल की उम्र में बड़े कार्यक्रमों में पढ़ाया, और यहां तक कि 2010 में मॉस्को में और 2011 में बीजिंग में 92 साल की उम्र में कार्यक्रमों के साथ अपने नब्बे के दशक में भी पढ़ाया। चीन में उनके सम्मान में एक स्मारक डाक टिकट जारी किया गया। वह इतनी ऊर्जा और अंतर्दृष्टि के साथ नब्बे के दशक के मध्य तक अध्यापन जारी रख सके, यह उल्लेखनीय और प्रेरणादायक था। उन लाखों और अधिक लोगों के लिए जिन्हें उन्होंने सीधे तौर पर सिखाया है, उनकी शिक्षा में प्रतिभा है। वह अपने छात्रों के बीच गुरुजी के रूप में जाने जाते थे, जो वहां प्रकाश लाते हैं जहां अंधेरा है। उनकी शिक्षा का प्रसार सभी के लिए योग के संभावित महत्व की वास्तविक मौलिक दृष्टि के प्रति एक आजीवन समर्पण था।

9.2.6 एक क्रांतिकारी योग शिक्षक–

निजी तौर पर अयंगर एक पारंपरिक रूप से रूढ़िवादी भारतीय थे, जो अपनी ब्राह्मण विरासत की संस्कृति और आध्यात्मिक मान्यताओं के प्रति सच्चे थे। हालाँकि, एक योगी के रूप में, वह एक क्रांतिकारी थे। जब वह एक युवा व्यक्ति थे तब भी योग एक प्राच्य रहस्य था जो गुरु से शिष्य (शिष्य) तक प्रसारित होता था, एक बारीकी से संरक्षित रहस्य जो केवल एक चुनिंदा समूह के लिए रखा जाता था। अयंगर को इसमें कोई

संदेह नहीं था कि योग भारत से आया है, लेकिन उन्होंने यह मानने से इनकार कर दिया कि यह किसी एक देश या संस्कृति से संबंधित है। उन्होंने 2011 में भारत में हुए योग आसन को पेटेंट कराने के प्रयास का जोरदार और सफलतापूर्वक विरोध किया। उनका मानना था कि योग किसी भी व्यक्ति के लिए उपलब्ध होना चाहिए, चाहे वह किसी भी लिंग, जाति, वर्ग या पंथ का हो। उन्होंने कहा, यह अनुभव किया जाने वाला व्यावहारिक दर्शन है, न कि केवल वर्णन, चर्चा या बहस करने का मामला।

9.2.7 योग पर प्रकाश–

1966 में उन्होंने योग को अंधकार से बाहर लाने के लिए लाइट ऑन योगा प्रकाशित की। वहां उन्होंने 600 से अधिक आसनों को तस्वीरों के माध्यम से प्रदर्शित किया और उनके लाभों के बारे में विस्तार से बताया। इस अभूतपूर्व पुस्तक का 22 से अधिक भाषाओं में अनुवाद किया गया है और यह इस विषय का परिचय चाहने वाले किसी भी व्यक्ति के लिए आवश्यक बनी हुई है। प्राणायाम पर प्रकाश (1984)य लाइट ऑन लाइफ (2005), उनकी योगिक आत्मकथा युगिका मानस (2008), योगिक मन की खोज – ये लगभग बीस पुस्तकों में से कुछ हैं जिनमें अयंगर ने योग जैसे विशाल विषय के पहलुओं की खोज की। अब सैकड़ों लेख, व्याख्यान और साक्षात्कार भी प्रकाशित हो चुके हैं। यह उस व्यक्ति के लिए एक आश्चर्यजनक उपलब्धि है जिसने बिना किसी योग्यता के चौदह साल की उम्र में स्कूल छोड़ दिया।

9.2.8 बेल्लूर ट्रस्ट–

योग गुरु अयंगर ने योग से या यूं कहें कि योग से अनुपम ख्याति पाई । अपने जीवन के अंत तक वे पुणे में अपने संस्थान में अध्यापन और अध्ययन करते रहे। योग ने मुझे जीवन दिया, उन्होंने विनम्रतापूर्वक कहा और उस पैसे से उन्होंने बेल्लूर ट्रस्ट की स्थापना की, जिसके माध्यम से अपने पैतृक गांव को पानी, बिजली, स्कूल, एक कॉलेज, एक अस्पताल और इस साल मई में एक तकनीकी सुविधा प्रदान की गई। उन्होंने वहां प्राचीन ऋषि पतंजलि के पहले मंदिर का भी उद्घाटन किया। पतंजलि को उन 196 सूत्रों को संस्कृत में संहिताबद्ध करने का श्रेय दिया जाता हैं । अयंगर ने 1993 में येहुदी मेनुहिन के परिचय के साथ पतंजलि के योग सूत्र पर प्रकाश और 2012 में दलाई लामा के प्रस्ताव के साथ योग सूत्र के मूल योग के दर्शन के लिए निश्चित मार्गदर्शिका प्रकाशित की।

9.2.9 जीवनकाल उपलब्धियां–

भारत ने अयंगर को पद्मश्री पुरस्कार (1991), पद्मभूषण (2002) और 2012 में प्रतिष्ठित आईएमसी जूरन क्वालिटी मेडल से सम्मानित करके उनके उत्कृष्ट योगदान को मान्यता दी, यह पुरस्कार उन व्यक्तियों को दिया जाता है जिन्होंने एक रोल मॉडल के रूप में योगदान दिया है – जागरूकता फैलाने में और उनके

जीवन के क्षेत्र में गुणवत्ता पर ध्यान केंद्रित करना। अयंगर यह पुरस्कार पाने वाले केवल दो गैर–उद्योगपतियों में से एक हैं। इसके अलावा 2012 में उन्हें 1.22 अरब से अधिक लोगों के देश में गांधी के बाद पचास महानतम भारतीयों में से एक चुना गया था। हाल ही में अप्रैल 2014 में वह भारत गणराज्य का दूसरा सर्वोच्च नागरिक पुरस्कार पद्म विभूषण प्राप्त करने के लिए दिल्ली गए थे। समारोह के बाद साक्षात्कार में अयंगर ने विशिष्ट विनम्रता के साथ घोषणा की, ”जीवन में, हमारी बहुत सारी जिम्मेदारियाँ हैं। यह त्याग के लिए नहीं है. हम इस समाज में रहते हैं और यह हमारा कर्तव्य है कि हम अपने समाज को कुछ लौटायें। जब मैं 96 वर्ष का हो जाता हूं तो त्याग मेरे पास आता है। त्याग का अर्थ है सांसारिक सुख का आनंद त्यागना। लेकिन मैं आंतरिक खुशी से भरपूर हूं।

9.2.10 योग के विज्ञान और कला को पश्चिम में लाना–

योग को पूर्व से पश्चिम तक लाने के लिए किसी से भी ज्यादा अयंगर जिम्मेदार हैं। आज दुख की बात है कि लेकिन अनिवार्य रूप से ऐसे लोग हैं जिन्होंने योग को व्यवसायिक रूप देने की कोशिश की है। अयंगर ने हमेशा योग की शिक्षा में जो कुछ हाथ आता था उसका उपयोग करने में व्यक्तिगत संसाधनशीलता को प्रोत्साहित किया। जब उन्हें एहसास हुआ कि कुछ लोग शास्त्रीय आसन करने में असमर्थ हैं, तो अयंगर ने उनकी सहायता के लिए जो कुछ भी आसपास था उसका उपयोग कियाय शुरुआत में यह एक घरेलू वस्तु थी जैसे बर्तन, ईंट, रस्सी का टुकड़ा। शुरुआती वर्षों में भारत में इसके लिए उनका मजाक उड़ाया जाता था और उन्हें फर्नीचर योगी कहा जाता था। किसी भी खेल या व्यायाम व्यवस्था के लिए योग उपकरण जैसे उपकरण अब करोड़ों पाउंड का उद्योग है, लेकिन टी–शर्ट, चटाई और उपकरण का होना मूल बिंदु को भूल जाना है। योग एक प्रक्रिया है, उत्पाद नहीं। योग की गतिविधि का आधार एक विज्ञान और एक कला है जिसके लिए वर्षों के सावधानीपूर्वक और समर्पित आत्म अध्ययन और अभ्यास की आवश्यकता होती है। अच्छा शारीरिक स्वास्थ्य इसके परिणामों में से एक है, लेकिन प्रतिकूल परिस्थितियों और बुढ़ापे के सामने मन की शांति और शांति इसके सच्चे उपहार हैं। अक्सर योग को गलत तरीके से शारीरिक लचीलेपन से जोड़ा गया है और इसका उद्देश्य इसकी शक्ति को कम करना है। श्आने वाले कष्टों से बचा जा सकता है और बचना भी चाहिए।श (हेयम दुरूखम् अनागतम, पतंजलि के योग सूत्र, ,16)।

9.2.11 उपचारात्मक एवं चिकित्सीय योग–

अयंगर ने महसूस किया कि हम स्वस्थ रहते हुए भी योग के अभ्यास के माध्यम से बीमारी के खिलाफ खुद को मजबूत करने के लिए बहुत कुछ कर सकते हैं। जब हम बीमार होते हैं तो हम बीमारी को कम करने या खत्म करने के लिए बहुत कुछ कर सकते हैं। आरआईएमवाईआई संस्थान और उससे आगे, अयंगर ने पश्चिमी डॉक्टरों के साथ मिलकर मरीज को उनकी बीमारी या चिकित्सीय स्थिति के इलाज में सक्रिय रूप से

शामिल करके बीमारी से लड़ने के तरीकों की खोज की। अयंगर ने समझाया, मेरी करुणा निर्दयी है, मैं व्यक्ति से नहीं, बल्कि दुःख से लड़ता हूँ। इसलिए, मैं अपनी दया से निर्दयी हूं। पश्चिमी चिकित्सा अब अयंगर के अग्रणी कार्य को गंभीरता से ले रही है। उनके अधिकांश उपचारात्मक और चिकित्सीय कार्य प्रकाशित हो चुके हैं, और कई परीक्षणों और वैज्ञानिक अध्ययनों ने असाधारण परिणाम दिखाए हैं।

9.2.12 अंत तक योग का विद्यार्थी–

अयंगर के लिए यह कभी भी पूर्व बनाम पश्चिम का प्रश्न नहीं था, बल्कि संपूर्ण मानवता की भलाई के लिए पूर्व और पश्चिम के ज्ञान को मिलाने का था। अपने अंतरराष्ट्रीय दृष्टिकोण में अयंगर दलाई लामा से काफी मिलते–जुलते थे, जिनके साथ उन्होंने 2010 में सार्वजनिक संवाद किया था । अयंगर कभी सेवानिवृत्त नहीं हुए। मैं योग का छात्र हूं, वह बार–बार समझाते थे और योग जैसे विशाल विषय के पहले सिद्धांतों पर दोबारा विचार करते हुए उन्होंने अस्सी साल से अधिक समय बिताया। कई लोगों के लिए योग के अभ्यास में लगातार शामिल होने और दोबारा अभ्यास करने की इच्छा ही प्रतिभा की पहचान दर्शाती है। बीकेएस अयंगर की योगी की अपनी परिभाषा में असाधारण और सामान्य का संयोजन स्वयं उस व्यक्ति का एक उपयुक्त वर्णन है और साथ ही दूसरों के लिए एक स्थायी प्रेरणा भी है। भले ही उसके पास इतनी गहराई और सूक्ष्मता का आंतरिक ज्ञान है कि वह स्पष्ट रूप से उच्च ज्ञान की स्थिति में रहता है, वह स्पष्ट रूप से अपने पैरों को जमीन पर मजबूती से टिकाकर भी रहता है। वह व्यावहारिक हैं और जहां भी लोग हों, उनसे और उनकी समस्याओं से निपटते हैं।

14 दिसंबर 2015 को, बीकेएस अयंगर के जन्मदिन पर, गूगल ने उन्हें अपने होम पेज पर गूगल–डूडल के रूप में प्रदर्शित करके उनकी उपलब्धियों का जश्न मनाया। एक ऐसे व्यक्ति के लिए एक उपयुक्त श्रद्धांजलि जो अपने उल्लेखनीय शिक्षण प्रदर्शन के लिए प्रसिद्ध था, वह मरणोपरांत दुनिया भर में Google उपयोगकर्ताओं को अब तक का सबसे बड़ा लाइव अयंगर योग प्रदर्शन देने में सक्षम था।

9.3 श्री श्री रवि शंकर

श्री श्री रवि शंकर , का जन्म 13 मई 1956 को तमिलनाडु, भारत में हुआ था । उन्हें अक्सर श्री श्री (सम्मानजनक) या गुरु जी या गुरुदेव के रूप में भी जाना जाता है। वह एक आध्यात्मिक गुरु और 1981 में बनाए गए आर्ट ऑफ लिविंग फाउंडेशन के संस्थापक हैं, जिसका उद्देश्य व्यक्तिगत तनाव, सामाजिक समस्याओं और हिंसा से छुटकारा पाना है। 1997 में उन्होंने जिनेवा–आधारित चौरिटी, इंटरनेशनल एसोसिएशन फॉर ह्यूमन वैल्यूज, एक गैर सरकारी संगठन की स्थापना की जो राहत कार्यों और ग्रामीण विकास में संलग्न है और

इसका उद्देश्य साझा वैश्विक मूल्यों को बढ़ावा देना है। अपनी सेवा के लिए, उन्हें भारत, पेरू, कोलंबिया और पैराग्वे सहित कई देशों के सर्वोच्च पुरस्कार मिले हैं। जनवरी 2016 में, उन्हें भारत सरकार द्वारा पद्म विभूषण से सम्मानित किया गया।

9.3.1 जीवन–

रविशंकर का जन्म तमिलनाडु के पापनासम में विशालाक्षी रत्नम और आरएस वेंकट रत्नम के घर हुआ था। उनका नाम रवि (एक सामान्य भारतीय नाम जिसका अर्थ सूर्य है) रखा गया क्योंकि उनका जन्म रविवार को हुआ था, और शंकर आठवीं शताब्दी के हिंदू संत, आदि शंकराचार्य के नाम पर रखा गया था, क्योंकि यह शंकर का जन्मदिन भी था। रविशंकर के पहले शिक्षक सुधाकर चतुर्वेदी थे, जो एक भारतीय वैदिक विद्वान और महात्मा गांधी के करीबी सहयोगी थे । उनके पास बैंगलोर विश्वविद्यालय के सेंट जोसेफ कॉलेज से विज्ञान स्नातक की डिग्री है ।स्नातक स्तर की पढ़ाई के बाद, शंकर ने अपने दूसरे शिक्षक, महर्षि महेश योगी के साथ यात्रा की , वैदिक विज्ञान पर व्याख्यान दिया और सम्मेलनों की व्यवस्था की, और ट्रान्सेंडैंटल मेडिटेशन और आयुर्वेद केंद्रों की स्थापना की।

1980 के दशक में, शंकर ने दुनिया भर में आध्यात्मिकता में व्यावहारिक और अनुभवात्मक पाठ्यक्रमों की एक श्रृंखला शुरू की। उनका कहना है कि उनकी लयबद्ध साँस लेने की प्रथा, सुदर्शन क्रिया, उन्हें 1982 में, एक कविता, एक प्रेरणा की तरह, कर्नाटक राज्य के शिमोगा में भद्रा नदी के तट पर दस दिनों की मौन अवधि के बाद मिली । उन्होंने आगे कहा, मैंने इसे सीखा और इसे पढ़ाना शुरू किया।

श्री रवि शंकर जी का कहना है कि प्रत्येक भावना की सांस में एक समान लय होती है और सांस को नियंत्रित करने से व्यक्ति को ऊपर उठाने और व्यक्तिगत पीड़ा से राहत पाने में मदद मिल सकती है।

1983 में, शंकर ने स्विट्जरलैंड में पहला आर्ट ऑफ लिविंग पाठ्यक्रम आयोजित किया । 1986 में, उन्होंने उत्तरी अमेरिका में आयोजित होने वाले पहले पाठ्यक्रम का संचालन करने के लिए अमेरिका में एप्पल वैली, कैलिफोर्निया की यात्रा की ।

9.3.2 दर्शन और शिक्षाएँ –

अध्यात्म शंकर सिखाते हैं कि आध्यात्मिकता वह है जो प्रेम, करुणा और उत्साह जैसे मानवीय मूल्यों को बढ़ाती है। यह किसी एक धर्म या संस्कृति तक सीमित नहीं है. इसलिए यह सभी लोगों के लिए खुला है। उनका मानना है कि मानव परिवार के हिस्से के रूप में हम जो आध्यात्मिक बंधन साझा करते हैं, वह राष्ट्रीयता, लिंग, धर्म, पेशे या अन्य पहचानों से अधिक महत्वपूर्ण है जो हमें अलग करते हैं।

शंकर के विचार में, "हिंसा–मुक्त समाज, रोग–मुक्त शरीर, कंपकंपी–मुक्त सांस, भ्रम–मुक्त मन, निषेध–मुक्त बुद्धि, आघात–मुक्त स्मृति और दुःख–मुक्त आत्मा प्रत्येक मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है।"

उनके अनुसार, विज्ञान और आध्यात्मिकता जुड़े हुए और संगत हैं, दोनों जानने की इच्छा से उत्पन्न होते हैं। प्रश्न, मैं कौन हूँ? आध्यात्मिकता की ओर ले जाता है प्रश्न, यह क्या है? विज्ञान की ओर ले जाता है. इस बात पर जोर देते हुए कि आनंद केवल वर्तमान क्षण में उपलब्ध है, उनकी घोषित दृष्टि तनाव और हिंसा से मुक्त दुनिया बनाने की है। कहा जाता है कि उनके कार्यक्रम इसे पूरा करने में मदद के लिए व्यावहारिक उपकरण प्रदान करते हैं। वह सांस को शरीर और मन के बीच की कड़ी और मन को आराम देने के एक उपकरण के रूप में देखते हैं, ध्यान आध्यात्मिक अभ्यास और दूसरों की सेवा दोनों के महत्व पर जोर देते हैं। उनके विचार में, सत्य रैखिक के बजाय गोलाकार है; इसलिए इसे विरोधाभासी होना चाहिए।

इसकी प्रारंभिक प्रथाओं पर कई चिकित्सा अध्ययन अंतरराष्ट्रीय सहकर्मी–समीक्षित पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। इन अध्ययनों में मानसिक और शारीरिक लाभों की एक श्रृंखला बताई गई है, जिसमें तनाव के कम स्तर (कम कोर्टिसोल– तनाव हार्मोन), बेहतर प्रतिरक्षा प्रणाली, चिंता और अवसाद से राहत (हल्के, मध्यम और गंभीर), शामिल हैं। अन्य निष्कर्षों के अलावा, एंटीऑक्सीडेंट सुरक्षा में वृद्धि, और मस्तिष्क की कार्यक्षमता में वृद्धि (मानसिक फोकस में वृद्धि, शांति और तनावपूर्ण उत्तेजनाओं से उबरना)।

9.3.3 विश्व शांति और मानवीय कार्य –

- **पाकिस्तान–**

उन्होंने 2004 में सद्भावना मिशन पर पाकिस्तान का दौरा किया और फिर 2012 में जब उन्होंने इस्लामाबाद और कराची में आर्ट ऑफ लिविंग केंद्रों का उद्घाटन किया । इस्लामाबाद केंद्र को मार्च 2014 में हथियारबंद लोगों ने जला दिया था।

- **इराक–**

2007 में प्रधान मंत्री नूरी अल मलिकी के निमंत्रण पर इराक की अपनी यात्रा के दौरान और फिर 2008 में, उन्होंने वैश्विक शांति को बढ़ावा देने के लिए राजनीतिक और धार्मिक नेताओं से मुलाकात की। नवंबर 2014 में, रविशंकर ने इरबिल , इराक में राहत शिविरों का दौरा किया। उन्होंने क्षेत्र में यजीदियों और अन्य गैर–मुसलमानों की गंभीर स्थिति को संबोधित करने के लिए एक सम्मेलन की भी मेजबानी की ।

- **कोलम्बिया और एफएआरसी**

रविशंकर ने जून 2015 में क्यूबा की अपनी यात्रा के दौरान कोलंबियाई सरकार और गुरिल्ला आंदोलन एफएआरसी के बीच शांति समझौते की मध्यस्थता की। एफएआरसी अपने राजनीतिक उद्देश्यों और सामाजिक न्याय को प्राप्त करने के लिए अहिंसा के गांधीवादी सिद्धांत का पालन करने पर सहमत हुआ।

- **कश्मीर, भारत**

शांति के लिए दक्षिण एशियाई फोरम की शुरुआत नवंबर 2016 में जम्मू में कश्मीर बैक टू पैराडाइज नामक एक सम्मेलन में की गई थी । रविशंकर के मुताबिक, कश्मीर में 90 फीसदी लोग शांति चाहते हैं लेकिन उन्हें नजरअंदाज किया जाता है। उन्होंने कहा, कश्मीर समस्या का समाधान केवल कश्मीरियों से ही आ सकता है। यह मंच आठ दक्षिण एशियाई देशों को उद्यमिता, कौशल विकास, सांस्कृतिक आदान–प्रदान, शैक्षिक भागीदारी और महिला सशक्तिकरण पहल जैसे क्षेत्रों में सहयोग और काम करने के लिए एक साथ लाएगा।

9.3.4 अंतरधार्मिक संवाद–

रविशंकर अंतरधार्मिक संवाद में शामिल हैं और वर्तमान में एलिजा इंटरफेथ इंस्टीट्यूट के विश्व धार्मिक नेताओं के बोर्ड में शामिल हैं। 2008 और 2010 में अंतरधार्मिक शिखर सम्मेलनों के माध्यम से, वह एचआईवी के खिलाफ सामूहिक कार्रवाई के लिए आस्था–आधारित नेताओं को शामिल कर रहे हैं। जुलाई 2013 में जिनेवा में यूएनएड्स मुख्यालय में एक बैठक में एचआईवी की रोकथाम, लिंग आधारित हिंसा, कलंक और भेदभाव सहित मुद्दों पर चर्चा की गई।

9.3.5 सुदर्शन क्रिया–

सुदर्शन क्रिया (संस्कृत–सुदर्शन क्रिया सुदर्शन–क्रिया) एक श्वास–आधारित तकनीक है जो आर्ट ऑफ लिविंग पाठ्यक्रमों का एक मुख्य घटक है और आर्ट ऑफ लिविंग फाउंडेशन के आघात राहत कार्यक्रमों की आधारशिला है। इसमें वज्रासन में उज्जयी श्वास और भस्त्रिका के बाद सुखासन में लयबद्ध श्वास शामिल है।

इसकी प्रारंभिक प्रथाओं पर कई चिकित्सा अध्ययन अंतरराष्ट्रीय सहकर्मी–समीक्षित पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। इन अध्ययनों में मानसिक और शारीरिक लाभों की एक श्रृंखला बताई गई है, जिसमें तनाव के कम स्तर (कम कोर्टिसोल–तनाव हार्मोन), बेहतर प्रतिरक्षा प्रणाली, चिंता और अवसाद से राहत (हल्के, मध्यम और गंभीर), शामिल हैं। अन्य निष्कर्षों के अलावा, एंटीऑक्सीडेंट सुरक्षा में वृद्धि, और मस्तिष्क की कार्यक्षमता में वृद्धि (मानसिक फोकस में वृद्धि, शांति और तनावपूर्ण उत्तेजनाओं से उबरना)।

9.3.6 जेल कार्यक्रम–

1992 में, उन्होंने जेल के कैदियों के पुनर्वास और उन्हें समाज में फिर से शामिल होने में मदद करने के लिए एक जेल कार्यक्रम शुरू किया।

9.3.7 प्राकृतिक आपदाएँ –

उनके स्वयंसेवकों ने 2004 के सुनामी पीड़ितों, हैती में तूफान कैटरीना पीड़ितों और संघर्ष और प्राकृतिक आपदा के कई अन्य क्षेत्रों में सहायता की।

9.3.8 सामाजिक पहल–

बेहतर भारत के लिए स्वयंसेवक वीएफएबीआई कई गतिविधियों में शामिल है, जिसमें 2012 के दिल्ली सामूहिक बलात्कार मामले का विरोध , मुफ्त स्वास्थ्य शिविर, और भारत में मतदाता जागरूकता और पंजीकरण शामिल हैं।

9.3.9 "नॉनविओ" आंदोलन

NONVIO को हिंसा को खत्म करने के उद्देश्य से मार्च 2013 में शंकर के फाउंडेशन द्वारा एक राष्ट्रव्यापी आंदोलन के रूप में लॉन्च किया गया था। यह व्यक्तियों को विभिन्न सामाजिक और ऑनलाइन मीडिया के माध्यम से अहिंसा के एक कार्य की प्रतिज्ञा करने और सरकार, सार्वजनिक स्वास्थ्य और मीडिया में अहिंसक सिद्धांतों को अपनाने के लिए प्रोत्साहित करता है।

9.3.10 इंडिया अगेंस्ट करप्शन–

वह एक मजबूत लोकपाल बिल की मांग करने वाले आंदोलन में शामिल थे। और इंडिया अगेंस्ट करप्शन आंदोलन के संस्थापकों में से एक भी थे।

9.3.11 व्यवसाय में नैतिकता के लिए विश्व मंच–

2003 में, उन्होंने व्यवसाय में मानवीय मूल्यों और नैतिकता को मजबूत करने के उद्देश्य से व्यवसाय में नैतिकता–कॉर्पोरेट संस्कृति और आध्यात्मिकता संवाद की शुरुआत की। यह बाद में व्यापार में नैतिकता के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मंच के रूप में विकसित हुआ जो नैतिकता पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित करता है। खेलों में नैतिकता पर विश्व शिखर सम्मेलन, सितंबर 2014 में ज्यूरिख में फीफा मुख्यालय में आयोजित एक दिवसीय कार्यक्रम, खेलों में नैतिकता और खुलेपन पर केंद्रित था।

9.3.12 पुरस्कार और मान्यता–

- पद्म विभूषण , भारत का दूसरा सर्वोच्च नागरिक पुरस्कार, जनवरी 2016
- डॉ नागेंद्र सिंह अंतर्राष्ट्रीय शांति पुरस्कार, भारत, नवंबर 2016
- पेरू का सर्वोच्च पुरस्कार, मेडल्ला डे ला इंटीग्रेसियन एन एल ग्राडो डी ग्रैन ऑफिशियल (ग्रैंड ऑफिसर)
- कोलंबिया का सर्वोच्च नागरिक पुरस्कार, ऑर्डेन डे ला डेमोक्रेसिया साइमन बोलिवर
- गांधी, राजा, इकेदा कम्युनिटी बिल्डर्स पुरस्कार
- सर्वोच्च नागरिक पुरस्कार नेशनल ऑर्डर ऑफ मेरिटो डी कोमुनेरोस, पराग्वे, 13 सितंबर 2012
- परागुआयन नगर पालिका द्वारा प्रतिष्ठित नागरिक, 12 सितंबर 2012
- असुनसियन शहर, पराग्वे के प्रतिष्ठित अतिथि, 12 सितंबर 2012
- तिराडेंटेस मेडल, रियो डी जनेरियो राज्य, ब्राजील का सर्वोच्च सम्मान, 3 सितंबर 2012
- शिवानंद विश्व शांति पुरस्कार, शिवानंद फाउंडेशन, दक्षिण अफ्रीका, 26 अगस्त 2012
- क्रैन्स मोंटाना फोरम अवार्ड, सेल्स, 24 जून 2011
- कल्चर इन बैलेंस अवार्ड, वर्ल्ड कल्चर फोरम, ड्रेसडेन जर्मनी, 10 अक्टूबर 2009
- फीनिक्स अवार्ड, अटलांटा, यूएसए, 2008
- मानद नागरिकता और सद्भावना राजदूत, ह्यूस्टन, यूएसए, 2008
- प्रशस्ति की उद्घोषणा, न्यू जर्सी, यूएसए 2008
- संत श्री ज्ञानेश्वर विश्व शांति पुरस्कार, पुणे, भारत, 11 जनवरी 2007
- ऑर्डर ऑफ द पोल स्टार, मंगोलिया, 2006
- भारत शिरोमणि पुरस्कार, नई दिल्ली, भारत, 2005
- डॉक्टरेट – पैराग्वे के यूनिवर्सिडैड ऑटोनोमा डी असुनसियन, 68, ब्यूनस आयर्स विश्वविद्यालय, अर्जेंटीनाय सिग्लो विश्वविद्यालय परिसर, कॉर्डोबा, अर्जेंटीनाय न्येनरोड विश्वविद्यालय, नीदरलैंडय ज्ञान विहार विश्वविद्यालय, जयपुरय वेम्पु विश्वविद्यालय, भारत
- 2009 में, शंकर को फोर्ब्स पत्रिका द्वारा भारत के पांचवें सबसे शक्तिशाली नेता के रूप में नामित किया गया था।

9.3.13 प्रमुख पुस्तकें–

श्री रविशंकर ने निम्नलिखित पुस्तकें लिखी हैं

- ईमानदार साधक के लिए एक अंतरंग नोट
- बुद्ध मौन की अभिव्यक्ति
- साक्षी बनेंरू उपनिषदों की बुद्धि
- गॉड लव्स फन
- सेलिब्रेटिंग साइलेंसरू पांच साल के साप्ताहिक ज्ञान के अंश
- प्यार का जश्न
- नारद भक्ति सूत्र
- हिंदू धर्म और इस्लाम, सामान्य सूत्र
- रिश्तों का राज
- पतंजलि योग सूत्र
- अष्टावक्र गीता
- प्रबंधन मंत्र
- अपने बच्चे को जानें बच्चों को पालने की कला

9.4 स्वामी रामदेव

9.4.1 बाबा रामदेव की जीवनी–

बाबा रामदेव जिन्हें योग गुरु के नाम से भी जाना जाता है, योग गुरु बाबा रामदेव ने योग को पूरी दुनिया में पहचान दिलाने में अग्रणी भूमिका निभाई है। बाबा रामदेव योगासन और प्राणायाम के जरिए दुनिया को स्वस्थ्य रहना सिखाते हैं और लाखों लोग उनके साथ योग करते हैं। के माध्यम से भी जुड़े हुए हैं और इतना ही नहीं, अपने स्वदेशी आंदोलन के माध्यम से ष्पतंजलिष की स्थापना ने आज पूरी दुनिया में अपनी एक अलग पहचान बनाई है और अब तक बाबा रामदेव भारत में व्याप्त भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ाई में हमेशा आगे रहते हैं।

स्वामी बाबा रामदेव का जन्म 26 दिसंबर, 1965 को भारत के हरियाणा राज्य के महेंद्रगढ़ जिले के सैयद अलीपुर गांव में हुआ था। उनके पिता का नाम रामनिवास यादव है जो किसानी का काम करते थे और उनकी माता का नाम गुलाबो देवी है। बाबा रामदेव के बचपन का नाम रामकृष्ण है। यादव, जिनकी प्राथमिक शिक्षा 8वीं कक्षा तक पास के गांव शहजादपुर के सरकारी स्कूल से हुई, उनके जीवन के संघर्ष की कहानी इन स्कूल के दिनों से ही देखी जा सकती है।

बाबा रामदेव खुद बताते हैं कि उन दिनों उनके घर में बिजली नहीं थी, जिसके कारण उन्हें दीये और लैंप की रोशनी में पढ़ाई करनी पड़ती थी, लेकिन बचपन से ही बाबा रामदेव अपनी कुशाग्र बुद्धि के लिए जाने जाते हैं, जिसकी वजह से उनके सभी गुरु और शिक्षक उसे बहुत पसंद करते थे। वह अपनी हर बात बेबाकी से रखते थे और उसका समाधान भी पूछते रहते थे और आठवीं पास करने के बाद रामदेव लकवा के शिकार हो गए, घर वालों के पास इतने पैसे नहीं थे कि वे उनके इलाज के लिए अंग्रेजी दवाइयों का खर्च उठा सकें, लेकिन शुरू से ही योग और आयुर्वेद में रुचि होने के कारण उन्होंने आयुर्वेद का सहारा लिया और शुरुआत की. आयुर्वेदिक औषधियों का उपयोग करना।

योग के जरिए बाबा रामदेव पूरी तरह स्वस्थ हो गए. जिसे बाबा रामदेव अपने जीवन की एक बड़ी सफलता मानते हैं और इससे बाबा रामदेव को योग का महत्व समझ में आया कि योग और आयुर्वेद के माध्यम से असाध्य से असाध्य रोगों को भी ठीक किया जा सकता है, जिसके बाद बाबा रामदेव ने भी अपने मन में यह ठान लिया कि उनका मुख्य लक्ष्य होगा योग का प्रचार–प्रसार करना और योग व आयुर्वेद के जरिए वह पूरी दुनिया को जीने की नई राह दिखाएंगे और फिर इसके बाद आगे की पढ़ाई पूरी करने के लिए उन्होंने पास के एक अन्य गांव खानपुर से योग और संस्कृत की शिक्षा ली, फिर इससे उन्हें त्याग का जीवन जीने की प्रेरणा मिली।

9.4.2 बाबा रामदेव का सेवानिवृत्त जीवन–

गुरुकुल की पढ़ाई पूरी करने के बाद उन्होंने घर से संन्यास ले लिया और अपना नाम बदलकर स्वामी रामदेव रख लिया और वे योग के प्रचार–प्रसार के लिए निकल पड़े और हरियाणा के जिंद गांव में कालवा आश्रम में रहने लगे और वहीं से लोगों को योग की शिक्षा और दीक्षा देने लगे. निःशुल्क, जिसके बाद वह एक जिले से दूसरे जिले में जाकर लोगों को योग का प्रशिक्षण देने लगे।

इसके बाद माना जाता है कि बाबा रामदेव योग और तपस्या करने के लिए हिमालय के क्षेत्र में चले गए और कई वर्षों तक हिमालय में रहकर तपस्या की और फिर लौटकर हरिद्वार में बस गए।

9.4.3 स्वामी रामदेव का सार्वजनिक जीवन–

वर्ष 1995 में उन्होंने हरिद्वार में दिव्य योग मंदिर की स्थापना की, जिसका मुख्य उद्देश्य लोगों के बीच योग का प्रचार–प्रसार करना था और फिर जगह–जगह शिविर लगाकर बाबा रामदेव ने आयुर्वेद और योग का महत्व बताना शुरू किया और लोगों को योग के प्रति जागरूक कर रहे हैं. रुचि जगाने का प्रयास किया।

बाबा रामवेद के शिविरों में भारतीय प्राचीन संस्कृति की छाप दिखाई देती है, जिसके कारण बड़े–बड़े भारतीय प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से योग के माध्यम से बाबा रामदेव से जुड़ने लगे, फिर 2003 से दिव्य योग

मंदिर ट्रस्ट के माध्यम से बाबा रामदेव ने सबसे पहले विश्वास शुरू किया. सुबह टीवी पर योग कार्यक्रम दिखाना शुरू किया, जिससे अब योग की पहुंच टीवी के माध्यम से घर–घर तक होने लगी है।

योग के महत्व से प्रभावित होकर देश की जानी–मानी हस्तियां भी योग के माध्यम से बाबा से जुड़ीं, जिनमें अमिताभ बच्चन, शिल्पा शेट्टी भी प्रमुख हैं।

इसके बाद बाबा रामदेव ने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा और योग के प्रचार–प्रसार के लिए उनके कई चौनलों पर योग कार्यक्रम प्रसारित होने लगे, जिस तरह से बाबा रामदेव ने लोगों को योग का महत्व समझाया, दिन–ब–दिन लोग योग से जुड़ने लगे और बाबा रामदेव योग करते हैं। योग के प्रचार–प्रसार के लिए न केवल भारत में बल्कि विदेशों में भी योग प्रशिक्षण शिविर लगाए जा रहे हैं, जिनमें कई लोग योग के माध्यम से बाबा रामदेव से जुड़ने लगे हैं।

9.4.4 पतंजलि योगपीठ की स्थापना

योग और आयुर्वेद को बढ़ावा देने के लिए बाबा रामदेव। बाबा रामदेव ने वर्ष 2006 में हरिद्वार में पतंजलि योगपीठ की स्थापना की, जिसका मुख्य उद्देश्य आयुर्वेद पर शोध करना है, इसकी दो शाखाएँ हैं।

पतंजलि योगपीठ–1

पतंजलि योगपीठ–2

बाबा रामदेव ने पतंजलि संस्थान के माध्यम से पतंजलि अस्पताल, पतंजलि विश्वविद्यालय भी खोला है, जिसमें हजारों छात्र योग और आयुर्वेद का अध्ययन करने के साथ–साथ उस पर शोध भी करते हैं। आयुर्वेद के अलावा अन्य पद्धतियों से भी बीमारियों का इलाज किया जाता है।

इसके अलावा अब विदेशों में भी पतंजलि की कई शाखाएं खुल गई हैं, जिनमें अमेरिका, कनाडा, नेपाल जैसे देश शामिल हैं।

इसके अतिरिक्त बाबा रामदेव ने अपने सहयोगी आचार्य बालकृष्ण के साथ मिलकर पतंजलि योगपीठ के माध्यम से अपने देश में स्वदेशी को बढ़ावा देने के लिए पतंजलि लिमिटेड की भी स्थापना की है। पतंजलि की प्रसिद्धि का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि पतंजलि के माध्यम से दैनिक उपयोगी चीजें जैसे साबुन, तेल, खाद्य पदार्थ, आयुर्वेदिक और पौष्टिक भोजन बहुत ही उचित मूल्य पर आसानी से उपलब्ध होते हैं और इतना ही नहीं, पतंजलि की स्थापना के पीछे बाबा रामदेव का अपने स्वदेशी दैनिक उपभोग की वस्तुओं के प्रयोग को बढ़ावा देना है और उनका यह भी मानना है कि हमारे देश की पूंजी हमारे देश में ही रहे, जिसके लिए उन्होंने पूरे देश में पतंजलि के स्थान पर खुदरा दुकानें खोलीं। यहां पर पतंजलि के सभी उत्पाद आसानी से उपलब्ध हैं और पतंजलि की स्थापना के बाद से लाखों लोगों को रोजगार के अवसर भी मिले हैं, ऐसे में बाबा रामदेव द्वारा स्थापित कंपनी पतंजलि सफलता के नए आयाम स्थापित कर रही है।

9.4.5 भ्रष्टाचार के खिलाफ बाबा रामदेव की लड़ाई–

बाबा रामदेव भारत के विकास में भ्रष्टाचार को मानते हैं. भ्रष्टाचार देश के विकाश में एक बहुत बड़ी बाधा है, जब तक भारत में भ्रष्टाचार पूरी तरह खत्म नहीं हो जाता, तब तक भारत का विकसित बनने का सपना अधूरा रहेगा, जिसके लिए बाबा रामदेव भ्रष्टाचार के खिलाफ खुलकर बोलते हैं और जब 2011 में अन्ना हजारे के आह्वान पर रामलीला मैदान में हुए थे और भ्रष्टाचार के खिलाफ खुलकर विरोध किया और तब बाबा रामदेव को भी तत्कालीन सरकार की नीतियों का शिकार बनना पड़ा, जिसके कारण उन्हें रात भर भूख हड़ताल करनी पड़ी और फिर किसी तरह अपनी जान बचाकर वह अपने योगपीठ हरिद्वार पहुंचे।

यूं तो जिस भी मंच, सम्मेलन या भाषण में बाबा रामदेव को बोलने के लिए बुलाया जाता है, बाबा रामदेव भ्रष्टाचार के खिलाफ बोलने से कभी पीछे नहीं हटते और समय–समय पर भ्रष्टाचार के खिलाफ सख्त कार्रवाई की मांग करते रहे हैं और इसी तरह विदेश से काला धन लाने के मामले पर भी चर्चा करते रहे हैं। सरकारें उनके निशाने पर हैं, जिसके चलते बाबा रामदेव राजनीति में सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं और जब भी कोई सामाजिक कार्य करने की जरूरत होती है तो बाबा रामदेव और उनका ट्रस्ट कभी पीछे नहीं रहता. हाल ही में बाबा रामदेव और उनकी संस्था केंद्र सरकार द्वारा चलाए जा रहे स्वच्छता अभियान में बढ़–चढ़कर हिस्सा ले रहे हैं और लोगों को साफ–सफाई में मदद कर रहे हैं. के बारे में जागरूकता पैदा करने का भी प्रयास किया जा रहा है

9.4.6 प्रमुख प्रकल्पों की स्थापना–

अपने सपनों को मूर्त रूप देने के उद्देश्य से स्वामीजी ने सबसे पहले 1995 में कनखल, हरिद्वार, उत्तराखंड, भारत में दिव्य योग मंदिर (ट्रस्ट) की स्थापना की, जिसके बाद हिमालय में गंगोत्री में ध्यान केंद्र, ब्रह्मकल्प चिकित्सालय, दिव्य की स्थापना की गई। फार्मेसी, दिव्य प्रकाशन, दिव्य योग साधना, 2005 में दिल्ली में पतंजलि योगपीठ (ट्रस्ट, पतंजलि योगपीठ, हरद्वार, महाशय हीरालाल अर्श गुरुकुल, किशनगढ़ घासेडा, महेंद्रगढ़, हरियाणा, योग ग्राम और हाल ही में भारत स्वाभिमान (ट्रस्ट) दिल्ली में।

9.4.7 स्वामी रामदेव जी का यौगिक योगदान –

आधुनिक योग में स्वामी रामदेव जी का घर घर तक हर वर्ग हर उम्र के लोगों तक योग को लोकप्रिय बनाने का श्रेय जाता है। योग को आधुनिक संचार के माध्यमों से जनसुलभ बना कर योग को प्रसारित करने का कार्य किया है। उनके योग के क्षेत्र में किए गए कार्य कुछ इस प्रकार है।

9.4.8 आधुनिक युग में सम्पूर्ण विश्व में योग को प्रसार–

अपने योग शिविरों में, जिसमें देश के सभी हिस्सों से हजारों प्रतिभागियों ने भाग लिया, वह आठ प्राणायाम (1.भस्त्रिका 2. कपालभाति, 3. बाह्यअग्निसार, 4. उज्जायी, 5. अनुलोमविलोम, 6. भ्रामरी, 7. उद्गीथ, 8. प्रणव) करने पर जोर देते हैं। कुछ सूक्ष्म व्यायामय और विभिन्न बीमारियों के लिए कुछ विशिष्ट आसन, साथ ही कुछ सरल घरेलू उपचार और आयुर्वेदिक दवाएं भी। बहुत ही कम समय में योग एवं आयुर्वेदिक चिकित्सा के परिणाम न केवल उत्साहवर्धक बल्कि आश्चर्यजनक भी रहे हैं। लोगों ने बड़े स्तर पर योग को अपनाया है वे इसे स्वामीजी के पतंजलि योगपीठ द्वारा प्रशिक्षित और प्रमाणित योग शिक्षकों के मार्गदर्शन में कर रहे हैं, और आस्था, जीटीवी, स्टार, सहारा आदि जैसे विभिन्न भारतीय टीवी चौनलों पर इसे देख और अनुसरण कर रहे हैं। लोग सीडी, डीवीडी, ऑडियो से योग सीख रहे हैं। योगपीठ द्वारा तैयार वीडियो कैसेट, स्वामीजी ने अपनी पुस्तक योगदर्शन में पतंजलि के योगसूत्रों को सरल हिंदी में समझाने का प्रयास किया है।

9.4.9 बाबा रामदेव और अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस–

हमारा भारत प्राचीन काल से ही देवताओं की भूमि रहा है, आयुर्वेद और योग के बल पर भारतीय स्वस्थ जीवन जीते रहे हैं, लेकिन भारतीय आम जनता अपनी प्राचीन पद्धति को भूलने के कारण योग का भी काफी प्रभाव पड़ा है, इसीलिए बाबा रामदेव फिर लोगों में योग और आयुर्वेद के प्रति रुचि पैदा करने के लिए दुनिया भर में योग शिविर आयोजित करते हैं, जिससे कई विकसित देश योग के महत्व को अच्छी तरह से समझ गए हैं और योग को बढ़ावा देने की इसी कड़ी में 2014 में संयुक्त राष्ट्र ने भी बाबा रामदेव के सार्थक प्रयासों को मान्यता दी और भारत सरकार के प्रस्ताव के बाद 193 देशों की सहमति से हर साल 21 जून को **"अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस"** मनाया जाने लगा। जिसका श्रेय बाबा रामदेव को भी जाता है।

9.4.10 विभिन्न पुरस्कार एवं मान्यतायें –

- जनवरी 2007 – स्वामी रामदेव को कलिंगा इंस्टीट्यूट ऑफ इंडस्ट्रियल टेक्नोलॉजी, भुवनेश्वर द्वारा मानद डॉक्टरेट की उपाधि से सम्मानित किया गया। यह योगध्वैदिक प्रणाली को लोकप्रिय बनाने के उनके प्रयासों के सम्मान में थां।
- मार्च 2010 – उन्हें एमिटी यूनिवर्सिटी, नोएडा, उत्तर प्रदेश द्वारा डॉक्टरेट ऑफ साइंसेज से सम्मानित किया गया।
- अप्रैल 2010 – डॉ. डीवाई पाटिल विश्वविद्यालय, पुणे, महाराष्ट्र द्वारा डॉक्टर ऑफ साइंस की मानद उपाधि प्राप्त की गई।
- जनवरी 2011 – महाराष्ट्र के राज्यपाल के. शंकर नारायणन ने बाबा रामदेव को श्री चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती राष्ट्रीय प्रतिष्ठित पुरस्कार से सम्मानित किया।

- जनवरी 2015 – स्वामी रामदेव को योग, आयुर्वेद और स्वास्थ्य के प्रति उनके उल्लेखनीय योगदान को मान्यता देने के लिए सर्वोच्च और प्रतिष्ठित पुरस्कार पद्मश्री के लिए नामांकित किया गया था। हालाँकि बाबा रामदेव ने यह सम्मान अस्वीकार कर दिया।
- स्वामी रामदेव और उनके सहयोगियों ने 21 जून को अंतर्राष्ट्रीय विश्व योग दिवस के रूप में घोषित करने के लिए कठोर अभियान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

9.5 स्वामी निरंजनानंद सरस्वती

स्वामी निरंजनानंद सरस्वती का जन्म 1960 में राजनांदगांव (छत्तीसगढ़) में हुआ था। निरंजनानंद को उनके अनुयायी जन्म से ही योगी मानते हैं। उनके गुरु सत्यानंद ने उन्हें निरंजन (बेदाग व्यक्ति) नाम दिया था। जन्म से ही अपने गुरु स्वामी सत्यानंद सरस्वती के मार्गदर्शन में, चार साल की उम्र में वह उनके साथ बिहार योग स्कूल, मुंगेर में रहने आए, जहां उन्होंने योग का प्रशिक्षण प्राप्त किया। और योग निद्रा के माध्यम से आध्यात्मिक विज्ञान को प्राप्त किया।

1971 में उन्हें दशनामी संन्यास की दीक्षा दी गई और उसके बाद ग्यारह वर्षों तक वे विदेश में रहे, विभिन्न क्षेत्रों में कौशल हासिल किया, विभिन्न संस्कृतियों की समझ हासिल की और यूरोप, ऑस्ट्रेलिया, उत्तर और दक्षिण अमेरिका में योग के प्रचार–प्रसार में मदद की।

अपने गुरु के आदेश पर, वह 1983 में बिहार स्कूल ऑफ योग, शिवानंद मठ और गंगा दर्शन में योग अनुसंधान फाउंडेशन की गतिविधियों का मार्गदर्शन करने के लिए भारत लौट आए। 1990 में उन्हें परमहंस संन्यासी के रूप में दीक्षित किया गया और 1993 में स्वामी सत्यानंद सरस्वती के उत्तराधिकारी के रूप में आध्यात्मिक गुरु नियुक्त किया गया। उन्होंने 1994 में योग के पहले विश्वविद्यालय बिहार योग भारती और 2000 में मुंगेर में योग प्रकाशन ट्रस्ट की स्थापना की। उन्होंने 1995 में बच्चों के योग आंदोलन, बाल योग मित्र मंडल की भी शुरुआत की। मुंगेर में गतिविधियों को प्रेरित करने के अलावा, उन्होंने दुनिया भर के साधकों का मार्गदर्शन करने के लिए बड़े पैमाने पर यात्रा की।

2008 में उन्होंने बिहार स्कूल ऑफ योग की अध्यक्षता छोड़ दी और सभी संस्थागत जिम्मेदारियाँ अगली पीढ़ी के योग सेवकों को सौंप दी गईं। 2009 में अपनी महासमाधि से पहले, श्री स्वामी सत्यानंद ने स्वामी निरंजनानंद को संन्यास जीवन शैली का पता लगाने और शास्त्रीय योग विद्या को पुनर्जीवित और प्रचारित करने का आदेश दिया था। योग, तंत्र और उपनिषदों पर कई शास्त्रीय पुस्तकों के लेखक, स्वामी निरंजन योग दर्शन, अभ्यास और जीवन शैली के सभी पहलुओं पर ज्ञान का एक चुंबकीय स्रोत हैं। वह परंपरा

को आधुनिकता के साथ कुशलता से जोड़ते हैं क्योंकि वह मुंगेर शहर में अपने आधार से अपने गुरु के मिशन का पोषण और प्रसार करते रहते हैं।

2017 में, उन्हें योग में सराहनीय कार्य के लिए भारत गणराज्य के राष्ट्रपति द्वारा भारत के तीसरे सर्वोच्च नागरिक पुरस्कार, पद्म भूषण से सम्मानित किया गया था।

9.5.1 योगाभ्यास में योगदान–

जहां से उनके गुरु श्री स्वामी सत्यानंद ने छोड़ा था, वहीं से आगे बढ़ते हुए, स्वामी निरंजन ने योग की प्रथाओं में बहुत बड़ा योगदान दिया है। अंतर्निहित व्यावहारिक ज्ञान, अंतर्दृष्टि और तीक्ष्ण प्रतिभा का एक दुर्लभ संयोजन, योग की समझ, विशेष रूप से धारणा और ज्ञान में स्वामी निरंजन के योगदान की गहराई अथाह है।

उन्होंने धारणा, प्रत्याहार के बाद ध्यान के चरण और ऋषि पतंजलि के अष्टांगिक मार्ग के छठे चरण की एक अद्वितीय व्याख्या दी है। शास्त्र और व्यक्तिगत अनुभवात्मक अनुसंधान को मिलाकर, स्वामी निरंजन ने प्राचीन योगिक, तांत्रिक और उपनिषद ग्रंथों से धारणा प्रथाओं के संग्रह की व्याख्या की। 1993 में प्रकाशित उनकी पुस्तक धारणा दर्शन ने इन प्रथाओं को व्यवस्थित किया और उन्हें पहली बार सुलभ बनाया। पूरी तरह से विस्तृत स्पष्टीकरण के साथ सुरक्षित, स्थिर और क्रमिक प्रगति के लिए अभ्यास चरणों में दिए गए हैं। सभी बाधाओं, संभावित नुकसानों और व्यापार की चालों को अनुभव के अचूक ज्ञान के साथ उदारतापूर्वक रेखांकित किया गया है।

9.5.2 योग को सरल सहज स्वरूप के प्रणेता–

स्वामी निरंजन ने ज्ञान योग के महत्वपूर्ण विषय को स्पष्ट किया, इसे रुचिकर और सुलभ बनाया। उन्होंने वेदांत के उच्च्व दर्शन और ज्ञान की जटिल तकनीकों को चतुराई से सरल प्रथाओं में प्रस्तुत किया, जिन्हें हर कोई लागू कर सकता है। ये अभ्यास दैनिक जीवन में अधिक समझ और जागरूकता लाते हैं, जिससे गहरा और शक्तिशाली परिवर्तन होता है।

शास्त्रीय अनुसंधान के माध्यम से स्वामी निरंजन ने वैदिक विचार और परंपरा से प्राप्त योग की पूर्व अज्ञात प्रथा, लय योग का खुलासा किया है। एक अत्यधिक उन्नत अभ्यास, लय, प्रकट प्रकृति और अनुभव को अव्यक्त में विलीन करने से संबंधित है और इसे शायद ही कभी सिखाया जाता है।

योग दर्शन पाठ में स्वामी निरंजन ने उपनिषदों की समसामयिक योग दृष्टि प्रदान करते हुए एक ऐसा चित्र प्रस्तुत किया है जो नयनाभिराम और सटीक दोनों है। योग की विभिन्न शाखाओं और प्रथाओं पर स्पष्ट व्याख्याओं के साथ–साथ योग की विभिन्न परंपराओं और दर्शन की पहचान और व्याख्या की जाती है।

9.5.3 योग कैप्सूल–

आधुनिक जीवन की तेज गति और समय की भारी मांग को देखते हुए, स्वामी निरंजन ने साधना का एक विशिष्ट क्रम पेश किया जिसे योगिक कैप्सूल कहा जाता है। इस साधना में ऐसे अभ्यास शामिल हैं जो करने में सरल हैं और जिन्हें पूरा करने में केवल 10–20 मिनट लगते हैं, और जो स्वास्थ्य, भलाई और उत्थान के लिए सभी स्तरों पर लाभ देते हैं। चतुराई से अंतर्दृष्टि, ज्ञान और करुणा का संयोजन करते हुए, स्वामी निरंजन ने एक ऐसे दृष्टिकोण की शुरुआत की जिसके द्वारा हर कोई योग को अपने दैनिक जीवन में आसानी से और प्रभावी ढंग से शामिल कर सकता है और लाभों का अनुभव कर सकता है।

9.5.4 पद्मभूषण पुरुस्कार–

केंद्र सरकार परमहंस स्वामी निरंजनानंद सरस्वती और बिहार योग विद्यालय के महत्व को समझते हुए। योग में किए गए अभूतपूर्व योगदान के कारण उन्हें पद्मभूषण जैसे सम्मान से सम्मानित किया गया तो दूसरी ओर बिहार योग विद्यालय को श्रेष्ठ योग संस्थान के लिए प्रधानमंत्री पुरस्कार प्रदान किया गया।

9.5.5 प्रमुख पुस्तके

- ज्ञान योग
- संन्यास की मेरी विरासत
- ऋषि वसिष्ठ का योग
- श्रीकृष्ण का योग
- दैनिक जीवन में योग
- शिष्य का धर्म
- सिर, ह्रदय और हाथ
- कर्म और कर्म योग
- मंत्र एवं यंत्र
- मन, मन प्रबंधन और राज योग
- योग और पाशुपत योग की उत्पत्ति
- प्रवृत्ति और निवृत्ति का मार्ग
- संन्यास

- हंस के पंखों पर (चार खंड)
- योग साधना पैनोरमा (पांच खंड)
- प्राण प्राणायाम
- योग चूड़ामणि उपनिषद
- घेरण्ड संहिता
- धारणा दर्शन
- संन्यास दर्शन
- योग दर्शन

9.6 अभ्यास प्रश्न

- योग गुरु अयंगर का जन्म 1918 में हुआ था।
- अयंगर उत्तर भारत के रहने वाले थे
- श्री श्री रवि शंकर आर्ट ऑफ लिविंग के प्रणेता थे।
- रामदेव जी ने पतंजलि योग सूत्र लिखा।
- स्वामी रामदेव ने पतंजलि विश्व विद्यालय की स्थापना की
- स्वामी निरंजनानंद जी के योग में किए गए अभूतपूर्व योगदान के कारण उन्हें पद्मभूषण जैसे सम्मान से सम्मानित किया गया।

सही विकल्प चुनिये –

श्री श्री रवि शंकर जी का जन्म

1. 14 जून 1942
2. 20 जावरी 1950
3. 13 मई 1956
4. 28 फरवरी 1977

अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस किस दिन होता है

1. 20 अप्रैल
2. 25 जून
3. 20 मई
4. 21 जून

योग गुरु अयंगर ने किस ट्रस्ट की स्थापना की

1. पतंजलि ट्रस्ट
2. बेल्लूर ट्रस्ट
3. मुंगेर ट्रस्ट
4. भागीरथी ट्रस्ट

पतंजलि ट्रस्ट की स्थापना किसने की

1. स्वामी निरंजनानंद
2. आचार्य बालकृष्ण
3. राधा स्वामी
4. स्वामी रामदेव

9.7 सारांश

प्रिय पाठको हमने पिछली इकाई में योग में अपने अपूर्णीय योगदान देने वाले योगी संतो और महापुरुषों को पढ़ा अब हम इस इकाई में योगगुरु अयंगार, श्री श्री रविशंकर, स्वामी रामदेव, स्वामी निरंजनानंद सरस्वती आदि योगियों के जीवन परिचय और उनके यौगिक योगदान का अध्यन किया योग के अत्यन्त गूढ़ रहस्यों को हम सभी तक सरल रूप में प्रस्तुत करने वाले योगियों का जीवन कैसा था? किस प्रकार से उन्हें योग का ज्ञान प्राप्त हुआ? उनकी साधना कैसी थी? किस प्रकार की घटना से उनके जीवन में परिवर्तन आया? किस योगी को कितने वर्षों में सिद्धि प्राप्त हुई? समकालीन होते हुए भी उनकी साधना में किस प्रकार के भेद थे? किस योगी की साधना आधुनिक युग में सबसे ज्यादा प्रचलित है? आदि प्रश्नों के सही उत्तर आपने इस इकाई में प्राप्त किया होगा।

9.8 शब्दावली

- निरंजन– बेदाग व्यक्ति
- अंतरधार्मिक– धर्म के आंतरिक मामले
- मध्यस्थता – बीच में आना, मध्य में आ कर सुलह कराना
- आघात–मुक्त– बिना नुकसान
- मार्गदर्शिका – रास्ता दिखाने वाला
- अंतर्निहित – मूल में स्थित
- नयनाभिराम – जिस से नजर न हटे
- समसामयिक – तात्कालिक, अभी अभी की घटना

9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

- अयंगर, बीकेएस (1991)। अयंगर – उनका जीवन और कार्य, सीबीएस प्रकाशक और वितरक
- अयंगर, बीकेएस (2000)। अस्ताडाला योगमाला । नई दिल्ली, भारतरू संबद्ध प्रकाशक
- भारत के संत महात्मा, वोरा एंड कंपनी पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, मुंबई
- माई लाइफ मैं मिशन, स्वामी रामदेव, पेंगुइन एबरी प्रेस (15 दिसंबर 2020)
- सरस्वती, अहिंसाधारा (2010)। दिन–ब–दिन योग । हंस योग प्रकाशन।
- सरस्वती, स्वामी निरंजनानंद (2015)। योग चक्र आध्यात्मिक संस्कार का विकास । योग प्रकाशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार,
- सरस्वती, स्वामी निरंजनानंद (2013)। बिहार योग विद्यालय का इतिहास । योग प्रकाशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत।

9.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. योग गुरु अयंगर के जन्म से सम्बन्धित कथाओं पर प्रकाश डालिये।
2. स्वामी निरंजनानंद कृत योग ग्रंथो का वर्णन कीजिये ।
3. स्वामी रामदेव जी की योग के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्यों का वर्णन कीजिए ।

4. श्री श्री रवि शकर जी के आधुनिक योग विचारधारा पर प्रकाश डालिए।
5. श्री श्री रवि शंकर के जीवन चरित्र का वर्णन कीजिये।
6. स्वामी राम देव के जन्म और योग की यात्रा का वर्णन कीजिए।
7. स्वामी निरंजनानन्द जी द्वारा दी गई योग साधना का वर्णन कीजिये

चतुर्थ खण्ड - योग ग्रंथों का सामान्य परिचय
परिचय

परास्नातक योग कार्यक्रम के अन्तर्गत योग के आधारभूत तत्व (MAYO– 101) पाठ्यक्रम का यह चतुर्थ खण्ड है, जिसका शीर्षक योग के आधारभूत तत्व में योग ग्रंथों का सामान्य परिचय है। इस खण्ड के अंतर्गत कुल तीन इकाइयाँ हैं–

इकाई–10 में योग ग्रंथ के परिचय के रूप में योग के अति प्रचलित ग्रंथ घेरण्ड संहिता का सामान्य परिचय को जान सकेंगे

इकाई–11 के अन्तर्गत योग के ग्रंथ परिचय के रूप में हठ योग का प्रसिद्ध ग्रंथ हठ प्रदिपिका का सामान्य परिचय बतलाया गया है।

इकाई–12 में अन्तर्गत योग ग्रंथ शिव संहिता का सामान्य परिचय बतलाया गया है।

अतः इन समस्त इकाईयों के में योग के प्रसिद्ध और प्रचलित ग्रंथो के सामान्य परिचय बतलाया गया है। जिससे आप योग के इन ग्रंथों का इतिहास और योग की परंपरा को अभी तक जीवंत बनाए रखने में भूमिका को जान सकेंगे।

इकाई 10 – घेरंड संहिता का सामान्य परिचय

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 घेरेण्ड संहिता का परिचय

- 10.2.1 घेरण्ड संहिता का काल समय
- 10.2.2 घेरण्ड संहिता के योग का उद्देश्य
- 10.2.3 घेरण्ड संहिता में योग का स्वरूप
- 10.2.4 प्रथम अध्याय
- 10.2.5 सप्त योग का लाभ
- 10.2.6 षट्कर्म वर्णन
- 10.2.7 द्वितीय अध्याय
- 10.2.8 बत्तीस आसनों का वर्णन
- 10.2.9 तृतीय अध्याय
- 10.2.10 चतुर्थ अध्याय
- 10.2.11 पंचम अध्याय
- 10.2.12 षष्ठ अध्याय
- 10.2.13 सप्तम अध्याय

10.3 अभ्यास प्रश्न

10.4 सारांश

10.5 शब्दा वली

10.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

10.7 निबंधात्मक प्रश्न

10.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद हम

- आप घेरंड संहिता में महर्षि घेरण्ड और राजा चण्डिकापालि के संवाद को जान सकेंगे।
- घेरंड संहिता में हठयोग की साधना के महत्वपूर्ण उद्देश्य की विवेचना कर सकेगें।
- घेरंड संहिता में वर्णित के विविध अध्ययोत के बारे में अध्ययन करेंगे।
- घेरंड संहिता में वर्णित आसन , प्राणायाम को जान सकेंगे।
- घेरण्ड सहिता में वर्णित साधनाओं को आत्मसात करेंगे।
- घेरेंड संहिता में वर्णित षटकर्म के बारे विस्तार से समझ सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

महर्षि घेरण्ड और राजा चण्डिकापालि के संवाद रूप में रचित घेरण्ड संहिता महर्षि घेरण्ड की अनुपम कृति है। इस के योग को घटस्थ योग या सप्तांग योग भी कहा गया है। घेरण्ड संहिता के सात अध्याय है तथा जो घटशुद्धि के लिए आवश्यक हैं, इसमें सप्तांग योग की व्यावाहारिक शिक्षा दी गयी है। शरीर शुद्धि की क्रियाओं, जैसे, नेति, धौति, वस्ति, नौलि, कपालभाति और त्राटक से आरंभ कर आसन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान और समाधि के अभ्यासों का सरल भाषा में वर्णन किया गया है।

महर्षि घेरण्ड के घटस्थ योग के नाम से प्रसिद्ध ये अभ्यास आत्माज्ञान प्राप्त करने के लिए शरीर को माध्यम बनाकर मानसिक और भावनात्मक स्तरों को नियंत्रित करते हुए आध्यात्मिक अनुभूति को जाग्रत करने का मार्ग प्रशस्त करते हैं। यह पुस्तक प्रारंभिक से लेकर उच्च योगाभ्यासियों के लिए अत्यंत उपयोगी, ज्ञानवर्द्धक एवं संग्रहणीय है।

10.2 घेरण्ड संहिता का परिचय

घेरण्ड संहिता व्यावहारिक योग पर लिखा गया एक साहित्य है, जिसके प्रणेता महर्षि घेरण्ड हैं । उनकी कृति से मालूम पडता है कि वे एक वैष्णव सन्त रहे होंगे, क्योंकि उनके मन्त्रों में विष्णु की चर्चा की गयी है । फल विष्णु थल विष्णुअर्थात् जल में विष्णु हैं थल में विष्णु हैं। एक दो स्थानों पर नारायण की चर्चा की गयी है। जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि उन्होंने वैष्णव सिद्धान्त को अपने जीवन में अपनाया था

और साथ हीं साथ एक सिद्ध हठयोगी भी थे। उन्होंने योग को जो स्वरूप दिया, उसमें शरीर से शुरू करके आत्म तत्त्व तक की जानकारी दी गयी है। अभ्यासों की रूप रेखा बतायी गयी है।

घेरण्ड संहिता की प्राच्य प्रतियों से यह अनुमान लगाया जाता है कि ये सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ हैं। वैसे महर्षि घेरण्ड का जन्म कहाँ हुआ था या वे किस क्षेत्र में रहते थे, यह कोई नहीं जानता। घेरण्ड संहिता की उपलब्ध प्रतियों में पहली प्रति सन् 1804 की है ।

घेरण्ड संहिता में जिस योग की शिक्षा दी गयी है, उसे लोग सप्तांग योगश के नाम से जानते हैं। योग में कोई ऐसा निश्चित नियम नहीं है कि योग के इतने पक्ष होने ही चाहिए। अन्य गन्थों में अष्टांग योग की चर्चा की गयी है, लेकिन हठयोग के कछ ग्रथों में योग के छह अंगों का वर्णन किया गया है। हठ रत्नावली में, जिसके प्रणेता महायोगिन्द्र श्री निवास भट्ट थे, चतुरंग योग है। गोरखनाथ द्वारा लिखित गोरक्ष शतक में षडांग योग की चर्चा की गयी है।

एक युग की आवश्यकता के अनुसार, समाज की आवश्यकता के अनुसार लोगों ने योग की कछ पद्धतियों को प्रचलित किया। सम्भवत यह कारण भी हो सकता है कि एक जमाने में धारणा थी कि योग का अभ्यास केवल साधु त्यागी, विरक्त या महात्मा कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में उन्हें योग के प्रारम्भिक यम और नियमों को सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं पडती होगी। इसलिए यम और नियम को बहुत स्थानों से हटाया गया है। उनका वर्णन नहीं किया गया है। लेकिन जैसे जैसे युग परिवर्तित होता गया और जन सामान्य योग के प्रति रुचि दर्शाने लगा, बाद के विचारकों एवं मनीषियों ने यम और नियम को भी योग की परिभाषा में जोड़ दिया।

घेरण्ड संहिता में सबसे पहले शरीर शुद्धि की क्रियाओं की चर्चा की गयी है, जिन्हें षट्कर्म कहा जाता है। इनमें प्रमुख हैँ नेति नाक की सफाई, धौति पेट के ऊपरी भाग और भोजन नली की सफाई वस्ति आँतों की सफाई जिससे हमारे शारीरिक विकार दूर हो जाएँ शारीरिक विकार उत्पन्न न हों, नौलि पेट, गुर्दे इत्यादि का व्यायाम, कपालभाति प्राणायाम का एक प्रकार, और त्राटक मानसिक एकाग्रता की एक विधि। षट्कर्मों या हठयोग के ये छह अंग माने जाते हैं। शरीर शुद्धि की इन क्रियाओं को महर्षि घेरण्ड ने योग का पहला आयाम माना है। इसके बाद आसनों की चर्चा की है।

महर्षि घेरण्ड ने मुख्यत ऐसे ही आसनों की चर्चा की है, जिनसे शरीर को दृढ़ता एवं स्थिरता प्राप्त होती है। यहाँ पर भी आसनों का उद्देश्य शरीर पर पूर्ण नियन्त्रण के पश्चात् ऐसी स्थिति को प्राप्त करना है, जिसमें शारीरिक क्लेश, या दर्द उत्पन्न न हो। तीसरे आयाम के अन्तर्गत वे मुद्राओं की चर्चा करते हैं। मुद्राएँ अनेक प्रकार की होती हैं। महर्षि घेरण्ड ने पचीस मुद्राओं का वर्णन किया है, जिनके द्वारा हमारे भीतर प्राणशक्ति के प्रवाह को नियन्त्रित किया जा सकता है। उनका कहना है कि प्राण हमारे शरीर के भीतर शक्ति और ताप उत्पन्न करते हैं। उच्च साधना में जब व्यक्ति लम्बे समय तक एक अवस्था में बैठता है, तो उसके शरीर से गर्मी निकलती है। शरीर का तापमान कम हो जाता है, क्योंकि हमारे भीतर प्राणशक्ति नियन्त्रित नहीं

है। लेकिन मुद्राओं के अभ्यास द्वारा हम प्राणशक्ति या ऊर्जा को अपने शरीर में वापस खींच लेते हैं, उसे नष्ट नहीं होने देते। प्राण को शरीर के भीतर रोकने के लिए महर्षि घेरण्ड ने मुद्राओं का वर्णन किया है।

मुद्राओं के बाद चौथे आयाम के रूप में उन्होंने इस उद्देश्य के साथ प्रत्याहार का वर्णन किया है कि जब शरीर शान्त और स्थिर हो जाए प्राणों का व्यय न हो, वे अनियन्त्रित न रहें, हमारे नियन्त्रण में आ जायें, तब मन स्वत अन्तर्मखी हो जाएगा। पहले हम अपने शरीर को शुद्ध कर लेते हैं। शरीर के विकारों को हटा देते हैं। उसके बाद आसन में स्थिरता प्राप्त करते हैं। तत्पश्चात् प्राण को सन्तुलित एवं नियन्त्रित करते हैं, तो चौथे में मन स्वाभाविक रूप से अन्तर्मखी हो जाता है। प्रत्याहार के बाद पाँचवें आयाम में उन्होंने प्राणायाम के अभ्यास को जोड़ा है। प्राणायाम के जितने अभ्यास घेरण्ड संहिता में बतलाए गये हैं, उनका सम्बन्ध मन्त्रों के साथ है कि यदि व्यक्ति प्राणायाम करे तो मन्त्रों के साथ। प्राणायाम के अभ्यास में हम श्वास प्रश्वास को अन्दर बाहर जाते हुए देखते हैं और उनकी लम्बाई को समान बनाते हैं। महर्षि घेरण्ड ने भी यही पद्धति अपनायी है, लेकिन गिनती के स्थान पर मन्त्रों का प्रयोग किया है। उनका कहना है कि प्रत्याहार की अवस्था में, जब मन अन्तर्मुखी और केन्द्रित हो रहा हो, उस समय सक्ष्म अवस्था में प्राणों को जाग्रत करना सरल है। उस अवस्था में प्राणों की जाग्रति और मन को अन्तर्मुखी बनाने के लिए परिश्रम नहीं करना पड़ता। प्रत्याहार के बाद स्वाभाविक रूप से सूक्ष्म स्तर के अनुभव, सूक्ष्म जगत् की अनुभूतियाँ होंगी और आप प्राण को जाग्रत कर पायेंगे।

मन्त्र के प्रयोग को जोड़कर उन्होंने प्राणायाम के अभ्यास को और शक्तिशाली बना दिया है, क्योंकि जब हम श्वास के साथ मन्त्र जपते है तो उसके स्पन्दन का प्रभाव पड़ता है, जिससे एकाग्रता का विस्तार होता और प्राण के क्षेत्र में शक्ति उत्पन्न होती है, जाग्रत होती है। जिस पर हमारा नियन्त्रण रहता है। वह शक्ति अनियन्त्रित नहीं रहती। इसके बाद छठे आयाम के अन्तर्गत आता है ध्यान प्राण जाग्रत हो जाएँ मन अन्तर्मुखी हो जाए उसके बाद ध्यान अपने आप ही लगता है। उन्होंने ध्यान के तीन प्रकार बतलाए हैं बहिरंग ध्यान, अन्तरंग ध्यान और एकचित्त ध्यान । बहिरंग ध्यान में जगत् और इन्द्रियों द्वारा उत्पन्न अनुभवों के प्रति सजगता, अन्तरंग ध्यान में सूक्ष्म मानसिक स्तरों में उत्पन्न अनुभवों की सजगता और एकचित्त ध्यान में आन्तरिक अनुभूति की जाग्रति होती है। सातवें आयाम में समाधि का वर्णन किया गया है।

इस प्रक्रिया या समूह को उन्होंने एक दूसरा नाम दिया है घटस्थ योग। घटस्थ योग का मतलब हुआ, शरीर पर आधारित योग। घट का अर्थ होता है शरीर। यह शरीर घट है। घट का दुसरा अर्थ होता है घड़ा। शरीर को उन्होंने एक घडे के रूप में देखा, जो पदार्थ बनी हुई एक आकृति है, और परमेश्वर ने उसमें जो कुछ भर दिया है इन्द्रिय कहिए मन कहिए बुद्धि कहिए अहंकार कहिए सब मिलाकर हमारा यह घड़ा बना है ।

अत आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए योग की शुरुआत शरीर से होती है और शरीर के माध्यम से हम अपने मानसिक और भावनात्मक स्तरों को नियन्त्रित करके आध्यात्मिक अनुभूति को जाग्रत कर सकते हैं। यह इनकी मान्यता है।

10.2.1 घेरण्ड संहिता का काल समय –

घेरण्ड संहिता के काल के विषय में भी बहुत सारे विद्वानों के अलग अलग मत हैं। उन सभी मतों के बीच इसका काल 17 वीं शताब्दी के आसपास का माना जाता है।

10.2.2 घेरण्ड संहिता के योग का उद्देश्य –

महर्षि घेरण्ड अपनी योग विद्या का उपदेश तत्त्व ज्ञान की प्राप्ति के लिए करते हैं। इसमें योग को सबसे बड़ा बल बताया है। साधक इस योगबल से ही उस तत्त्वज्ञान की प्राप्ति करता है।

10.2.3 घेरण्ड संहिता में योग का स्वरूप –

घेरण्ड संहिता में योग को सबसे बड़ा बल मानते हुए तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के लिए इसका उपदेश दिया गया है। इसके योग को घटस्थ योग के नाम से भी जाना जाता है । इसके सात (7) अध्यायों में योग के सात ही अंगों की चर्चा की गई है। जो इस प्रकार हैं-

शाोधनं दृढता चौव स्थैर्यं धैर्य च लाघवम्।
प्रत्यक्ष च निर्लिप्तं च घटस्य सप्तसाधनम् ।। घे.सं. 9

शोधन, दृढ़ता, स्थिरता, धीरता, लघुता, प्रत्यक्ष तथा निर्लिप्तता। इन सातों के लिए उयायरूप मे शरीर शोधन के सात साधनो को कहा गया है।

षटकार्मणा शोधनं च आसनेन् भवेद्दृढम् ।
मुद्रया स्थिरता चौव प्रत्याहारेण धीरता।।
प्राणायामाँल्लाघवं च ध्यानात्प्रत्क्षमात्मानः।
समाधिना निर्लिप्तिं च मुक्तिरेव न संशय।। घे.सं. 10/11

अर्थात् षटकर्मों से शरीर का शोधन, आसन से दृढ़ता. मुद्रा से स्थिरता, प्रत्याहार से धीरता, प्राणायाम से लाघवं (हल्कापन), ध्यान से आत्मसाक्षात्कार तथा समाधि से निर्लिप्तभाव प्राप्त करके मुक्ति अवश्य ही हो जाएगी, इसमे संदेह नहीं है।

- षट्कर्म
- आसन
- मुद्रा
- प्रत्याहार

- प्राणायाम
- ध्यान
- समाधि ।

अब हम सभी प्रकारों का संक्षिप्त वर्णन करेंगें ।

10.2.4 प्रथम अध्याय –

घेरण्ड संहिता में सबसे पहले महर्षि घेरण्ड व चण्डकपालि राजा के बीच में संवाद (बातचीत) को दिखाया गया है । राजा चण्डकपालि महर्षि घेरण्ड को प्रणाम करते हुए तत्त्वज्ञान को प्राप्त करवाने वाली योग विद्या को जानने की इच्छा व्यक्त करते हैं। तब महर्षि घेरण्ड ने उनकी विनती को स्वीकार करके उनको योग विद्या का ज्ञान देना प्रारम्भ किया ।

- **घटस्थ योग –**

एकदा चण्डकापालिर्गत्वा घेरण्डकुट्टीरम्य
प्राणम्य विनयादभक्त्या घेरण्डं परिप्रच्छति। (1)

एक बार राजा चंडकपाली ऋषि घेरंड के आश्रम में गए और पूरी विनम्रता और भक्ति के साथ उन्हें प्रणाम करके उनसे एक प्रश्न पूछा।

घटस्थयोगम् योगेश तत्वज्ञानस्य कारणम्य
इदानीं श्रोतुमिच्छामि योगेश्वर वद प्रभो। (2)

हे योगेश्वर, योग के देवता! मैं घटस्थ योग सीखना चाहता हूं, जो आत्म–साक्षात्कार का एक साधन है। हे योगेश्वर! हे भगवान! कृपया मुझे इसके बारे में बताएं।

राजा ऋषि घेरंडा को योग के देवता योगेश्वर कहकर संबोधित करते हैं, इस प्रकार उन्हें योग के संस्थापक और योग के शिक्षक के रूप में स्वीकार किया जाता है। योग. तब राजा चंदकपाली ने ऋषि घेरंडा से उन्हें घटस्थ योग की शिक्षा समझाने के लिए कहा जिसके द्वारा व्यक्ति आत्म–साक्षात्कार प्राप्त कर सकता है।

चंदकपाली एक राजा थे। एक राजा होने के बावजूद, वह ऋषि घेरंड के पास गए और उनसे सवाल पूछा योग, जो शरीर पर आधारित है, हमें अंतिम सत्य जानने में कैसे मदद कर सकता है?৬ घटस्थयोगम् योगेश तत्वज्ञानस्य कारणम् दरअसल यहां चार प्रश्न शामिल हैं
सबसे पहले, आत्म–साक्षात्कार क्या है?
दूसरा, घटस्थ योग क्या है?

तीसरा, इस योग का अभ्यास कैसे करना चाहिए?
चौथा, क्या योग से ज्ञान प्राप्त करना संभव है?

मनुष्य के शरीर को कच्चा घट अर्थात घड़ा मानते हुए उस कच्चे घड़े रूपी शरीर को योग रूपी अग्नि द्वारा परिपक्व (मजबूत) बनाने के लिए योग के सात साधनों का उपदेश दिया है ।

10.2.5 सप्त योग का लाभ –

योग के सप्त साधनों का वर्णन करते हुए उनके लाभों की चर्चा भी इसी अध्याय में की गई है । योग के सभी अंगों के लाभ इस प्रकार हैं-

- षट्कर्म = शोधन
- आसन = दृढ़ता
- मुद्रा = स्थिरता
- प्रत्याहार = धैर्य
- प्राणायाम = लघुता हल्कापन
- ध्यान = प्रत्यक्षीकरण साक्षात्कार
- समाधि = निर्लिप्तता अनासक्त अवस्था

10.2.6 षट्कर्म वर्णन –

वैसे तो षट्कर्म मुख्य रूप से छः होते हैं । लेकिन आगे उनके अलग, अलग विभाग भी किये गए हैं। जिनका वर्णन इस प्रकार है

धौति – धौति के मुख्य चार भाग माने गए हैं । और आगे उनके भागों के भी विभाग किये जाने से उनकी कुल संख्या 13 हो जाती है ।

- धौति के चार प्रकार –

1. अन्तर्धौति
2. दन्त धौति
3. हृद्धधौति

4. मूलशोधन ।

- अन्तर्धौति के प्रकार –

1. वातसार धौति
2. वारिसार धौति
3. अग्निसार धौति
4. बहिष्कृत धौति ।

- दन्तधौति के प्रकार –

1. दन्तमूल धौति
2. जिह्वाशोधन धौति
3. कर्णरन्ध्र धौति (दोनों कानों से)
4. कपालरन्ध्र धौति ।

- हृद्धधौति के प्रकार –

1. दण्ड धौति
2. वमन धौति
3. वस्त्र धौति ।

- मूलशोधन – मूलशोधन धौति के अन्य कोई भाग नहीं किए गए हैं ।

- बस्ति – बस्ति के दो प्रकार होते हैं

1. जल बस्ति
2. स्थल बस्ति ।

- नेति – नेति क्रिया के दो भाग किये गए हैं

1. जलनेति
2. सूत्रनेति

- लौलिकी – लौलिकी अर्थात नौलि क्रिया के तीन भाग माने जाते हैं

1. मध्य नौलि
2. वाम नौलि
3. दक्षिण नौलि ।

- त्राटक – त्राटक के अन्य विभाग नहीं किये गए हैं । वैसे इसके तीन भाग होते हैं लेकिन वह अन्य योगियों के द्वारा कहे गए हैं।

- कपालभाति :– कपाल का अर्थ मस्तक होता है और भाति का अर्थ होता है प्रकाशित करना, अर्थात् मस्तिष्क को प्रकाशित करने की क्रिया कपालभाति है। कपालभाति के तीन भाग होते हैं

1. वातक्रम कपालभाति
2. व्युत्क्रम कपालभाति
3. शीतक्रम कपालभाति

10.2.7 द्वितीय अध्याय –

घेरण्ड संहिता के दूसरे अध्याय में सप्तांग योग के दूसरे अंग अर्थात् आसन का वर्णन किया गया है। घेरण्ड ऋषि ने आसनों के बत्तीस (32) प्रकारों को माना है । घेरण्ड संहिता के अनुसार आसन करने से साधक के शरीर में दृढ़ता (मजबूती) आती है । अब आसनों के क्रम को प्रारम्भ करते हैं ।

आसनानि समस्तानि यावन्तो जीवजन्तवः ।
चतुरशीतिलक्षाणि शिवेन कथितानि च ।। 1 ।।
तेषां मध्ये विशिष्टानि षोडशोनं शतं कृतम् ।
तेषां मध्ये मर्त्यलोके द्वात्रिंशदासनं शुभम् ।। 2 ।।

भावार्थ :– इस पृथ्वी पर जितने भी जीवजन्तु अर्थात् प्राणी हैं आसनों की संख्या भी उतनी ही मानी गई है। प्राचीन काल में भगवान शिव ने उनमें से चौरासी लाख (8400000) आसनों को माना है । उसके बाद अर्थात् मध्यकाल में चौरासी सौ (8400) आसनों को प्रमुख माना गया था । जिनमें से मृत्युलोक अर्थात् वर्तमान समय में मात्र बत्तीस (32) आसनों को ही मनुष्य के लिए शुभ अर्थात् कल्याणकारी माना गया है ।

आसनों की संख्या के विषय में सभी योग आचार्यों के अलग दृ अलग मत हैं। जिनमें महर्षि घेरण्ड ने घेरण्ड संहिता में बत्तीस (32) आसनों का, स्वामी स्वात्माराम ने हठ प्रदीपिका में पन्द्रह (15) आसनों का, योगी

श्रीनिवासन ने हठ रत्नावली में छत्तीस (36) आसनों का, योगी गुरु गोरक्षनाथ ने सिद्ध सिद्धान्त पद्धति में मात्र तीन (3) आसनों का, शिव संहिता में मात्र चार (4) आसनों का, योगदर्शन के व्यास भाष्य में तेरह (13) आसनों का वर्णन है। ऊपर वर्णित आसनों की संख्या को सभी विद्यार्थी अच्छे से याद कर लें । जिनका वर्णन करना आवश्यक है। जैसे– आसनों की संख्या किनके बराबर मानी गई है ? जिसका उत्तर है सभी जीवजन्तुओं के बराबर। प्राचीन काल में भगवान शिव ने आसनों के कितने प्रकार (संख्या) माने हैं ? जिसका उत्तर है चौरासी लाख। मध्यकाल में आसनों के कितने प्रकारों को मान्यता मिली है ? जिसका उत्तर है चौरासी सौ। मृत्युलोक अर्थात् वर्तमान समय में, महर्षि घेरण्ड या घेरण्ड संहिता में आसनों की कितनी संख्या मानी गई है? जिसका उत्तर है बत्तीस।

10.2.8 बत्तीस आसनों के नाम–

सिद्धं पद्मं तथा भद्रं मुक्तं वज्रञ्च स्वस्तिकम् ।
सिंहञ्च गोमुखं वीरं धनुरासनमेव च ।। 3 ।।
मृतं गुप्तं तथा मत्स्यं मत्स्येन्द्रासनमेव च ।
गोरक्षं पश्चिमोत्तानं उत्कटं संकटं तथा ।। 4 ।।
मयूरं कुक्कुटं कुर्मं तथाचोत्तानकूर्मकम् ।
उत्तान मण्डूकं वृक्षं मण्डूकं गरुडं वृषम् ।। 5 ।।
शलभं मकरं चोष्ट्रं भुजङ्गञ्चयोगासनम् ।
द्वात्रिंशदासनानि तु मर्त्यलोके हि सिद्धिदम् ।। 6 ।।

भावार्थ – इस मृत्युलोक अर्थात् वर्तमान समय में निम्न बत्तीस आसन ही मनुष्य को सिद्धि प्राप्त करवाने वाले हैं। जिनका वर्णन इस प्रकार है – 1. सिद्धासन, 2. पद्मासन, 3. भद्रासन, 4. मुक्तासन, 5. वज्रासन, 6. स्वस्तिकासन, 7. सिंहासन, 8. गोमुखासन, 9. वीरासन, 10. धनुरासन, 11. मृतासन ध शवासन, 12. गुप्तासन, 13. मत्स्यासन, 14. मत्स्येन्द्रासन, 15. गोरक्षासन, 16. पश्चिमोत्तानासन, 17. उत्कट आसन, 18. संकट आसन, 19. मयूरासन, 20. कुक्कुटासन, 21. कूर्मासन, 22. उत्तानकूर्मासन, 23. मण्डूकासन, 24. उत्तान मण्डूकासन, 25. वृक्षासन, 26. गरुड़ासन, 27. वृषासन, 28. शलभासन, 29. मकरासन, 30. उष्ट्रासन, 31. भुजंगासन व 32. योगासन ।

महर्षि घेरण्ड ने सिंहासन को सभी व्याधियों (रोगों) को समाप्त करने वाला आसन माना है ।

10.2.9 तृतीय अध्याय –

घेरण्ड संहिता के तीसरे अध्याय का विषय मुद्रा है। जिसमें ऋषि घेरण्ड ने सिद्धियों की प्राप्ति के लिए पच्चीस मुद्राओं का वर्णन किया है । मुद्रा के फल को बताते हुए कहा है कि मुद्राओं का अभ्यास करने से साधक को स्थिरता प्राप्त होती है ।

- **मुद्रा वर्णन (25)**

महामुद्रा नभोमुद्रा उड्डीयानं जलन्धरम् ।
मूलबन्धं महाबन्धं महावेधश्च खेचरी ।। 1 ।।
विपरीतकरी योनिर्वज्रोली शक्तिचालिनी ।
तडागी माण्डुकी मुद्रा शाम्भवी पचंधारणा ।। 2 ।।
अश्विनी पाशिनी काकी मातङ्गी च भुजङ्गिनी ।
पञ्चविंशति मुद्राणि सिद्धदानीह योगिनाम् ।। 3 ।।

भावार्थ – महामुद्रा, नभोमुद्र, उड्डीयान, जालन्धर, मूलबन्ध, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, विपरीतकरणी, योनि, वज्रोली, शक्तिचालिनी, तडांगी, मांडवी, शाम्भवी, पञ्चधारणा (पार्थिवी धारणा, आम्भसी धारणा, आग्नेयी धारणा, वायवीय धारणा, आकाशी धारणा), अश्वनी, पाशिनी, काकी, मातङ्गी और भुजंगिनी यह पच्चीस (25) मुद्राएँ योगियों को सिद्धियाँ प्रदान करवाने वाली हैं।

तीसरे अध्याय में ऋषि घेरण्ड ने पच्चीस मुद्राओं का वर्णन किया है। जो साधक को अनेक प्रकार की सिद्धियाँ प्रदान करती हैं। इन मुद्राओं में पाँच प्रकार की धारणाओं का भी वर्णन किया गया है। जो कि मुद्राओं के ही प्रकार हैं। परीक्षा में इससे सम्बंधित भी पूछा जाता है कि घेरण्ड संहिता में कितनी धारणाओं का वर्णन किया गया है? जिसका उत्तर है पाँच। इसके अलावा यह भी पूछा जा सकता है कि धारणाओं का वर्णन सप्तांग योग अथवा घेरण्ड संहिता के किस अंग में किया गया है? जिसका उत्तर है योग के तीसरे अंग तीसरे अध्याय में वर्णित मुद्राओं में। इसके साथ ही मुद्राओं में तीन प्रकार के बन्धों का भी वर्णन किया गया है :– उड्डीयान बन्ध, जालन्धर बन्ध व मूलबन्ध। इन तीनों बन्धों को एक साथ लगाने को महाबन्ध का नाम दिया गया है।

- **मुद्राओं का फल**

मुद्राणां पटलं देवि कथितं तव सन्निधौ ।
येन विज्ञातमात्रेण सर्वसिद्धिः प्रजायते ।। 4 ।।

भावार्थ – हे देवी! (यहाँ पर देवी शब्द भगवान शिव की ओर से माता पार्वती के लिए कहा गया है) मैंने तुम्हारे सम्मुख (सामने) जिन मुद्राओं के समूह का वर्णन किया है। इन सभी को केवल जानने मात्र से ही साधक को सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

- **मुद्राओं की गोपनीयता**

गोपनीयं प्रयत्नेन न देयं यस्य कस्यचित् ।

प्रीतिदं योगिनाञ्चौव दुर्लभं मरुतामपि ।। 5 ।।

भावार्थ – इन सभी मुद्राओं को पूरी तरह से गोपनीय रखना चाहिए। चाहे जिसको भी इनका ज्ञान नहीं देना चाहिए। यह मुद्राएँ देवताओं के लिए भी दुर्लभ (प्राप्त करना कठिन हैं) हैं। इनके अभ्यास से योगी साधक को आनन्द की प्राप्ति होती है।

विशेष – यहाँ पर चाहे जिसको भी इनका ज्ञान न देने से अभिप्राय यह है कि इनका ज्ञान हमेशा ही योग्य साधक को देना चाहिए। जो साधक इनका ज्ञान प्राप्त करने के लायक नहीं है। उसे कभी भी इनका ज्ञान नहीं देना चाहिए। इस प्रकार अयोग्य व्यक्ति को दिया गया ज्ञान कभी भी फलीभूत नहीं होता। अतः योग्य साधक को ही इनका उपदेश देना चाहिए।

10.3.10 चतुर्थ अध्याय–

चौथे अध्याय में महर्षि घेरण्ड ने प्रत्याहार का वर्णन किया है। प्रत्याहार को इन्होंने योग के चौथे अंग के रूप में माना है। प्रत्याहार के पालन से साधक को धैर्य की प्राप्ति होती है अर्थात् धैर्य को प्रत्याहार का फल बताया गया है।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि प्रत्याहारकमुत्तमम् ।

यस्य विज्ञानमात्रेण कामादिरिपुनाशनम् ।।1।।

भावार्थ – इसके बाद (मुद्राओं के बाद) अब मैं प्रत्याहार के विषय में कहता हूँ। जिसके ज्ञान को जानने मात्र से ही (केवल जानने से ही) काम वासना आदि शत्रु नष्ट हो जाते हैं।

विशेष – प्रत्याहार से काम वासना से सम्बंधित सभी विकार नष्ट हो जाते हैं।

यतो यतो मनश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।

ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ।। 2 ।।

भावार्थ – मन की चंचल प्रवृत्ति होने के कारण यह कहीं– कहीं घूमता रहता है। अतः यह चंचल मन जहाँ–जहाँ भी जाता है। उसे वहीं से रोककर सदा अपने वश में अर्थात् अपने नियंत्रण में रखना चाहिए।

पुरस्कारं तिरस्कारं सुश्राव्यं भावमायकम् ।

मनस्तस्मान्नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ।। 3 ।।

भावार्थ – सम्मान हो या अपमान, कानों के लिए प्रशंसा (अच्छा) हो या निन्दा (बुरा), इन सभी से मन को हटाकर अपने नियंत्रण में रखना चाहिए।

विशेष – सम्मान व अपमान और प्रशंसा व निन्दा दोनों ही अवस्थाओं में अपने को समान रखते हुए अपने मन को नियंत्रित करना चाहिए। इस श्लोक में कर्ण अर्थात् कान नामक इन्द्री के विषय को बताया गया है।

सुगन्धो वापि दुर्गन्धो घ्राणेषु जायते मनः ।

तस्मात् प्रत्याहरेदेतदात्मन्येव वशं नयेत् ।। 4 ।।

भावार्थ – सुगन्ध हो या दुर्गन्ध नासिका द्वारा दोनों को ही ग्रहण किया जाता है। सुगन्ध व दुर्गन्ध दोनों में ही मन स्वयं ही चला जाता है । अतः मन को वहाँ से हटाकर अपने नियंत्रण में रखना चाहिए ।

विशेष – इस श्लोक में नासिका नामक इन्द्री के विषय को बताया गया है।

मधुराम्लकतिक्तादिरसं गतं यदा मनः ।

तस्मात् प्रत्याहरेदेतदात्मन्येव वशं नयेत् ।। 5 ।।

भावार्थ – जब हमारा मन मीठे, खट्टे, तीखे आदि रसों में जाता है। तब उसे वहाँ से भी हटाकर अपने नियंत्रण में रखना चाहिए ।

विशेष – इस श्लोक में जिह्वा (जीभ) नामक इन्द्री के विषय को बताया गया है। प्रत्याहार के इस पूरे अध्याय में मन को अपने नियंत्रण में रखने की ही बात कही गई है। यह घेरण्ड संहिता का सबसे छोटा अध्याय है। जिसमें कुल पाँच ही श्लोक हैं।

प्रत्याहार में मन को अपनी इन्द्रियों से विमुख करने का ही उपदेश दिया जाता है। यहाँ पर एक विशेष बात यह है कि इसमें केवल तीन इन्द्रियों (कान, नाक व जीभ) के ही विषयों से मन को हटाकर अपने नियंत्रण में रखने का उपदेश दिया गया है। जबकि कुल ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच होती हैं। यहाँ पर त्वचा व आँख के विषय में चर्चा नहीं की गई है। यह विद्वानों के लिए चर्चा का विषय है। परीक्षा की दृष्टि से भी इस प्रकार का प्रश्न

पूछा जा सकता है कि प्रत्याहार के प्रकरण में किन किन ज्ञानेंद्रियों की चर्चा की गई है? उत्तर है कान, नासिका व जीभ। इसके अलावा यह भी पूछा जा सकता है कि किस–किस ज्ञानेंद्रियों के विषयों की चर्चा नहीं की गई है? उत्तर है त्वचा व आँख।

10.3.11 पंचम अध्याय –

पाँचवें अध्याय में मुख्य रूप से प्राणायाम की चर्चा की गई है। लेकिन प्राणायाम की चर्चा से पहले आहार के ऊपर विशेष बल दिया गया है। मुख्य रूप से तीन प्रकार के आहार की चर्चा की गई है। जिसमें आहार की तीन श्रेणियाँ बताई हैं।

मिताहार – ग्राह्य या हितकारी आहार, अग्राह्य निषिद्ध आहार।

इनमें से मिताहार को योगी के लिए श्रेष्ठ आहार माना है। ग्राह्य या हितकारी आहार में वें खाद्य पदार्थ शामिल किये गए हैं जो शीघ्र पचने वाले व मन के अनुकूल होते हैं। निषिद्ध आहार को सर्वथा त्यागने की बात कही गई है।

- **नाड़ी शोधन क्रिया –**

घेरण्ड संहिता में भी प्राणायाम से पूर्व नाड़ी शोधन क्रिया के अभ्यास की बात कही गई है।

- **प्राणायाम चर्चा –**

पाँचवें अध्याय का मुख्य विषय प्राणायाम ही है। यहाँ पर भी प्राणायाम को कुम्भक कहा है। इस ग्रन्थ में भी आठ कुम्भकों अर्थात प्राणायामों का वर्णन किया गया है। जो निम्न हैं–
सहित (सगर्भ व निगर्भ) 2. सूर्यभेदी, 3. उज्जायी, 4. शीतली, 5. भस्त्रिका, 6. भ्रामरी, 7. मूर्छा, 8. केवली।

10.3.12 षष्ठ अध्याय–

छटे अध्याय में ध्यान की चर्चा की गई है। घेरण्ड संहिता में तीन प्रकार के ध्यान का उल्लेख मिलता है।
घेरण्डसंहिता मे महर्षि घेरण्ड ने ध्यान के तीन प्रकार बताए गए हैं–

स्थूलं ज्योतिस्तथा सूक्ष्म ध्यानस्थ त्रिविधं विंदुः ।
स्थूलं मूर्तिमयं प्रोक्तं ज्योतिस्तेजोमयं तथा।

सूक्ष्म बिन्दुमयं ब्रह्म कुण्डली पर देवता। । घे.सं. 6

1.स्थूल ध्यान, 2. ज्योतिर्ध्यान 3. सूक्ष्म ध्यान ।
इनमें सबसे उत्तम ध्यान सूक्ष्म ध्यान को माना गया है।

(क) स्थूल ध्यान– हृदय या सहस्त्रार चक्र से गुरु या इष्ट देव के ध्यान को स्थूल ध्यान कहा गया है।

(ख) ज्योतिर्ध्यान– मूलाधार से आत्मा का निवास स्थान है। वहॉ तेजोमय ब्रहा का ध्यान किया जाता है। भ्रूमध्य में प्रकाश पुंज के रूप मे प्रणव की स्थिति मानी गई है। वहां भी ध्यान करना ज्योतिर्ध्यान कहलाता है। इसी को प्रणव ध्यान भी कहते हैं।

(ग) सूक्ष्म ध्यान– शाम्भवी मुद्रा में कुण्डलिनी शक्ति के ध्यान को सूक्ष्म ध्यान कहा गया है ।

1.स्थूल ध्यान, 2. ज्योतिर्ध्यान 3. सूक्ष्म ध्यान।
इनमें सबसे उत्तम ध्यान सूक्ष्म ध्यान को माना गया है।

स्थूल ध्यान विधि वर्णन

स्वकीयहृदये ध्यायेत् सुधासागरमुत्तमम्।
तन्मध्ये रत्नद्वीपं तु सुरत्नं वालुकामयम्।। 2 ।।
चतुर्दिक्षु निम्बतरुः बहुपुष्पसमन्वितः।
निम्बो पवनसं कूलेवेष्टितं परिखा इव।। 3 ।।
मालतीमल्लिकाजातीकेशरैश्चम्पकैस्तथा।
पारिजातैः स्थलपद्मैर्गन्धामोदितदिङ्मुखैः।। 4 ।।
तन्मध्ये संस्मरेद्योगी कल्पवृक्षं मनोहरम्।
चतुः शाखाचतुर्वेदं नित्यपुष्पफलान्वितम्।। 5 ।।
भ्रमराः कोकिलास्तत्र गुञ्जन्ति निगदन्ति च।
ध्यायेत्तत्र स्थिरो भूत्वा महामाणिक्यमण्डपम्।। 6 ।।
तन्मध्ये तु स्मरेद्योगी पर्यङ्कं सुमनोहरम्।
तत्रेष्टदेवतां ध्यायेद् यद्धयानं गुरु भाषितम्।। 7 ।।
यस्य देवस्य यद्रूपं यथा भूषणवाहनम् ।

तद्रूपं ध्यायते नित्यं स्थूलध्यानमिदं विदुः।। 8 ।।

भावार्थ – अपने हृदय प्रदेश में अमृत रूपी उत्तम समुद्र का ध्यान करते हुए उसके बीच (समुद्र के) में रत्नों से परिपूर्ण बालुकामय (बालु रेत के) के द्वीप अर्थात् टापू का ध्यान करना चाहिए।

उसके चारों ओर बहुत सारे फलों से परिपूर्ण अर्थात् लदे हुए नीम के पेड़ हों और वह नीम के बाग उसके चारों ओर खाई के समान प्रतीत हो रहे हों तथा मालती, मल्लिका, चमेली, केशर, चम्पा, स्थल कमल, व हरश्रृंगार के फूलों की सुगन्ध सभी दिशाओं को सुगन्धित कर रही हैं।

इन सभी के बीच में ही योगी द्वारा एक अत्यंत मनमोहक कल्पवृक्ष का स्मरण अथवा ध्यान करे। जिसकी अनेक शाखाओं से चारों वेद रूपी ज्ञान के फल निरन्तर फलित हो (प्रतिदिन बढ़ते हों) रहे हों।

वहाँ पर (उस उद्यान या बाग में) भँवरे व कोयल अपनी मधुर गुञ्जार (गायन) कर रहे हों। वहीं पर अपने चित्त को एक जगह पर स्थिर करके मणियों से परिपूर्ण मण्डप का ध्यान करना चाहिए।

योगी को उसके बीच में मनमोहक पल का स्मरण अथवा ध्यान करना चाहिए। साथ ही गुरु ने जिस भी देवता का ध्यान करने की बात कही है, उसी का ध्यान करे।

जिस देवता का जो भी आभूषण और वाहन बताया गया है। ठीक उसी आभूषण व वाहन का ध्यान करना स्थूल ध्यान होता है।

10.3.13 सप्तम अध्याय –

घेरण्ड संहिता का यह अन्तिम अध्याय है। जिसमें महर्षि घेरण्ड ने अपने सप्तांग योग के अन्तिम अंग अर्थात् समाधि योग का वर्णन किया है। घेरण्ड संहिता के प्रत्येक अध्याय में योग के एक अंग का वर्णन किया गया है। जिसके अनुसार सात अध्यायों के माध्यम से इनका सप्तांग योग पूर्ण होता है। जिस प्रकार अन्य योग आचार्यों ने समाधि को योग के अन्तिम अंग के रूप माना है। ठीक उसी प्रकार समाधि को योग का अन्तिम अंग माना है। इन्होंने समाधि के छह (06) प्रकार माने हैं। जिनमें क्रमशः ध्यानयोग समाधि, नादयोग समाधि, रसानन्द योग समाधि, लयसिद्धि योग समाधि, भक्तियोग समाधि व राजयोग का वर्णन मिलता है। समाधि योग के फल के रूप में साधक को निर्लिप्तता (पूर्ण मुक्ति) की प्राप्ति होती है। समाधि को सर्वोपरि मानते हुए महर्षि घेरण्ड कहते हैं कि यह साधना का अन्तिम पड़ाव है। इसके बाद साधक मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। जिससे वह जन्म–मरण के क्रम से पूरी तरह मुक्त हो जाता है।

समाधिश्च परो योगो बहुभाग्येन लभ्यते।
गुरोरू कृपा प्रसादेन प्राप्यते गुरुभक्तित।। 1 ।।

भावार्थ – यह समाधि नामक श्रेष्ठ योग बहुत बड़े भाग्य से प्राप्त होता है। जो साधक गुरु की भक्ति करते हैं और जिनके ऊपर गुरु की कृपा रुपी प्रसाद अथवा आशीर्वाद होता है। उन्ही को इस समाधि योग नामक श्रेष्ठ योग की प्राप्ति होती है।

घेरण्डसंहिता में महर्षि घेरण्ड ने समाधि के छह भेद कहे हैं–

इस प्रकार साधनभूत सप्तांग योग का वर्णन करके घेरण्ड ऋषि ने योग के उद्देश्य मुक्ति के लक्ष्य को प्रस्तुत किया है।

ध्यानयोग समाधि, 2. नादयोग समाधि, 3. रसानन्द योग समाधि, 4. लययोग समाधि, 5. भक्तियोग समाधि, 6. राजयोग समाधि।

- ध्यान योग समाधि– शाम्भबी मुद्रा से यह सिध्द होती है।
- नाद योग समाधि– भ्रामरी प्राणायाम के अभ्यास से सिद्ध होती है।
- रसानन्द योग समाधि– खेचरी मुद्रा के आभ्यास से सिध्द होती है।
- लयसिद्धि योग समाधि– यह योनि मुद्रा से सिद्ध होती है।
- भक्तियोग समाधि– ईश्वर के प्रति अत्नन्यश्रद्धा व अनन्य प्रेम से यह समाधि सिध्द होती है।
- राजयोग समाधि– मन के नियन्त्रण से सिध्द होती है।

इस प्रकार साधनभूत सप्तांग योग का वर्णन करके घेरण्ड ऋषि ने योग के उद्देश्य मुक्ति के लक्ष्य को प्रस्तुत किया है।

10.6 अभ्यास प्रश्न

सत्य असन्य

- राजा चण्किापालि प्रश्न पूछते है और महर्षि घेरण्ड उत्तर देते है।
- घेरंड संहिता में 35 आसनों का वर्णन है।
- घेरंड संहिता में सात अध्याय है।
- घेरेंड संहिता में अष्टांग योग का वर्णन है।
- चौथे अध्याय में महर्षि घेरण्ड ने प्रत्याहार का वर्णन किया है।

10.7 सारांश

आपने प्रस्तुत इकाई में घेरंड संहिता का सामान्य परिचय प्राप्त किया जिसमे राजा चण्किापालि प्रश्न पूछते है और महर्षि घेरण्ड उत्तर देते है। इस प्रश्न उत्तर की शैली में पूरी घेरण्ड संहिता लिखी गई है। महर्षि घेरण्ड कौन थे इस बात का किसी को पता नहीं है सर्वप्रथम प्रति 1804 की है। मालुम पड़ता है कि महर्षि घेरण्ड एक वैष्णव संत रहे होगे उन्होंने कई श्लोकों में विष्णु की चर्चा की है। शायद ऐसा हो कि वैष्णव सन्त होने के साथ–साथ इन्होंने हठयोग को अपनाया हो। घेरण्ड संहिता को लोग सप्तांग योग के नाम से भी जानते है।

10.8 शब्दावली

- लाघव– हल्कापन
- ग्राह्य – ग्रहण किया जाने योग्य
- घट– घडा
- वृहद बड़ा, विस्तार
- लाघव – हल्कापन
- पूरक – श्यास लेना
- रेचक श्वास छोडना
- कुम्मक श्वास रोकना (हठप्रदीपिका में प्राणायाम को कुम्भक कहा है)
- शोधन शुद्धिकरण, सफाई करना

10.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

- महर्षि घेरण्ड (2003) घेरण्ड संहिता कैवल्यधाम लोनावाला
- घेरेंड संहिता ,स्वामी निरंजनानंद, योग पब्लीलिकेशंस ट्रस्ट, मुंगेर बिहार
- घेरेंड संहिता, राघवेंद्र शर्मा राघव, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान

10.10 निबंधात्मक प्रश्न

- घेरण्ड संहिता के वर्ण्य विषयों की विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए।

- घेरंड संहिता में वर्णित षटकर्म का विस्तृत वर्णन कीजिए ।
- घेरंड संहिता में वर्णित प्राणायामो का वर्णन कीजिए।

इकाई – 11 हठप्रदीपिका का सामान्य परिचय

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 हठ योग प्रदीपिका के रचयिता स्वामी स्वात्माराम

11.3 हठप्रदीपिका का काल (समय)

11.4 हठप्रदीपिका में योग का स्वरूप

11.5 हठयोग साधना का लक्ष्य

11.6 हठप्रदीपिका में योग के अंग

11.7 क्रियाओं की गोपनीयता

11.8 मृत्यु पर विजय प्राप्त करना

11.9 प्रथम उपदेश (पहला अध्याय)

- 11.9.1 हठयोग साधना के लिए उपयुक्त स्थान
- 11.9.2 साधक व बाधक तत्त्व
- 11.9.3 यम व नियम का वर्णन
- 11.9.4 आहार की महत्ता

11.10 द्वितीय उपदेश (दूसरा अध्याय)

- 11.10.1 षट्कर्म वर्णन
- 11.10.2 हठ सिद्धि के लक्षण
- 11.10.3 कुम्भक (प्राणायाम) वर्णन

11.11 तृतीय उपदेश (तीसरा अध्याय)

- 11.11.1 मुद्राओं और बंध का वर्णन

11.12 चतुर्थ उपदेश (चौथा अध्याय)

- 11.12.1 आरम्भ अवस्था
- 11.12.2 घाटा अवस्थ
- 11.12.3 परिचय अवस्थ
- 11.12.4 निष्पत्ति अवस्था

11.13 पंचम उपदेश (पाँचवाँ अध्याय)

11.14 अभ्यास प्रश्न

11.15 सारांश

11.16 शब्दा वली

11.17 सन्दर्भ ग्रन्थ

11.18 निबंधात्मक प्रश्न

11.0 उद्देश्य

- प्रस्तुत इकाई में आप हठ प्रदीपिका का के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- हठ प्रदीपिका में हठ योग की साधना के महत्वपूर्ण उद्देश्य की विवेचना कर सकेगें।
- हठयोग के विस्तृत स्वरूप के बारे में अध्ययन करेंगे।
- हठप्रदीपिका में वर्णित साधनाओं को जान सकेंगे।
- हठ प्रदीपिका में आसनों, प्राणायानो और षटकर्म को सरलता से समझ सकेंगे।
- हठयोग के ग्रन्थ में वर्णित मुद्रा, बंध, और नादानुसंधान के विषय में जान सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

हठप्रदीपिका और हठयोग दोनो एक दूसरे के पूरक है। हठयोग की कोई भी की बात बिना हठप्रदीपिका के अधूरी है। योग के ग्रन्थों में इसका स्थान सर्वोपरि है। हठयोग के द्वारा चित्त की वृत्तियों को संसार की ओर जाने से रोकता है और उसे एकाग्रचित्त करने की एक प्राचीन योग साधना पद्धति है, जिसमें सोई कुंडलिनी को जाग्रत कर उसे ऊपर उठाने का प्रयास किया जाता है, और इस कुंडली शक्ति को सभी चक्रों को पार कर सहस्रार चक्र तक ले जाने की प्रक्रिया है। हठयोग प्रदीपिका इस हठ योग का प्रमुख ग्रंथ है।

हठ प्रदीपिका में हठयोग साधना शैव साधना से प्रभावित रही है। इसे सिद्धों और बाद में नाथ संप्रदाय के द्वारा अपनायी गई है। शैव संप्रदाय के साथ बौद्धों ने भी हठयोग की साधना को अपनाया था। यह साधना जितनी पहले प्रासंगिक थी उतनी ही आज भी प्रचलित है। हठ प्रदीपिका के इस ग्रन्थ के रचयिता स्वामी स्वात्माराम हैं।

11.2 हठ योग प्रदीपिका के रचयिता

हठप्रदीपिका ग्रन्थ के रचनाकार स्वामी स्वात्माराम हैं और उन्हें हठयोग के प्रसिद्ध आचार्यों में गणना की जाती है। उन्होंने अपनी अनमोल निधि के माध्यम से योग के विषयों को सरलतम रूप में प्रस्तुत किया है।

हठप्रदीपिका की उपयोगिता वर्तमान समय में भी उसी प्रकार महत्वपूर्ण है जैसे पन्द्रहवीं शताब्दी में थी। आजकल हमारे समाज को हठयोग के ज्ञान की अधिक आवश्यकता है।

11.3 हठप्रदीपिका का काल (समय)

हठप्रदीपिका के काल के विषय में सभी विद्वान एकमत नहीं हैं। सभी ने इसके रचनाकाल के विषय में अपने–अपने मत दिए हैं। मुख्य रूप से विद्वानों ने तेहरवीं (13 वीं) शताब्दी से लेकर अठारहवीं (18वीं) शताब्दी तक के काल को हठप्रदीपिका का काल कहा है। अन्त में सभी विद्वानों के मतों की समीक्षा करके 14 वीं से 15 वीं शताब्दी के मध्यकाल को ही हठप्रदीपिका की उत्पत्ति का काल माना गया है।

11.4 हठप्रदीपिका में योग का स्वरूप

"हठप्रदीपिका" एक हठयोग साधना पद्धति का ग्रन्थ है जिसमें आदि प्रवर्तक भगवान शिव का उल्लेख है। भगवान शिव को आदिनाथ भी कहा जाता है और इसी कारण से इसे नाथयोग या नाथ सम्प्रदाय का योग भी कहा जाता है।

स्वामी स्वात्माराम भी इस नाथ परम्परा के अनुयायी थे और नाथ सम्प्रदाय भारत के मुख्य सन्त सम्प्रदायों में से एक है। भारतवर्ष के विभिन्न क्षेत्रों में नाथ सम्प्रदाय के मंदिर और मठ देखने को मिलेंगे। "हठप्रदीपिका" के प्रारम्भ में हठयोग परम्परा के सिद्धों और आचार्यों को स्वामी स्वातमाराम ने नमस्कार किया और उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त की गई है।

11.5 हठयोग साधना का लक्ष्य

हठयोग साधना का उद्देश्य राजयोग की प्राप्ति है। हठयोग और राजयोग एक ही सिक्के के दो पहलु हैं, जिन्हें एक साथ देखना चाहिए। हठयोग को राजयोग की प्राप्ति का माध्यम माना जाता है। राजयोग को प्राप्त करने के लिए हठयोग साधना का पालन करना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, राजयोग को प्राप्त करने के लिए अन्य कोई साधन नहीं है। इसलिए, हठयोग और राजयोग एक–दूसरे पर पूर्ण रूप से आश्रित हैं।

11.6 हठप्रदीपिका में योग के अंग

योग के आचार्यों ने योग के भिन्न–भिन्न प्रकारों और अंगों की चर्चा की है। स्वामी स्वात्माराम ने हठप्रदीपिका में योग के चार अंगों का वर्णन किया है:

1. आसन
2. प्राणायाम
3. मुद्रा
4. नादानुसंधान

- आसन के पांच आसनों का उपदेश किया गया है, जिसमें सिद्धासन को सबसे श्रेष्ठ माना गया है।
- प्राणायाम के आठ कुम्भकों का वर्णन किया गया है, जिसमें केवल कुम्भक को सबसे श्रेष्ठ माना गया है।
- मुद्राओं की चर्चा करते हुए, हठप्रदीपिका में दस मुद्राओं का वर्णन किया गया है, जिसमें खेचरी मुद्रा को सबसे श्रेष्ठ माना गया है।
- नादानुसंधान के चौथे उपदेश में नादानुसंधान का वर्णन किया गया है, जिसमें नादानुसंधान की चार अवस्थाएँ बताई गई हैं।

स्वामी स्वात्माराम ने बाह्य दिखावे की आलोचना की है और कर्मयोग की महत्वता पर बल दिया है। उनका मानना है कि सिद्धि प्राप्त करने के लिए केवल वेशभूषा बनाने या कथा–कहानियाँ सुनने से या ग्रन्थ पढ़ने से योग में सिद्धि नहीं होती है। सिद्धि प्राप्त करने के लिए साधक को निरंतर योग का अभ्यास करना चाहिए, जिसे स्वामी स्वात्माराम कर्मयोग की अनिवार्यता मानते हैं।

11.7 क्रियाओं की गोपनीयता

क्रियाओं की गोपनीयता के बारे में योग के ग्रन्थों में बहुत सारी क्रियाएं गोपनीय रखी गई हैं। इनकी चर्चा केवल योग्य व्यक्ति के सामने होनी चाहिए। ये क्रियाएं उत्कृष्ट और प्रभावी हैं। गुरु को यह निर्धारित करना चाहिए कि किसे इन क्रियाओं का ज्ञान देना चाहिए। अतिश्योक्ति अलंकार का प्रयोग भी किया गया है, जिसमें बात को बढ़ा–चढ़ाकर या रुचिकर बताया जाता है। ग्रन्थकार ने भी इसे अपनी भाषा में प्रयोग किया है।

11.8 मृत्यु पर विजय प्राप्त करना

यह वाक्य बताता है कि हठयोग साधना से साधक की अकाल मृत्यु नहीं होती है और मृत्यु का भय समाप्त हो जाता है।

सभी रोग का समाप्त होना :–

योगाभ्यास से साधक के अधिकांश रोग समाप्त हो जाते हैं और उसके शरीर में नई ऊर्जा व उत्साह का संचार होता है। योग के अभ्यास से व्यक्ति में बुढ़ापे के लक्षण दिखते ही नहीं हैं और बूढ़ा भी जवान हो जाता है।

हठप्रदीपिका के उपदेशों (अध्यायों) का संक्षिप्त परिचय

हठप्रदीपिका के पाँच उपदेशों का संक्षिप्त अवलोकन। स्वामी स्वात्माराम ने हठप्रदीपिका में योग के अंगों पर चर्चा की है और रोगों की यौगिक चिकित्सा पर भी बताया है।

11.9 प्रथम उपदेश (पहला अध्याय)

स्वामी स्वात्माराम ने प्रथम उपदेश में हठयोग विद्या का उपदेश देते हुए सर्वप्रथम आदिनाथ शिव और उनके बाद के सभी महान् योगियों को सलाम किया। इसमें, कुछ महत्वपूर्ण नाम हैं, जैसे– गुरु मत्स्येन्द्रनाथ, शाबरनाथ, आनंदभैरवनाथ, चौरंगीनाथ, मीननाथ, गुरु गोरक्षनाथ, चरपटीनाथ।

11.9.1 हठयोग साधना के लिए उपयुक्त स्थान

हठप्रदीपिका में योग साधना के स्थान को मठिका बताया गया है। एकांत स्थान, धर्मिक, धन्य–धान्य से भरपूर, कोई उपद्रव न हो, कुटिया पर साधक को रहना चाहिए। कुटिया में पत्थर, अग्नि, पानी, छिद्र–बिल, जमीन समतल, स्वस्थ, संरक्षक मंडप–कुंआ होने चाहिए।

11.9.2 साधक व बाधक तत्त्व

हठप्रदीपिका में योग साधना के महत्वपूर्ण तत्त्वों में से एक है बाधक व साधक तत्त्वों का वर्णन। समस्त साधकों को प्रेरित करते हुए, स्वामी स्वात्माराम ने 6 बाधक तत्त्वों का उल्लेख किया है।

इन 6 बाधक तत्त्वों में, समस्याओं, मन–चंचलता, प्रमाद, प्रतिषिद्धि, अलसता, और परिश्रम की कमी होने के कुछ मुख्य कारण हैं। समस्त साधकों को, इन 6 बाधक घटकों से बचना है, जिससे प्रगति हमेशा ब होती है।

1. अत्याहार (अत्यधिक भोजन करना)
2. प्रजल्प (अत्यधिक बोलना)
3. प्रयास (अत्यधिक परिश्रम करना)
4. नियमग्रह (नियम पालन में कठोरता)
5. जनसंग (अत्यधिक लोगों से सम्पर्क)
6. चंचलता (मन का अत्यधिक चंचल होना)

योग साधना में सफलता प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले साधक को चाहिए कि बाधा उत्पन्न करने वाले इन सभी तत्त्वों को अपने व्यवहार से सर्वथा दूर रखें।

साधक तत्त्व

स्वामी स्वात्माराम ने योग साधना में सहयोग करने वाले साधक तत्त्वों के भी छः (6) भेद माने हैं। योगी द्वारा इन साधक तत्त्वों का पालन करने से साधना में सफलता प्राप्त होने में आसानी रहती है। निम्न तत्त्वों को साधना में साधक माना गया है–

1. उत्साह
2. साहस
3. धैर्य
4. तत्त्व ज्ञान
5. दृढ़ निश्चय
6. जनसंग परित्याग

साधक तत्त्वों के पालन से साधना में सिद्धि प्राप्त होने में सहायता मिलती है। इसलिए ग्रन्थकार कहते हैं कि साधनाकाल में योगी को इन सभी साधक तत्त्वों का पालन करना चाहिए। इनका पालन करने से साधना में मज़बूती आती है।

11.9.3 यम व नियम का वर्णन

हठप्रदीपिका में दस प्रकार के यम व दस प्रकार के नियमों का भी वर्णन किया गया है। जिनका वर्णन इस प्रकार है –

दस यमों का वर्णन

1. अहिंसा
2. सत्य
3. अस्तेय
4. बह्मचर्य
5. क्षमा
6. धृति
7. दया
8. आर्जवं
9. मिताहार
10. शौच

दस नियमों का वर्णन

1. तप
2. सन्तोष
3. आस्तिक्यम्
4. दान
5. ईश्वर पूजन
6. सिद्धान्त श्रवण
7. लज्जा
8. मति
9. तप
10. हवन

11.9.3 यम व नियम का वर्णन

"हठप्रदीपिका में योग के चार अंग माने गए हैं, जिनमें से पहले स्थान पर आसन को रखा गया है। इसमें पन्द्रह आसनों का वर्णन किया गया है, जिनके नाम निम्नवत है।"

1. स्वस्तिकासन
2. गोमुखासन

3. वीरासन
4. कूर्मासन
5. कुक्कुटासन
6. उत्तानकूर्मासन
7. धनुरासन
8. मत्स्येन्द्रासन
9. पश्चिमोत्तानासन
10. मयूरासन
11. शवासन
12. सिद्धासन
13. पद्मासन
14. सिंहासन
15. भद्रासन

आसनों की चार प्रमुख श्रेणियों में सिद्धासन, पद्मासन, सिंहासन और भद्रासन शामिल हैं। सिद्धासन को सबसे श्रेष्ठ आसन माना गया है।

11.9.4 आहार की महत्ता

हठप्रदीपिका में स्वामी स्वात्माराम ने आहार के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए इसका पहले ही अध्याय में वर्णन किया है। इसमें आहार को कई भागों में बाँटा है। जिसका वर्णन इस प्रकार है –

1. मिताहार
2. अपथ्य, निषेध या वर्जित आहार
3. पथ्य, या हितकर आहार

मिताहार

सुस्निग्धमधुराहारश्चतुर्थांशविवर्जितः ।
भुज्यते शिवसंप्रीत्यै मिताहारः स उच्यते ।। 60 ।।

भावार्थ :– खाद्य पदार्थों का मिताहार होता है जो चिकने और मीठे होते हैं, पेट का 1/4 भाग खाली छोड़कर और आत्मा की प्रसन्नता के लिए. मिताहार आहार का संयम होता है. सभी योग साधकों को मिताहार का पालन करना चाहिए, समस्त ऋषि–मुनि मिताहार की महत्व को आत्मसात किये हुए हैं.

योग में अपथ्य आहार

कट्वम्लतीक्ष्णलवणोष्णहरीतशाकंकृ सौवीरतैलतिलसर्षपमद्यमत्स्यान् ।
अजादिमांसदधितक्रकुलत्थकोलकृ
पिण्याक हिङ्गुलशुनाद्यमपथ्यमाहुः ।। 61 ।।

भावार्थ :– भावार्थ में अपथ्य आहार के रूप में कड़वा करेला, खट्टा ईमली, तीखा कसैला, ज्यादा नमकीन, उष्ण जायफल, हरी पत्तियों वाले शाक, कांजी, सरसो और तिल का तेल, शराब, मछली और बकरी का मांस, दही, मट्ठा, कुलथी, कोल, हींग और लहसुन आदि का सेवन निषेध माना गया है। इन पदार्थों को अपथ्य कहा गया है।

भोजनमहितं विद्यात् पुनरप्युष्णीकृतं रुक्षम् ।
अतिलवणमम्लयुक्तं कदशनं शाकोत्कटं वर्ज्यम् ।। 62 ।।

भावार्थ :– योग साधना के दौरान गर्म किया हुआ, रूखा, नमकीन, खट्टा और दूषित भोजन जैसे भोजनों को त्यागना चाहिए। इस प्रकार के भोजन को योग साधना के दौरान अहितकर या वर्जित माना गया है।

वह्नि स्त्रीपथिसेवानामादौवर्जनमाचरेत् ।। 63 ।।

भावार्थ :– योग साधना को शुरू करने के समय में योगी के लिए अग्नि का सेवन, स्त्री का साथ व लम्बी दूरी की यात्रा वर्जित होती हैं। योगी को इन सबके सेवन से बचना चाहिए। योग साधना को शुरू करने के समय साधक को कुछ ज्यादा ही सावधानियों का पालन करना पड़ता है। इसलिए अग्नि सेवन, स्त्री संग व लम्बी यात्रा से दूरी बनाने की बात कही गई है।

योगी के लिए पथ्य आहार–

गोधूमशालियवषष्टिकशोभनान्नाम्
क्षीराज्यखण्ड नवनीतसितामधूनि ।
शुण्ठीपटोलकफलादिकपञ्चशाकं
मुद्गादिदिव्यमुदकं च यमीन्द्रपथ्यम् ।। 64 ।।

पथ्य आहार में शामिल खाद्य पदार्थों की सूची शामिल हैः गेहूं, पुराना चावल, जौ, साठी चावल, क्षीर, दूध, घी, खाण्ड, मक्खन, शक्कर, सोंठ, 5 प्रकार के सब्जियों (परवल, लौकी/घीया, तुरई/तोरी, कुषमंड/कुम्रा/पेठे), मूंग–मसूर की दालें और वर्षा का पानी।

पुष्टं सुमधुरं स्निग्धं गव्यं धातु प्रपोषणम् ।
मनोऽभिलषितं योग्यं योगी भोजनमाचरेत् ।। 65 ।।

भावार्थ :– योगी साधक को पुष्टिकारक, मधुर स्वाद वाला, स्निग्ध, गव्यम, धातुओं को मजबूत बनाने वाला भोजन, व मन को अच्छा लगने वाले अनुकूल भोजन को ही ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार का आहार पथ्य व हितकारी होता है।

11.10 द्वितीय उपदेश (दूसरा अध्याय)

द्वितीय अध्याय में प्राणायाम और षट्कर्म की चर्चा की गई है। यहां नाड़ीशोधन का महत्व बताया गया है और सलाह दी गई है कि साधक को पहले नाड़ी शोधन करना चाहिए। इससे उसकी नाड़ियों में जमे मल की शुद्धि होगी। इसके बाद ही साधक को अन्य प्राणायाम करने की अनुमति होगी।

11.10.1 षट्कर्म वर्णन

षट्कर्म का वर्णन करते हुए स्वामी स्वात्माराम बताते हैं कि चर्बी और कफ ज्यादा होने पर प्राणायाम से पहले षट्कर्म का अभ्यास करना चाहिए। वात, पित्त, और कफ दोष संतुलित होने पर षट्कर्म करने की आवश्यकता नहीं है। जिसके बारे में स्वामी स्वात्माराम जी वर्णन करते हैं।

धौतिर्बस्तिस्तथा नेतिस्त्राटकं नौलिकं तथा।
कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि प्रचक्षते।। (हठयोग प्रदीपिका–2/22)

योगियों ने योगमार्ग में धौति, बस्ति, नेति, त्राटक, नौलि, और कपालभोंति के छः कर्मों का निर्देश किया है।

1. धौति

चतुरंगुल विस्तारं हस्तपंचदशायतम। .
गुरूपदिष्टमार्गेण सिक्तं वस्त्रं शनैर्गसेत्।।
पुनः प्रत्याहरेच्चैतदुदितं धौतिकर्म तत्।। (हठयोग प्रदीपिका– 2/24)

अर्थात धौतिकर्म करने के लिए प्रत्येक दिन एक एक हाथ खाने का अभ्यास करना चाहिए। इसके लिए, पन्द्रह हाथ लम्बा व चार अंगुल चौड़ा मुलायम कपड़ा लेकर उसे गर्म जल में भिगोकर गुरू के निर्देशन में करना है। धौति करते समय ध्यान देना चाहिए कि धौति अटक न जाए।

धौति को बाहर निकालते समय अगर अटकाव हो, तो घबराना नहीं चाहिए। थोड़ा उष्ण जल पीने के बाद पुनः निकालना चाहिए। धौति को अच्छी तरह से धोकर सुखाना चाहिए और फिर उसे लपेटकर रखना चाहिए। यही धौतिकर्म है जिसे सही तरीके से करना चाहिए।

2. बस्ति

हठयोगप्रदीपिका में बस्तिकर्म का वर्णन करते हुए योगी स्वात्माराम जी ने कहा है–

नाभिदघ्न जले पायौ न्यस्तनाल्रोत्कटासनः।
आधाराकुंचनं कुर्यात्क्षालनं वस्तिकर्म तत।। (हठयोग प्रदीपिका–2/26)

अर्थात मलाशय के धोने के कर्म को बस्तिकर्म कहा जाता है। इसके लिए उत्कटासन में बैठकर नाभि तक जल आने वाले स्थान पर बैठकर गुदा में जल पहुंचाने के लिए विशेष तकनीक का उपयोग किया जाता है। इसके बाद नौलिकर्म के माध्यम से इस पानी को उदर में चलाकर गुदामार्ग से बाहर निकाल देना चाहिए।

3. नेति

नेतिकर्म के विषय में बतलाया गया है की नेतिकर्म को रस्सी के साथ बाँधना नेति कहलाता है और नासारंध्रों से सूत्र डालकर बिलोचन करने की क्रिया को नेतिकर्म कहा जाता है। हठयोगप्रदीपिका में सूत्रनेति का वर्णन किया गया है। नेतिक्रिया को जल, दुग्ध, घृत, तेल आदि से भी किया जा सकता है। स्वात्माराम योगी ने भी नेति के विषय में अपने विचार व्यक्त किए हैं।

अंतिम वाक्य में सूत्रं के विषय में उल्लेख किया गया है। सूत्रं को नासानाले प्रवेश कराने के लिए स्निग्ध करना चाहिए। यह वाक्य नेतिकर्म के विषय में एक निरूपण प्रस्तुत करता है।

सूत्रं वितस्तिसुस्निग्धं नासानाले प्रवेशयेत।
मुखान्निर्गमयेच्चैषा नेतिः सिद्धैर्निगध्यते।। (हठयोग प्रदीपिका– 2/30)

अर्थात् एक बालिश्त चिकने सूत्र को नासिका छिद्र में प्रवेश कराके मुख से निकालने की प्रक्रिया को सिद्धों ने नेतिकर्म कहा है। इस क्रिया के लिए सूत्र का आकार दस या पन्द्रह तार का होना चाहिए। उस सूत्र के आधे भाग पर मोम लगाकर उष्ण पानी में भिगोकर नासिका में प्रवेश कराना है। नेति कर्म को धीरे धीरे मुख से निकालने के लिए दो अंगुली मुख में डालकर नेति को पकड़ना होता है। इस प्रक्रिया को दूसरे नासारंध्र से भी किया जा सकता है। नेतिकर्म को क्रमशः दोनों नासारंध्रों से किया जाता है। यह कार्य सिद्धयोगियों द्वारा सिखाया गया है।

4. त्राटक

त्राटककर्म योगसाधना का एक मुख्य कर्म माना जाता है। त्राटक क्रिया का वर्णन करते हुए हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है–

निरीक्षेन्निश्चदृशा सूक्ष्मलद्धशा समाहितः।
अश्रुसंपात पर्यंतमाचार्यैस्त्राटकं स्मृतम्।। (हठयोग प्रदीपिका– 2/32)

अर्थात चित्त को एकाग्र करने के लिए हठयोग के आचार्यों ने त्राटक की उपयोगिता बताई है। त्राटक के लिए स्थिर आसन में बैठकर सूक्ष्मलक्ष्य को देखना चाहिए। आँखों की थकान या आँसू आने पर आँखें बंद करके आराम करना चाहिए। त्राटक का अभ्यास धीरे–धीरे बढ़ाना चाहिए। जिनकी आंखें कमजोर हैं, उन्हें पहले नेति, जल नेति का अभ्यास करना चाहिए। त्राटक षटकर्मों में एक महत्वपूर्ण क्रिया है जो शरीर और मन पर शीघ्र प्रभाव डालती है।

5. नौलि

नौलिक्रिया भी षटकर्मों में महत्वपूर्ण कर्म है। इसका वर्णन करते हुए हठयोगप्रदीपिका में कहा गया है–

अमंदावर्तवेगेन तुंदे सव्यापसव्यतः।
नतांसोभ्रामयेदेषा नौलिः सिद्धः प्रचक्षते।। (हठयोग प्रदीपिका–2/34)

अर्थात पुरुष कन्धों को नीचा करके जल–भ्रमर के वेग के समान अपने उदर को दायीं व बायीं ओर से तेजी से घुमाता है। इस कर्म को सिद्धों ने नौलिकर्म कहा है। इसके लिए सर्वप्रथम घुटनों पर हाथ रखकर थोड़ा सामने झुककर, पूरा श्वास बाहर निकालकर उडियान बंध लगायें। तत्पश्चात मानसिक शक्ति से पेट के निम्न भाग को ढीला छोड़कर नलों को सामने की ओर इकटठा करें। यह मध्यनौलि कहलाती है। जब इसका अभ्यास हो जाए तब दाहिने हाथ पर दबाब देकर इस क्रिया को करें तो नले दाहिनी ओर हो जायेंगे। जिसे दक्षिणनौलि कहा जाता है। इसी प्रकार बायीं ओर दबाव देने से वामनौलि हो जायेगी। जब तीनों प्रकार का

अभ्यास हो जाये तो फिर इच्छा शक्ति से नौलि को दायें से बायें व बायें से दायें गोलाकार घुमाना चाहिए। इसे नौलिसंचालन क्रिया कहा जाता है। इन सब क्रियाओं को कर ही पूर्ण नौलि क्रिया कही जाती है।

6. कपालभाति

कपालभाति नामक योगाभ्यास शुद्ध कर्मों में से एक है, जिसे हमारे शरीर के संचारित क्रिया प्रणाली को सुधारने के लिए किया जाता है। हठयोग प्रदीपिका में इसकी विधि और इससे होने वाले लाभों का स्पष्ट वर्णन मिलता है।

भस्त्रावल्लोहकारस्य रेचपूरों ससंभ्रमौं।
कपालभातिर्विख्याता कफदोषविशोषणी।। (हठयोग प्रदीपिका– 2/36)

अर्थात कपालभाति को लौहार की धौकनी के समान तेजी से रेचक और पूरक करने की क्रिया कहा जाता है, जिसमें श्वास को तेजी के साथ बाहर निकालते हैं। इसके दौरान श्वास लेने की क्रिया स्वयं होती रहती है और पेट अन्दर दबाता है।

घेरण्ड संहिता में षट्कर्म के अंतर्गत नौलि क्रिया का वर्णन चौथे स्थान पर किया गया है और पाँचवें स्थान पर त्राटक का। हालांकि, हठप्रदीपिका में चौथे स्थान पर त्राटक और पाँचवें स्थान पर नौलि क्रिया को वर्णित किया गया है।

प्राणायाम के तीन प्रमुख अंग

प्राणायामस्त्रिधा प्रोक्तो रेचपूरककुम्भकैः ।
सहितः केवलश्चेति कुम्भको द्विविधो मतः ।
यावत् केवलसिद्धिः स्यात् सहितं तावदभ्यसेत् ।। 71 ।।

भावार्थ :– प्राणायाम के तीन मुख्य अंग हैं – रेचक, पूरक, और कुम्भक। कुम्भक के दो प्रकार होते हैं – सहित कुम्भक और केवल कुम्भक। साधक को केवल कुम्भक में सिद्धि नहीं मिल जाती तब तक उसे सहित कुम्भक का अभ्यास करना चाहिए।

विशेष – प्राणायाम के तीन अंगों की चर्चा की गई है– रेचक, पूरक, और कुम्भक। इन तीनों के बिना प्राणायाम पूर्ण नहीं हो सकता।

सहित कुम्भक रेचकः पूरकः कार्यः स वै सहित कुम्भकः ।

भावार्थ :– जब प्राणायाम को रेचक व पूरक के साथ किया जाता है तब वह सहित कुम्भक कहलाता है। सहित कुम्भक में रेचक व पूरक दोनों का ही प्रयोग किया जाता है। तभी वह सहित कुम्भक कहलाता है।

केवल कुम्भक

रेचकं पूरकं मुक्तवा सुखं यद्वायुधारणम् ।
प्राणायामोऽयमित्युक्तः स वै केवलकुम्भकः ।। 72 ।।

भावार्थ :– कुम्भक प्राणायाम केवल रेचक और पूरक के बिना प्राणवायु को शरीर में धारण करने को कहते हैं। कुम्भक का अभ्यास विशेष रूप से रेचक और पूरक के बिना किया जाता है। कुम्भक की सिद्धि का महत्व भी उचित माना गया है।

कुम्भके केवले सिद्धे रेचपूरक वर्जिते ।
न तस्य दुर्लभं किञ्चित्त्रिषु लोकेषु विद्यते ।। 73 ।।

भावार्थ :– इस श्लोक में योगी साधक के लिए कुम्भक प्राणायाम के महत्व पर ध्यान केंद्रित करता है। इस प्राणायाम के सिद्ध हो जाने पर योगी साधक को तीनों लोकों में किसी भी दुर्लभ वस्तु की कमी महसूस नहीं होगी। उन्हें लगेगा कि उन्हें तीनों लोकों में कुछ भी अप्राप्य नहीं रहेगा। इससे उन्हें अद्वितीय संवेदनशीलता की प्राप्ति होगी।

केवल कुम्भक द्वारा राजयोग प्राप्ति

शक्तः केवल कुम्भेन यथेष्टं वायुधारणात् ।
राजयोगपदं चापि लभते नात्र संशयः ।। 74 ।।

भावार्थ :– साधक केवल कुम्भक द्वारा प्राणवायु को रोक सकता है और समाधि प्राप्त कर सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं है।

केवल कुम्भक के द्वारा कुण्डलिनी जागरण व हठयोग सिद्धि

कुम्भकात् कुण्डलीबोधः कुण्डलीबोधतो भवेत् ।
अनर्गला सुषुम्ना च हठसिद्धिश्च जायते ।। 75 ।।

भावार्थ :– कुंडलिनी का जागरण केवल कुम्भक से होता है और इससे सुषुम्ना नाड़ी के सभी मल रूपी अवरोध स्वयं ही समाप्त हो जाते हैं। इस प्रकार, साधक को हठयोग में सिद्धि की प्राप्ति होती है। राजयोग और हठयोग का सम्बंध भी बताया गया है।

हठं विना राजयोगो राजयोगं विना हठः ।
न सिद्धयति ततो युग्ममानिष्पत्तेः समभ्यसेत् ।। 76 ।।

भावार्थ :– हठयोग और राजयोग के बिना एक दूसरे की सिद्धि नहीं हो सकती। समाधि की प्राप्ति तक इन दोनों का अभ्यास करना चाहिए।

विशेष :– इस श्लोक में राजयोग और हठयोग के बीच की निर्भरता को बताता है। यह दोनों एक–दूसरे पर पूरी तरह से निर्भर हैं।

कुम्भकप्राणरोधान्ते कुर्याच्चित्तं निराश्रयम् ।
एवमभ्यासयोगेन राजयोगपदं व्रजेत् ।। 77 ।।

भावार्थ :– कुंभक द्वारा प्राणवायु को रोकने के बाद साधक को चित्त को आश्रय रहित बनाने की सलाह दी गई है। इस प्रकार के योग का अभ्यास करने से साधक को राजयोग के पद की प्राप्ति होती है।

11.10.2 हठ सिद्धि के लक्षण

वपुःकृशत्वं वदने प्रसन्नता नादस्फुटत्वं नयने सुनिर्मले ।
अरोगता बिन्दुजयोऽग्निदीपनम् नाडीविशुद्धिर्हठसिद्धिलक्षणम् ।। 78 ।।

भावार्थ :– हठ सिद्धि के लक्षण बताते हुए कहा गया है कि इसके चार चारण हैंः शरीर में हल्कापन, मुख पर प्रसन्नता, अनाहत नाद का सुनाई देना, नेत्रों का निर्मल हो जाना। इसके साथ ही शरीर से रोगों का अभाव होना, बिन्दु पर विजय प्राप्त होना या नियंत्रण होना, जठराग्नि का प्रदीप्त होना, नाड़ियो का पूरी तरह से शुद्ध हो जाना। ये सब हठयोग की सिद्धि के लक्षण हैं।

11.10.3 कुम्भक (प्राणायाम) वर्णन

हठप्रदीपिका में भी घेरंड संहिता की ही तरह आठ प्रकार के कुम्भकों (प्राणायामों) की चर्चा की गई है। जिनका वर्णन इस प्रकार है –

1. सूर्यभेदी
2. उज्जायी
3. सीत्कारी
4. शीतली
5. भस्त्रिका
6. भ्रामरी
7. मूर्छा
8. प्लाविनी

11.11 तृतीय उपदेश (तीसरा अध्याय)

तृतीय अध्याय में मुद्राओं का उपदेश दिया गया है। कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करने के लिए मुद्राओं के अभ्यास को बहुत उपयोगी माना गया है। कुल दस (10) मुद्राओं का वर्णन किया गया है।

11.11.1 मुद्राओं और बंध का वर्णन

हठयोग प्रदीपिका में मुद्राओं का वर्णन करते हुए स्वामी स्वात्माराम जी ने कहा है

महामुद्रा महाबन्धों महावेधश्च खेचरी।
उड्डीयानं मूलबन्धस्ततो जालंधराभिधः। (हठयोगप्रदीपिका– 3/6)
करणी विपरीताख्या बज़्रोली शक्तिचालनम्।
इदं हि मुद्रादश्क जरामरणनाशनम्।। (हठयोगप्रदीपिका– 3/7)

अर्थात दस मुद्राएं हैं – महामुद्रा, महाबंध, महावेध, खेचरी, उड्डीयानबन्ध, मूलबन्ध, जालन्धरबन्ध, विपरीतकरणी, वज़्रोली और शक्तिचालनी। ये मुद्राएं मरण का नाश करने के लिए हैं। इनका वर्णन निम्न प्रकार है।

1. महामुद्रा

महामुद्रा का वर्णन करते हुए गया है इस मुद्रा मे व्यक्ति को बायें पैर को एड़ी को गुदा और उपस्थ के मध्य सीवन पर दृढ़ता से लगाना है। दाहिने पैर को फैला कर रखने के साथ हाथों से दाहिने पैर के पंजे को दृढ़ता के साथ पकड़ना है। इसके बाद, भली प्रकार जालन्धर बंध लगाकर मूल बंध की सहायता से वायु को उर्ध्वदेश में ही धारण करना है। इस आसन के अभ्यास से कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत हो जाती है और प्राण सुषुम्ना में प्रवेश कर जाता है।

2. महाबंध

अर्थात् इसमें बायें पैर की एड़ी को योनि स्थान और दाहिने पैर को बायीं जंधा के ऊपर रखने की निर्देशिका दी गई है। इसके साथ ही नासारन्ध्रों से पूरक करने, कण्ठकूप में ठुड्डी को दृढ़ता से लगाने और वायु का रेचन करने के लिए भी निर्देश दिया गया है। महाबंध के अनुसार, गुदा प्रदेश को संकुचित करने और मूलबंध लगाने के बाद मन को सुषुम्ना में केंद्रित करते हुए कुम्भक करने का विवरण भी दिया गया है। इसके बाद पैरों की स्थिति बदलकर दोहराने के निर्देश भी दिए गए हैं। यह सभी क्रियाएं योगाभ्यास के महत्वपूर्ण तत्व हैं जो शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए लाभकारी हो सकते हैं।

3. महावेध

महाबंध मुद्रा के अभ्यास से प्राण इड़ा व पिंगला का त्याग कर सुषुम्ना मार्ग में संरचण होता है। इड़ा, पिंगला व सुषुम्ना के चन्द्रमा, सूर्य व अग्नि देवता हैं। तीनों नाड़ियों का संबंध मोक्ष का हेतु है। कुम्भक में ऐसी अवस्था आने के पश्चात् वायु का रेचन करें। यही महावेध मुद्रा है।

4. खेचरी

जिह्वा को बढ़ाकर बाहर निकलकर भृकुटियों के मध्य को स्पर्श करने के लिए छेदन व चालन क्रिया करनी चाहिए। इस क्रिया में जिह्वा के मूल की रोम मात्र छेदन करना चाहिए। छेदन के बाद सैंधव लवण और हरड़ के चूर्ण से मालिश करनी चाहिए। यह क्रिया प्रातःकाल और सायंकाल में प्रतिदिन करनी चाहिए।

छेदन की क्रिया सप्ताह में एक बार करनी चाहिए। छेदन और फिर सातवें दिन तक घर्षण क्रिया करने से जिह्वा का बन्धन कट जाता है। जिह्वा की वृद्धि होने पर उसे पलटकर कपाल गुहा में लगाकर आनन्द सुधा का पान करना ही खेचरी मुद्रा है।

5. उड्डियान बन्ध

उदर को नाभि के ऊपर, नीचे और पीछे से खींचें। यह मृत्यु से बचने का सिंह के समान मूलबंध है।

6. मूलबंध

मूलबंध के लिए बताया गया है की एड़ी से सीवनी को दबाकर गुदा का आकुंचन करने की बात की गई है। इसके बाद अपान वायु को ऊपर की ओर खींचकर रखने का मूलबन्ध है। जालन्धर बन्ध का उल्लेख किया गया है।

7. जालन्धर बन्ध

हृदय में ठोडी को दृढतापूर्वक लगाने से कन्ठ का संकुचन होता है, जिसे जालन्धर बन्ध कहते हैं। इसका प्रभाव मृत्यु और बुढापा से मुक्ति प्रदान करने में होता है।

8. विपरीतकरणी

नाभि को ऊपर तथा तालु को नीचे करने से सूर्यमण्डल ऊपर और सोममण्डल नीचे हो जाता है। सोम मण्डल यहां ब्रह्मरन्ध्र को कहा गया है और सूर्यमण्डल नाभि को कहा गया है। इसी को विपरीतकरणी मुद्रा कहा गया है। इसे गुरु से सीख कर करना चाहिए।

9. वज्रोली

धीरे धीरे अच्छी तरह से योनिमण्डल का आकुंचन करने की अभ्यास करना चाहिए। ऐसा करने से पुरुष अथवा नारी दोनों को ही वज्रोली का फ़ल प्राप्त होता है।

10. शक्तिचालिनी

वज्रासन में बैठकर दोनों हाथों से दोनों पैरों के टखनों को दृढ़ता से पकड़े और उनसे कन्दु स्थान को जोर से दबाये। उसके पश्चात् भस्त्रिका कुम्भक का अभ्यास करें। इससे कुण्डलिनी शीघ्र जाग्रत हो जाती है। नाभि प्रदेश स्थित सूर्य नाड़ी का आकुंचन कर कुण्डली को चलावें। इससे मृत्यु के मुख में गये हुए साधक को मृत्यु का भय कैसा अर्थात उसे मृत्यु का भय नहीं रहता। इस प्रकार दो मुहूर्त तक निर्भय होकर चलाने से सुषुम्ना में प्रविष्ट होकर शक्ति ऊपर की ओर चलने लगती है।

इन सभी में खेचरी मुद्रा को सबसे श्रेष्ठ मुद्रा माना गया है।

11.12 चतुर्थ उपदेश (चौथा अध्याय)

चौथे अध्याय में नादानुसंधान की चर्चा की गई है। हठप्रदीपिका में नादानुसंधान को योग का अन्तिम अंग माना गया है। इसकी चार अवस्थाएँ होती हैं–

11.12.1 आरम्भ अवस्था

.

जब प्राणायाम द्वारा (हृदय में) ब्रह्म ग्रंथि का भेदन किया जाता है, तब हृदय की शून्यता में एक प्रकार की प्रसन्नता का अनुभव होता है और शरीर में आभूषणों की विभिन्न खनकती ध्वनियों की तरह अनाहत ध्वनियाँ सुनाई देती हैं।

आरंभ में, योगी का शरीर दिव्य, चमकदार, स्वस्थ हो जाता है और दिव्य गंध उत्सर्जित करता है। उसका संपूर्ण हृदय शून्य हो जाता है।

11.12.2 घाटा अवस्था

दूसरे चरण में वायु एक हो जाती है और मध्य नाड़ी में चलने लगती है। योगी की मुद्रा दृढ़ हो जाती है और वह देवता के समान बुद्धिमान हो जाता है।

इस माध्यम से विष्णु गांठ (गले में) छेदी जाती है जो अनुभव किए गए उच्चतम आनंद का संकेत देती है, और फिर गले में निर्वात में भेरी ध्वनि (केतली के ड्रम की थाप की तरह) उत्पन्न होती है।

11.12.3 परिचय अवस्था

तीसरे चरण में भौंहों के बीच सूर्य में डमरू की ध्वनि उत्पन्न होती है और फिर वायु महाशून्य में चली जाती है, जो सभी सिद्धियों का घर है।

तब मन के सुखों पर विजय पाकर अनायास ही परमानंद उत्पन्न हो जाता है जो बुराइयों, पीड़ाओं, बुढ़ापे, रोग, भूख और नींद से रहित होता है।

11.12.4 निष्पत्ति अवस्था

जिसके परिणाम स्वरूप आनंद की अनुभूति होती है। शरीर में विचार शून्यता और विचित्र प्रकार की ध्वनि अर्थात् असाधारण झण झण रूप अनाहत शब्द सुनाई पड़ता है। इस अवस्था में योगी दिव्य देह वाला, ओजस्वी दिव्य गंध वाला, अरोगी, प्रसन्न चित्त एवं शून्यचारी हो जाता है।

इन सभी अवस्थाओं में योगी की क्या अवस्था अथवा कैसे लक्षण होते हैं, उनका भी विस्तार से उल्लेख किया गया है।

इसी अध्याय में समाधि अथवा योग की विभिन्न परिभाषाओं का भी मुख्य रूप से वर्णन किया गया है, साथ ही समाधि के सोलह (16) पर्यायवाची शब्दों को भी प्रमुखता से बताया गया है। शरीर में स्थित बहत्तर हज़ार (72000) नाड़ियों का वर्णन भी यहीं पर किया गया है। इन सभी नाड़ियों में से सुषुम्ना नाड़ी को प्रमुख मानते हुए अन्य सभी को निरर्थक अर्थात् विशेष उपयोगी नहीं माना है। इसी अध्याय में लययोग के लक्षणों को भी बताया गया है।

11.13 पंचम उपदेश (पाँचवाँ अध्याय)

हठप्रदीपिका का यह सबसे छोटा अध्याय है। इसका मुख्य विषय यौगिक चिकित्सा है।

प्रमादी युज्यते यस्तु वातादिस्तस्य जायते ।
तद्दोषस्य चिकित्सार्थं गतिर्वायोर्निरूप्यते ।। 1 ।।

भावार्थ :– योग साधना में लापरवाही बरतने वाले साधकों के शरीर में वात, पित्त व कफ से सम्बंधित रोग उत्पन्न हो जाते हैं। उन सभी रोगों की चिकित्सा हेतु प्राणवायु की गति का स्वरूप क्या होना चाहिए? इसका वर्णन किया जा रहा है।

विशेष :– इस अध्याय में योग मार्ग में लापरवाही बरतने वाले साधकों हेतु यौगिक चिकित्सा का वर्णन किया गया है।

वायोरुर्ध्वं प्रवृत्तस्य गतिं ज्ञात्वा प्रयत्नतः ।
कुर्याच्चित्तकित्सां दोषस्य द्रुतं योगी विचक्षणः ।। 2 ।।

भावार्थ :– बुद्धिमान योग साधक को ऊपर की ओर उठने वाली प्राणवायु की गति को पूरे प्रयत्न के साथ अच्छे से समझकर उससे अतिशीघ्र ही सम्बंधित रोग की चिकित्सा करनी चाहिए।

इस पाँचवें अध्याय में स्वामी स्वात्माराम ने ग़लत विधि से योग क्रिया करने पर उत्पन्न होने वाले रोगों के उपचार का उपदेश किया है। इसमें मुख्य रूप से वात, पित्त व कफ़ का शरीर में स्थान व उनके कार्यों का वर्णन किया गया है। इसके बाद वात, पित्त व कफ़ से होने वाले रोगों की संख्या को बताते हुए कहा है कि वात के असंतुलित होने पर अस्सी (80) प्रकार के, पित्त के असंतुलित होने से चालीस (40) प्रकार के व कफ़

के असंतुलित होने से बीस (20) प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। आगे के श्लोकों में उन सभी दोषों को शान्त करने के उपायों व रोगों की यौगिक चिकित्सा का वर्णन किया गया है।

11.14 अभ्यास प्रश्न

सही /गलत

- हठ प्रदीपिका में ज्ञान योग बताया गया है।
- हठ प्रदीपिका में 15 आसनों का वर्णन है
- हठ कर अर्थ जिद करना होता है।
- कुंभक सात होते है।
- खेचरी मुद्रा से भूख प्यास पर विजय पाई जा सकती है।
- हठ योग में समाधि का वर्णन नहीं है।
- हठ योग प्रदिपिका के लेखक स्वात्माराम जी है।

11.15 सारांश

हठप्रदीपिका स्वामी स्वात्माराम द्वारा प्रतिपादित हठयोग का एक ग्रन्थ है। अगर आपने इतिहास का अध्ययन किया है तो 10वीं तथा 15वीं शताब्दी में अपने मुट्ठी भर स्वार्थ के लिए कई लोग हठयोग व राजयोग के समबन्ध में भ्रान्तियों फैलाते रहे। कई लोगों का मत था कि हठयोग व राजयोग दो अलग–अलग मार्ग है इन दोनों रास्तों का आपस में कोई सम्बन्ध नहीं है। इन भ्रमक तत्वों ने वेश भूषा, इत्यादि आडम्बरों पर जोर देकर भ्रान्तियों फैलाई थी परन्तु इस शस्य श्यामला धरती पर जब भी विकृतियों पैदा हुई और अपने चरमोत्कर्ष तक पहुँची तब कोई न कोई महापुरूष का अवतरण हुआ है। स्वात्माराम नाम के इस महापुरूष ने ऐसे समय में हठप्रदीपिका नामक प्रमाणिक वैज्ञानिक पुस्तक लिखकर हठयोग के वास्तविक स्वरूप को हमारे सामने रखा।

11.16 शब्दावली

पूरक – श्वास लेना

रेचक- श्वास छोडना

कुम्मक- श्वास रोकना

शोधन- शुद्धिकरण, सफाई करना

11.17 सन्दर्भ ग्रन्थ

स्वात्मारामसुरी (2001) हठप्रदीपिका कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग, मन्दिर समिति लोनावाला।

हठयोग प्रदीपिकाकैवल्य धाम लोनावाला ,स्वात्मारामकृत संस्करणकर्ता स्वामी दिगम्बर जी -

11.18 निबंधात्मक प्रश्न

- हठप्रदीपिका के वर्ण्य विषयों की विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए।
- हठप्रदीपिका में वर्णित षटकर्म का विस्तृत वर्णन कीजिए ।
- हठप्रदीपिका में वर्णित प्राणायामो का वर्णन कीजिए।

इकाई 12 – शिव संहिता सामान्य परिचय

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 शिव संहिता का समयकाल

12.3 ग्रंथ का परिचय

12.4 प्रथम अध्याय

    12.4.1 केवल एक अस्तित्व

12.5 अध्याय 2

    12.5.1 सूक्ष्म जगत

    12.5.2 तंत्रिका केन्द्र

    12.5.3 नाड़ी वर्णन

    12.5.4 पेल्विक क्षेत्र

    12.5.5उदर क्षेत्र

    12.5.6 जीवात्मा

12.6 अध्याय 3

    12.6.1 गुरु परंपरा

    12.6.2 अधिकारी

    12.6.3 स्थान

    12.6.4 प्राणायाम

    12.6.5 त्यागने योग्य वस्तुएँ

    12.6.6 उपाय

12.7 अध्याय 4

12.6.7 पहला चरण

12.6.8 दूसरा और तीसरा चरण

12.7 चतुर्थ अध्याय

    12.7.1 कुण्डलिनी जागरण

12.8 अध्याय 5

12.9 शिव संहिता में चार प्रकार के योग

12.10 शिव संहिता में एक रहस्य

12.10.1 सात चक्र

12.10.2 पवित्र त्रिवेणी

12.10.3 रहस्यवादी कैलास पर्वत

12.10.4 राज धीरज योग

12.11 अभ्यास प्रश्न

12.12 सारांश

12.13 शब्दा वली

12.14 सन्दर्भ ग्रन्थ

12.15 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

शिव संहिता योग के सबसे प्राचीन ग्रंथो में से एक है। घेरंड संहिता और हठ योग प्रदीपिका के साथ, शिव संहिता हठ योग पर तीन प्रमुख पारंपरिक पुस्तकों में से एक है। इस ग्रंथ में योग आसन, मुद्रा, बंध, प्राणायाम और तांत्रिक अभ्यास शामिल हैं। इसे योग पर सर्वश्रेष्ठ ग्रंथो में से एक कहा जाता है। शिव संहिता के लेखक अज्ञात हैं। कोई भी सटीकता से नहीं कह सकता कि प्रसिद्ध ग्रंथ के रचना किसने, कब की गई। हालाँकि, कई विद्वानों का दावा है कि इसकी उत्पत्ति वाराणसी के आसपास हुई होगी। यह पुस्तक एक ऐसी स्थिति के रूप में लिखी गई है जहां भगवान शिव देवी पार्वती को योग और कई अन्य रहस्यों को बतला रहे हैं।

शिव संहिता की विशेष बात यह भी है कि इसमें धर्म की शिक्षाओं को दो जीवन शैलियों कृ धर्म, अर्थ और काम (प्रवृत्ति मार्ग) तथा मोक्ष (निवृत्ति मार्ग) में विभाजित किया है। यह बहुत दुर्लभ है क्योंकि अधिकांश वेदांत ग्रंथ आत्म–ज्ञान शुरू करने से पहले प्रवृत्ति मार्ग का विवरण नहीं देते हैं, जो आमतौर पर साधन–चतुष्ट्या की एक संक्षिप्त चर्चा के बाद किया जाता है। लगभग सभी वेदांत ग्रंथों में धारणा होती है कि पाठक एक योग्य व्यक्ति है, पारंपरिक रूप से एक अनुशासनिक (सन्यासी) है। यह शिव–संहिता में देखने को नहीं मिलता। क्यूँकि इसके शेष अध्याय हठ–योग केंद्रित है इसीलिए इसका प्रथम अध्याय में प्रवृत्ति मार्ग या कर्म सिद्धांत का वर्णन अच्छी प्रकार से किया गया है।

12.2 शिव संहिता का समयकाल

इसका समय–काल निश्चित नहीं है और इतना प्राचीन भी नहीं है, अलग अलग विद्वानों ने अलग अलग समय–काल बताया है। कुछ का मानना है की यह ग्रंथ 17वीं शताब्दी से उपलब्ध है और कुछ विद्वानों जैसे जेम्ज मोलिंसन का मानना है कि यह 13-15वीं शताब्दी का है, यह माना जाता है कि यह वाराणसी, भारत में लिखा गया है जिसे बनारस या काशी भी कहा जाता है। हमारे अन्य ग्रंथो के सामने यह फिर भी नवीन है। जबकि शास्त्र 15वीं शताब्दी में लिखा गया था लेकिन इसका शिक्षण कालातीत और अनादी है।

12.3 ग्रंथ का परिचय

शिव संहिता में पाँच अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय अपने आप में अद्वितीय है और कई पहलुओं से संबंधित है। शिव संहिता को एक योग पुस्तक के रूप में जाना जाता है, हालांकि यह पुस्तक न केवल योग के बारे में बल्कि कई अन्य चीजों के बारे में भी बात करती है। इसी तरह, पहला अध्याय शारीरिक अस्तित्व, मुक्ति कैसे प्राप्त करें, दर्शन और अन्य चीजों के बारे में चर्चा करता है। पहले अध्याय पर तत्काल नजर डालने पर हम जो मानते हैं वह योग नहीं है।

दूसरे अध्याय से पुस्तक योग विषय की ओर गति पकड़ती है। शेष अध्याय योग और उसके विभिन्न पहलुओं के इर्द–गिर्द घूमते हैं। शिव संहिता के शेष अध्यायों में आसन, तंत्र, मुद्रा , सिद्धि का विस्तृत वर्णन किया गया है। इसके अलावा, शिव संहिता जीवन में गुरु की आवश्यकता, जीवन के पहलुओं और यहां तक कि जीवन को संपूर्ण कैसे बनाया जाए, यह भी बताती है।

शिव संहिता के पहले अध्याय में भगवान शिव ज्ञान का वर्णन करते हैं। भगवान शिव के अनुसार केवल ज्ञान ही शाश्वत और सर्वव्यापी है। ब्रह्माण्ड का प्रत्येक पदार्थ ज्ञान में है। ब्रह्माण्ड में पदार्थ में जो विविधताएँ, तत्त्व एवं भिन्नताएँ हमें दिखाई देती हैं, वे इन्द्रिय–स्थितियों के कारण हैं। यदि इन्द्रिय–स्थिति न होती तो सब कुछ ज्ञान होता। जब ब्रह्मांड का जन्म हुआ और वहां कुछ भी नहीं था तो ज्ञान मौजूद था। इसके अलावा, जब ब्रह्मांड मर जाएगा और शून्य हो जाएगा तो ज्ञान वहां रहेगा।

12.4 प्रथम अध्याय

12.4.1 केवल एक अस्तित्व–

प्रथम अध्याय अद्वैत वेदान्त को सार रूप में प्रस्तुत करता है। जिसमे 96 श्लोक है। इस अध्याय में भगवान शिव विभिन्न स्वरूपों का वर्णन करते हैं। एक साधारण मनुष्य के जीवन में कर्तव्य से लेकर ब्रह्मांड के रहस्यों तक। योग में आगे बढ़ने के लिए आवश्यक पहलुओं, क्षेत्रों को देखना, अभ्यास करना और स्वीकार करना आवश्यक है।

इस जगत में भांति भांति के लोग रहते हैं। उनकी अपनी विचारधारा है, वे जिन देवताओं की स्तुति करते हैं, वे जिस सत्य पर विश्वास करते हैं और जो कार्य वे करते हैं। उनके बारे में विशेष बात यह है कि प्रत्येक धारणा दूसरों के लिए अलग और अद्वितीय है। वे जिसे सत्य और वास्तविक मानते हैं, उसके आधार पर वे अपना कर्म करते हैं। कोई कर्म को मानता है, कोई वैराग्य में लीन है। कुछ का मानना है कि कर्तव्य सबसे बड़ा कार्य है, कुछ का मानना है कि त्याग है। कुछ लोग दुनिया को अच्छे और बुरे के नजरिए से आंकते हैं, जबकि कुछ को यह भी पता नहीं होता कि क्या अच्छा है और क्या नहीं।

कुछ लोग दूसरों से अधिक बुद्धिमान होकर जांच–पड़ताल में लगे रहते हैं और कहते हैं कि शरीर तो अनित्य है परंतु आत्मा शाश्वत है। जबकि, कुछ का मानना है कि जिस दुनिया को हम अपनी इंद्रियों के माध्यम से देखते हैं वह केवल वास्तविक है, अन्य केवल कल्पना हैं। वे सभी अपने–अपने विवेक पर निर्भर हैं कि वे सही हैं या गलत, लेकिन सच्चे और पूर्ण रूप से कोई भी सही नहीं है। शिव संहिता के अनुसार, योग शास्त्र उससे परे है और अंतिम लक्ष्य है जिसे वे सभी खोजते हैं, सच्चा और दृढ़ सिद्धांत।

पहले अध्याय में शिव संहिता कर्मकांड, ज्ञानकांड, आत्मा, योग और माया, परमहंस, विकास, विकास, जीव को उनके शरीर के साथ समझाती है। ये सभी संसार की रचना से लेकर उनके निर्माण और उनके द्वारा ज्ञान प्राप्त करने तक के चरण हैं।

12.5 अध्याय 2

दूसरे हठ योग और अद्वैत वेदांत का वर्णन है जिसमे 57 श्लोक है इस अध्याय में नाड़ी जाल का वर्णन है उसमें अन्य ग्रन्थों से अलग साढ़े तीन लाख नाडीयों का वर्णन है व 15 अन्य मुख्य नाड़ियां बताई गई हैं।

ग्रंथ के दूसरे अध्याय में नाड़ी और नाड़ी जाल और मनुष्य के शरीर के आंतरिक स्वरूप के जीवन के बारे में बात करती है। इस अध्याय में पुस्तकें योग संबंधी विषयों की ओर बढ़ती हैं।

12.5.1 सूक्ष्म जगत–

शिव संहिता में शरीर में स्थित अदृश्य जो की सूक्ष्म रूप से अवस्थित है उन समस्त रूपों का विस्तार से वर्णन किया गया है। दूसरे अध्याय में हमारे शरीर में स्थित मेरु पर्वत और पर्वत पर सात द्वीप का वर्णन हैं। इन द्वीपों पर नदियाँ, पहाड़ और खेत हैं।

12.5.2 तंत्रिका केन्द्र–

हमारा शरीर अपने आप में एक ब्रह्मांड है। हमारे भीतर चंद्रमा, सूर्य और सार्वभौमिक जीवन के विभिन्न अन्य पहलू भी हैं। वे हमारे शरीर के भीतर गतिमान ऊर्जा हैं, वे पूरे शरीर में वितरित हैं। उनमें से प्रत्येक के अपने–अपने कार्य हैं और वे उसी के अनुसार कार्य करते हैं। सामूहिक रूप से वे शरीर के चारों ओर तंत्रिका केंद्र बनाते हैं। जो संसार में अंधकार को नष्ट कर देती है।

12.5.3 नाड़ी वर्णन–

मानव शरीर में कुल मिलाकर 3,500,000 नाड़ियाँ होती हैं जबकि उनमें से केवल 14 ही मूल नाड़ियाँ हैं। 14 में से, सुषुम्ना को योग गुरुओं द्वारा सर्वोच्च माना जाता है।

12.5.4 पेल्विक क्षेत्र–

यह ब्रह्माण्ड की रचनात्मक शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है और इसका मुख्य उद्देश्य सृजन है जिसे यह सदैव करता रहता है। वह देवी जिसका सम्मान सभी देवता करते हैं, वाणी की देवी जिसे वाणी प्रकट नहीं कर सकती।

12.5.5 उदर क्षेत्र–

उदर भोजन का पाचनकर्ता है। उदर में अग्नि होती है, अग्नि आयु बढ़ाती है, आरोग्य देती है, रोगों का नाश करती है और ऊर्जा देती है। प्रसन्नतापूर्वक अग्नि प्रज्वलित करनी चाहिए और उसमें प्रतिदिन भोजन की आहुति देनी चाहिए।

12.5.6 जीवात्मा–

आपके शरीर में मौजूद जीव में आपके पिछले जन्म की घटनाओं और कर्मों के फल के गुण हैं। इस संसार में जन्म लेने वाला प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्मों और अपने कर्मों के कारण ही सुखी या दुःखी होता है।

12.6 अध्याय 3

योग अभ्यास पर–

प्राण जीवों के हृदय में पिछले काम, इच्छाओं और अहंकार के साथ रहता है। प्राण की कोई शुरुआत नहीं है और इसे कई नामों से जाना जाता है।

12.6.1 गुरु परंपरा–

योग के ज्ञान को आत्मसात करने के लिए योग साधना में गुरु का बहुत महत्व रखता है। गुरु के माध्यम से प्राप्त ज्ञान अधिक शक्तिशाली होता है। गुरु के महत्त्व पिता, माता, मित्र और यहाँ तक कि भगवान भी होता है।

12.6.2 अधिकारी–

शिव संहिता में अधिकारी का वर्णन उस व्यक्ति के रूप में किया गया है जो वफादार है और जिसने खुद पर पूरा नियंत्रण हासिल कर लिया है। किसी भी चीज के सफल होने के लिए, यहाँ तक कि ज्ञान में भी पूर्ण आस्था और विश्वास की आवश्यकता होती है।

12.6.3 स्थान–

यह स्थान निवृत्ति का स्थान है जो अत्यंत सुंदर एवं रमणीय है, वहां कुश से बने आसन पर बैठकर प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। शुरुआती लोगों का शरीर दृढ़ और लचीला होना चाहिए, हाथ प्रार्थना में जुड़े हुए हों और बाईं ओर गुरु को प्रणाम करें।

12.6.4 प्राणायाम–

प्राणायाम का उपयोग करके, एक योगी का शरीर शुद्ध हो जाता है। प्राणायाम के चार चरण हैंरू अरबमा अवस्ता, घट अवस्ता, परिचय अवस्ता और निष्पत्ति अवस्ता, जिसका वर्णन शिव संहिता में किया गया है। तीव्र भूख, अच्छा पाचन, साहस, सुन्दर आकृति योगी के गुण हैं।

12.6.5 त्यागने योग्य वस्तुएँ–

शिवसंहिता के अनुसार योगियों को निम्नलिखित चीजों का त्याग करना चाहिए रू
अम्ल, कसैले, तीखे पदार्थ, नमक, सरसों, कड़वी चीजें, अधिक चलना, सूर्योदय से पहले स्नान, तेल में तली हुई चीजें, चोरी, जानवरों की हत्या, दुश्मनी, घमंड, दोगलापन, कुटिलता , उपवास, असत्य, मोक्ष के अलावा अन्य

विचार, जानवरों के प्रति क्रूरता, महिलाओं की संगति, अग्नि की पूजा, कम बोलना, वाणी की अप्रियता और बहुत अधिक बोलना।

12.6.6 उपाय–

योगी को शिव संहिता के अनुसार निम्नलिखित बातों का पालन करना चाहिए
शुद्ध मक्खन, दूध, मीठा भोजन, कपूर, दयालु शब्द, सुखद मठ, सत्य पर हतोत्साहित सुनना, वैराग्य, विष्णु का नाम गाना, मधुर संगीत सुनना, धैर्य रखना, निरंतरता, क्षमा, तप, शुद्धि, शील, भक्ति और गुरु की सेवा।

12.6.7 पहला चरण–

योगी के शरीर से पसीना निकलने लगता है। जब पसीना आए तो उसे अच्छे से मलना चाहिए अन्यथा योगी के शरीर से धातु नष्ट हो जाती है।

12.6.8 दूसरा और तीसरा चरण–

दूसरा चरण शरीर के कांपने से शुरू होता है। तीसरे चरण में मेंढक की तरह कूदना शामिल है। जब अभ्यास अधिक हो जाता है तो सिद्धहस्त हवा में चलने लगता है।

वायु सिद्धि–

वायु सिद्धि प्राप्त करने वाला योगी पद्मासन में रहकर हवा में उठ सकता है और जमीन छोड़ सकता है। वायु सिद्धि वह तकनीक है जो संसार में अंधकार को नष्ट कर देती है।

अवधि में वृद्धि–

योगी को धीरे–धीरे तीन घड़ी तक अभ्यास कराने योग्य बनाना चाहिए। शिव संहिता के अनुसार ऐसा करने से योगी को इच्छित शक्तियां प्राप्त हो जाती हैं।

सिद्धियाँ या पूर्णताएँ–

योगी निम्नलिखित सिद्धियाँ प्राप्त करता हैः–

वाक्य सिद्धि = भविष्यवाणी

कामचुरी = टेलीपोर्टेशन

दुराश्रुति = दिव्य श्रोता

सूक्ष्म–दृष्टि = सूक्ष्म दृष्टि

परकायप्रवेसन = किसी अन्य व्यक्ति के शरीर पर कब्जा करने में

अन्य शक्तियों में अदृश्य हो जाना, आकाश में उड़ना शामिल है।

घटअवस्था–

प्राणायाम के उपयोग से घट (जल–पात्र) प्राप्त करने वाले साधु के लिए ब्रह्मांड में सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है।

परिचय अवस्था–

योगी व्यायाम के माध्यम से परिचय अवस्था तक पहुंचता है। जब दाहिनी और बायीं नासिका से निकलने वाली वायु सुष्मना नलिका के आकाश में स्थिर और स्थिर रहती है, तो यह परिचय अवस्था होती है।

निष्पत्तिअवस्था–

निरंतर अभ्यास के माध्यम से परिचय के बाद योगी निष्पत्ति अवस्था में प्रवेश करता है। यहां, प्रारंभ से मौजूद कर्म के सभी बीजों को नष्ट करने के बाद, योगी अमरता में प्रवेश करता है

आसन–

विभिन्न विधाओं के चौरासी आसन हैं, उनमें से चार को अपनाना चाहिए, जो इस प्रकार हैंः–

- सिद्धासन
- पद्मासन
- उग्रासन
- स्वस्तिकासन

12.7 चतुर्थ अध्याय–

योनि मुद्रा–

शिव संहिता बताती है कि जो योनि मुद्रा का अभ्यास करता है, वह पाप से प्रदूषित नहीं होता है, चाहे वह हजारों ब्राह्मणों या तीनों लोकों के निवासियों को मार डाले। मुद्रा के पुण्य से उन पर कोई पाप का दाग नहीं लगता।

12.7.1 कुण्डलिनी जागरण–

जब गुरु की सहायता से सोई हुई देवी कुंडलिनी को जागृत किया जाता है, तो सभी कमल और बंधन आसानी से भेद दिए जाते हैं।

कई मुद्राओं में से महामुद्रा , महाबंध, खेचरी, जालंधर, मूलबंध, विपरीतकरण, उद्दाना, विजरोंदी और शक्तिचलन सर्वोत्तम मुद्राएं हैं।

शिव संहिता के अनुसार, मुद्राओं के माध्यम से सबसे दुर्भाग्यपूर्ण योगी भी सच्ची सफलता पा सकते हैं। इन दस मुद्राओं की कोई बराबरी नहीं है और न ही होगी। इनमें से किसी एक के भी अभ्यास से व्यक्ति सिद्धि प्राप्त कर सकता है।

12.8 अध्याय 5

धर्म धर्म पालन में निम्नलिखित कार्य आवस्यक है।

- स्नान
- देवताओं की पूजा
- चंद्रमा के पवित्र दिनों का अवलोकन करना
- अग्नि यज्ञ
- प्रतिज्ञा और तपस्या
- उपवास
- धार्मिक अनुष्ठान
- मौन
- तपस्वी अभ्यास
- मंत्र और भिक्षा देना
- दुनिया भर में ख्याति प्राप्त
- टैंकों, कुओं, तालाबों, मठों और उपवनों की खुदाई और प्रबंधन
- बलिदान, भूख से मरने की प्रतिज्ञा

12.9 शिव संहिता में चार प्रकार के योग

- **मंत्र योग**

शिव संहिता में मंत्र योग का वर्णन है मंत्र योग का स्वरूप कुछ इस प्रकार से है। चंचल, डरपोक, रोगी, स्वतंत्र नहीं और क्रूरय जिनके चरित्र बुरे हैं और जो निर्बल हैं, वे उपरोक्त सभी को निम्न साधक के रूप में ही जाने जाते हैं। महत्वपूर्ण प्रयास से ऐसे व्यक्ति बारह वर्षों में सफल होते हैंय उन्हें योग के शिक्षकों से मंत्र योग के लिए उपयुक्त जानना चाहिए।

- **लय योग**

जो साधक उदार मन वाले, दयालु, पुण्य के इच्छुक, वाणी में मधुरय जो कभी भी किसी भी कार्य में अति नहीं करते – ये मध्यम मार्ग के योग साधक हैं। ऐसे साधकों को लय योग के गुरुओ द्वारा योग शुरू किया जाना है।

- **हठ योग**

स्थिरचित्त, लय योग को जानने वाले, स्वतंत्र, ऊर्जा से भरपूर, सहानुभूति से भरपूर, क्षमाशील, सच्चे, साहसी, विश्वास से भरपूर, योग के अभ्यास में हमेशा लगे रहने वाले – ऐसे पुरुषों को अधिमात्र जानो। वे छह वर्षों के भीतर योग के अभ्यास में सफलता प्राप्त करते हैं, और उन्हें हठ–योग और इसकी शाखाओं में दीक्षित होना चाहिए।

- **अति उत्साही–**

सभी योगों का अधिकारी सक्षम, प्रतिभाशाली, दृढ़, धार्मिक, क्षमाशील, अपने कार्य को गुप्त रखने वाले, मधुर वाणी वाले, शांतिपूर्ण, भगवान और गुरु के उपासक, वफादार, शोक से मुक्त, अधिमात्र के कर्तव्यों से परिचित और सभी प्रकार के योग के अभ्यासी हैं। – तीन साल में जरूर मिलेगी सफलता। वे बिना किसी हिचकिचाहट के सभी प्रकार के योग में दीक्षित होने के योग्य हैं।

- **राजयोग**

योग के ऐसे श्रेष्ठ साधक जो युवावस्था में हैं, खान–पान में संयमी, इंद्रियों पर नियंत्रण रखने वाले, साहसी ज्ञानी, ऊर्जावान, जानकार, दानी आदि वे योग साधक राज योग करते हैं।

- **अनाहद नाद**

जब योगी का मन उस नाद में रम जाता है, तो वह सभी बाहरी चीजों को भूल जाता है और ध्वनियों में लीन हो जाता है।

ऐसे साधको को योग की इस अवस्था में अनाहद ध्वनियों की अनुभूति होती है। अनाहत ध्वनियां साधक को क्रमशः भिनभिनाती मधुमक्खी की ध्वनि, बांसुरी, वीणा, बजती घंटियाँ, गड़गड़ाहट के रूप में सुनाई पड़ती है।

12.10 शिव संहिता में एक रहस्य

सिद्धासन के समान कोई आसन नहीं है, कुंभ के समान कोई शक्ति नहीं है, खेचरी के समान कोई मुद्रा नहीं है, और नाद के समान कोई एकाग्रता नहीं है।

12.10.1 सात चक्र–

शिव संहिता में सप्त चक्र के विषय में बतलाया गया है यह समस्त चक्र नीचे से ऊपर की ओर क्रमशः बतलाए गए हैं जो निम्नलिखित हैं।

- मूलाधार चक्र
- स्वाधिष्ठान चक्र
- मणिपुर चक्र
- अनाहत चक्र
- विशुद्ध चक्र
- आज्ञा चक्र
- सहत्रार्ध चक्र

12.10.2 पवित्र त्रिवेणी–

शिव संहिता में पवित्र त्रिवेणी के बारे में कहा गया है कि गंगा और जमुना के बीच में यह सरस्वती बहती है, जिसके आपस में संगम होने पर स्नान करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

12.10.3 रहस्यवादी कैलास पर्वत–

चंद्र क्षेत्र के ऊपर, एक शानदार हजार पंखुड़ियों वाला कमल है। यह शरीर के सूक्ष्म जगत से बाहर है और मोक्ष देने वाला है। इसका नाम कैलाश पर्वत है जहां महान शिव निवास करते हैं। जो नकनला कहलाती है और विनाश रहित तथा वृद्धि या ह्रास से रहित है।

12.10.4 राज धीरज योग–

एक सुंदर मठ में, सभी मनुष्यों और जानवरों से मुक्त होकर, स्वस्तिकासन में बैठकर, अपने गुरु को सम्मान देकर योगी को इस चिंतन का अभ्यास करें !

वेदांत के तर्कों से यह जानकर कि जीव स्वतंत्र और स्वावलंबी है, वह अपने मन को भी स्वावलंबी बनाये रखते है। निःसंदेह इस चिंतन से सर्वोच्च सफलता प्राप्त होती है। जो इसका सदैव अभ्यास करता है वही सच्चा योगी है।

12.11 अभ्यास प्रश्न

सत्य और असत्य बताइये।

- शिव संहिता में सिर्फ आसनों का वर्णन हैं।
- शिव संहिता में पाँच अध्याय हैं।
- शिव संहिता में मुद्राओं का वर्णन हैं।

12.12 सारांश

इस तरह शिव संहिता इतना प्रचलित तो नहीं है परंतु इसकी विशेषताएँ अनेक है। इसका प्रथम अध्याय केवल अद्वैत वेदांत है जो कहता है की जीव–ब्रह्म एक (तत्वमअसि) है।

अविध्या ही संसार जगत् का कारण है। ज्ञान से ही अविध्या का नाश संभव है। उपनिषद, गीता और अन्य वेदांत शास्त्र का मूल है। न्यायों का समावेष उदाहरण में भी कोई भेद नहीं।

प्रवृत्ति ओर कर्म मार्ग का खंडन विस्तार से किया गया है। वेदांत प्रक्रियों का उपयोग व जाना जा सकता है साधक फिर भी अगर समझने में असक्षम है तो आगे के हठ–योग अध्याय से चित्त–शुद्धि कर फिर प्रथम अध्याय का अध्ययन करे तो मोक्ष की प्राप्ति निश्चय ही होगी।

12.13 शब्दावली

- सिद्धहस्त – दक्ष, कुशल
- अवस्थित – उपस्थित, मौजूद
- शाश्वत – सदा रहने वाला
- स्तुति – गुणगान, प्रशंसा
- अनाहद – जो आघात से उत्पन्न न हुआ हो
- स्वावलंबी – आत्मनिर्भर
- समावेष –अंतर्भाव, शामिल होना, व्याप्त होना

12.14 सन्दर्भ ग्रन्थ

- शिव संहिता, पंडित हरिप्रसाद त्रिपाठी, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
- राघवेन्द्र शर्मा राघव (2006) शिव संहिता चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली

12.15 निबंधात्मक प्रश्न

शिव संहिता का समान्य परिचय दीजिए।

शिव संहिता में वर्णित योग का सविस्तार बताइये।